दरिया कहै सब्द निरबाना

(दो प्रवचनों में ओशो मौन रहे Osho remained silent for 2 days- on 4th & 5th January 1979 -- ch. 4 and 5)

प्रवचन -क्रम

1. अबरि के बार सम्हारी 2
2. वसंत तो परमात्मा का स्वभाव है 25
3. भजन भरोसा एक बल...53
4. मौन लहरें 77
5. मौन लहरें 78
6. आज जी भर देख लो तुम चांद को 79
7. निर्वाण तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है 105
8. मिटोः देखोः जानो 128
9. सतगुरु करहु जहाज 148
10. ....जीवन स्वयं अपनी समाधि है 171
11. ....सतगुरु सबद सांच एह मानी 194

दरिया कहै सब्द निरबाना
पहला प्रवचन

अबरि के बार सम्हारी

भीतर मैल चहल कै लागी, ऊपर तन धोवै है।
अविगत मुरति महल कै भीतर, वाका पंथ न जोवे है।।
जगति बिना कोई भेद न पौवे, साध-सगति का गोवे हैं।।
कह दरिया कुटने बे गोदी, सीस पटकि का रोवे है।।

विहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौर रहिहौ।।
गुरुनिन्दर वद संत के द्रोही, निन्दै जनम गंवैहौ।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ।।
मद पी माति मदन तन व्यापेउ, अमृत तजि विष खैहौ।
समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ।।
चरनकंवल बिनु सो नर बूड़ेउ, उभि चुभि थाह न पैहौ।
कहै दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गंवैहौ।।

बुधजन, चलहु अगम पथ भारी।
तुमते कहौं समुझ जो आवै, अबरि के बार सम्हारी।।
कांट कूस पाहन नहिं तहवां, नाहिं बिटप बन झारी।
वेद कितेब पंडित नहिं तहवा, बिनु मसि अंक सवारी।।
नहिं तहं सरिता समुंद न गंगा, ग्यान के गमि उजियारी।
नहिं तहं गनपति फनपति बरह्मा, नहिं तहं सृष्टि संवारी।।
सर्ग पताल मृतलोक के बाहर, तहवां पुरुष भुवारी।
कहै दरिया तहं दरसन सत है, संतन लेहु बिचारी।।

दरिया कहै शब्द निरबाना।
निर्वाण को शब्द में कहा तो नहीं जा सकता है। निर्वाण को भाषा में व्यक्त करने का कोई उपाय तो नहीं। फिर भी समस्त बुद्धों ने उसे व्यक्त किया है। जो नहीं हो सकता उसे करने की चेष्टा की है। असंभव प्रयास अगर पृथ्वी पर काई भी हुआ है तो वह एक ही है--उसे कहने की चेष्टा, जो नहीं कहा जा सकता। उसे बताने की व्यवस्था, जो नहीं बताया जा सकता।
और ऐसा भी नहीं है कि बुद्धपुरुष सफल न हुए हों। सभी के साथ सफल नहीं हुए, यह सच है। क्योंकि जिन्होंने न सुनने की जिद्द ही कर रखी थी, उनके साथ सफल होने का कोई उपाय ही न था। उनके साथ तो अगर निर्वाण को शब्द में कहा भी जा सकता होता तो भी सफलता की कोई संभावना न थी। क्योंकि वे वज्र-बधिर थे। उन्होंने निर्णय ही कर लिया था न सुनने का, न देखने का। लेकिन जिन्होंने हृदय से गहा, जिन्होंने प्रेम की झौली फैलाई और बुद्धपुरुषों के वचनों को झेला, उन तक वह भी पहुंच गया जो नहीं पहुंचाया जा सकता। उन तक उसकी भी खबर हो गई जिसकी खबर की ही नहीं जा सकती है। उसी अर्थ में दरिया कहते हैं-- दरिया कहै शब्द निरबाना। कि मैं कह रहा हूं, निर्वाण से भरे हुए शब्द, निर्वाण से ओतप्रोत शब्द, निर्वाण में पगे शब्द। जो सुन सकेंगे, जो सुनने को सच में राजी हैं, जो विवाद करने में उत्सुक नहीं, संवाद में जिनका रस जगा है, जो मात्र कुतूहल से नहीं सुन रहे हैं वरन जिनके भीतर मुमुक्षा की अग्नि जन्मी है, सुन पाएंगे। शब्दों के पास-पास बंधा हुआ उन तक निकलने की चेष्टा की है। असंभव प्रयास अगर पृथ्वी पर काई भी हुआ है तो वह एक ही है-- उसे कहने की चेष्टा, जो नहीं कहा जा सकता। उसे बताने की व्यवस्था, जो नहीं बताया जा सकता।
और ऐसा भी नहीं है कि बुद्धपुरुष सफल न हुए हों। सभी के साथ सफल नहीं हुए, यह सच है। क्योंकि जिन्होंने न सुनने की जिद्द ही कर रखी थी, उनके साथ सफल होने का कोई उपाय ही न था। उनके साथ तो अगर निर्वाण को शब्द में कहा भी जा सकता होता तो भी सफलता की कोई संभावना न थी। क्योंकि वे वज्र-बधिर थे।

उन्होंने निर्णय ही कर लिया था न सुनने का, न देखने का। लेकिन जिन्होंने हृदय से गहा, जिन्होंने प्रेम की झौली फैलाई और बुद्धपुरुषों के वचनों को झेला, उन तक वह भी पहुंच गया जो नहीं पहुंचाया जा सकता। उन तक उसकी भी खबर हो गई जिसकी खबर की ही नहीं जा सकती है। उसी अर्थ में दरिया कहते हैं-- दरिया कहै शब्द निरबाना। कि मैं कह रहा हूं, निर्वाण से भरे हुए शब्द, निर्वाण से ओतप्रोत शब्द, निर्वाण में पगे शब्द। जो सुन सकेंगे, जो सुनने को सच में राजी हैं, जो विवाद करने में उत्सुक नहीं, संवाद में जिनका रस जगा है, जो मात्र कुतूहल से नहीं सुन रहे हैं वरन जिनके भीतर मुमुक्षा की अग्नि जन्मी है, सुन पाएंगे। शब्दों के पास-पास बंधा हुआ उन तक निःशब्द भी पहुंचेगा। क्योंकि जब दरिया जैसा व्यक्ति बोलता है तो मस्तिष्क से नहीं बोलता। जब दरिया जैसा व्यक्ति बोलता है तो अपने अंतर्तम की गहराइयों से बोलता है। वह आवाज सिर में गूंजते हुए विचारों की आवाज नहीं है वरन हृदय के अंतर्गृह में सतत बह रही अनुभव की प्रतिध्वनि है।
दरिया जैसे व्यक्ति के शब्द दरिया के भीतर जन्म गए शून्य से उत्पन्न होते हैं।
वे उसके शून्य की तरंगें हैं। वे उसके भीतर हो रहे अनाहत नाद में डूबे हुए आते हैं। और जैसे कोई बगीचे से गुजरे, चाहे फूलों को न भी छुए और चाहे वृक्षों को आलिंगन न भी करे, लेकिन हवा में तैरते हुए पराग के कण, फूलों की गंध के कण उसके वस्त्रों को सुवासित कर देते हैं। कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि कहीं फूल छुए, कि कही कोई पराग वस्त्रों पर गिरी, अनदेखी ही, अदृश्य ही उसके वस्त्र सुवासित हो जाते हैं। गुलाब की झाड़ियों के पास से निकलते हो तो गुलाब की कुछ गंध तुम्हें घेरे हुए दूर तक पीछा करती है। ऐसे ही शब्द जब किसी के भीतर खिले फूलों के पास से गुजर कर आते हैं तो उन फूलों की थोड़ी गंध ले आते हैं। मगर गंध बड़ी भनी है। गंध अनाक्रामक है। गंध बड़ी सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। जो हृदय को बिल्कुल खोल कर सुनेंगे, शायद उनके नासापुटों को भर दे; शायद उनके प्राण में उमंग बन कर नाचे; शायद उनके भीतर की वीणा के तार छू जाएं; शायद उनके भीतर अनाहत का जागरण होने लगे; शायद उनकी आंखें खुलें, उन्मेष हो, उन्हें भी पता चले कि रात ही नहीं है, दिन है, और उन्हें भी पता चले कि अंधियारा सच नहीं है, सच तो आलोक है। और हम अंधियार में जीते थे, क्योंकि हमने आंखें बंद कर रखी थीं। और शोरगुल सिर्फ मस्तिष्क में है। जरा नीचे मस्तिष्क से उतरे कि संगीत ही संगीत है। ओंकार का नाद अहर्निश बज रहा है।
उस ओंकार के नाद में लिपटे हुए शब्द जब आते हैं--बस कोई श्रावक चाहिए, कोई जो पी ले! जो विचारों को हटा कर एक तरफ रख दे, जो अपने सिर को उतारकर एक तरफ हटा दे और जो सिर्फ प्यास की तरह अपनी झोली को फैला दे, तो जरूर दरिया ठीक कहते हैं--दरिया कहै शब्द निरबाना। मगर ये निर्वाण के शब्द केवल शिष्यों को सुनाई पड़ते हैं, प्रेमियों को सुनाई पड़ते हैं, भक्तों को सुनाई पड़ते हैं। इन शब्दों का पांडित्य से कोई संबंध नहीं है। और तुम भाषा समझते हो इसलिए तुम, इन्हें समझ लोगे, ऐसी भ्रांति में न पड़ना। ये शब्द शून्य से आते हैं। अगर तुम्हें भी इस शून्य की थोड़ी-थोड़ी झलकें आने लगी हो तो ही तुम इन अपूर्व, अद्वितीय वचनों का रस पी सकोगे।
और शून्य की झलके बड़ी स्वाभाविक झलकें है। बस यही कि तुमने उन पर ध्यान नहीं दिया। आती हैं तुम्हें भी, तुम्हारा भी द्वार कभी खुल जाता है, तुम्हारे भी झरोखे कभी खुल जाते हैं, कभी चांद-तारे तुममें भी झांक जाते हैं, कभी हवाएं तुम्हारे हृदय को भी आकर कंपित कर जाती है, कभी सूरज की किरणें तुम्हारे भीतर भी प्रवेश करती है, मर तुम ऐसे बेहोश, तुम ऐसे अनुपस्थित, कि तुम्हें कुछ पता नहीं चलता। परमात्मा घटता रहता है तुम्हारे चारों तरफ, अनंत-अनंत रूपों से, और तुम अपने में बंद, तुम अपनी आंखों को बंद किए, अपने हृदय के कपाटो को बंद किए परमात्मा के सागर में जीते हुए भी उससे परिचित रह जाते हो।
थोड़े मौके शून्य के अपने भीतर उतरने दो, और तब समझ सकोगे दरिया के शब्दों को। कभी सुबह उठकर चुपचाप नीले आकाश को देखो, टकटकी बांधकर, होश से भरकर, और तुम चकित होओगे--कभी-कभी ऐसा क्षण आएगा--कभी-कभी आएगा--ऐसा क्षण

आएगा जब बाहर भी नीला आकाश और भीतर भी नीला आकाश, एक क्षण को तुम आकाश के साथ आबद्ध हो जाओगे, आलिंगनबद्ध हो जाओगे। एक क्षण को आकाश तुम्हें अपनी बांहों मग ले लेगा और तुम कहीं खो गए... किसी दूर के लोक में खो गए आयाम में खो गए... उस क्षण जो तुम्हें स्वाद मिलेगा, वही शून्य का स्वाद है। अभी बूंद का है, फिर कभी सागर का भी हो सकता है। अभी थोड़ा सा है--आया और गया; हवा के झोंके में गंध आई और उड़ गई, तुम पकड़ भी न पाओगे--मगर अगर यह स्मरण आना शुरू हो जाए। कि ऐसी गंधें हैं और ऐसी किरणें हैं, तो फिर अपने द्वार तुम कभी- कभी खोलने लगोगे। रात आकाश तारों से भरी हो, लेट जाओ पृथ्वी पर, मिट जाओ पृथ्वी पर, भूल जाओ कि मैं हूं, मिलन जाने दो शरीर को मिट्टी में, भूल जाओ कि मैं हूं--इधर शरीर मिट्टी में मिला कि उधर आत्मा आकाश में मिली। यह बातें एक ही साथ घटती हैं।
तुम दोनों के जोड़ हो। पृथ्वी के और आकाश के। दृश्य के और अदृश्य के। मर्त्य के और अमर्त्य के। मिट्टी मिट्टी में मिल जाने दो थोड़ी देर। ऐसे तो मिलेगी ही आज नहीं कल। आज नहीं कल देह तो गिरेगी, मिट्टी में समाहित हो जाएगी। एक दिन मिट्टी से ही उठी थी, एक दिन मिट्टी में ही वापिस लौट जाएंगी। हर वस्तु आपने मूलस्रोत पर लौट जाती है।
कभी-कभी स्वेच्छा से इसे मिट्टी में पड़ जाने दो। भूल ही जाओ कि तुम्हारी देह भी है। और भूल ही जाओ कि तुम भी हो। उस भूने में ही पहली बार स्मृति आती है। उस की जो तुम हो। उस विस्मरण में ही आत्मस्मरण जगता है। उसी क्षण तुम आकाश हो जाओगे। सारे तारे तुम्हारे भीतर हो जाएंगे। तुम तारों को अपने भीतर घूमते देखोगे। वह शून्य की घड़ी ध्यान की घड़ी है। ऐसे तुम अगर थोड़ी चेष्टा करो तो अपनी साधारण जिंदगी में भी साधारण मौके बना सकते हो। और इन मौकों के लिए किसी मंदिर और मस्जिद और किसी गुरुद्वार में जाना आवश्यक नहीं है। सच तो यह है कि अगर तुम गुरुद्वारे, मंदिर और मस्जिदों में ही उलझे रहे, तो यह परमात्मा का गुरुद्वारा--यह आकाश तारों से भरा हुआ, यह सूरज रोशनी बरसाता हुआ, यह वृक्ष उसके रस से आकंठ भरे हुए, यह सरिताएं उसकी गूंज लिए हुए सागर की तरफ भागती हुई, इन सबसे तुम वंचित रह जाओगे।
और यह भी मैं तुमसे कह दूं, अगर तुम इन सबसे परमात्मा का अनुभव करने लगो, फिर जाना गुरुद्वार! फिर मजा है! फिर जाना मस्जिद, फिर जाना मंदिर, तब तुम पहचानोगे कि कौन वहां है मंदिर में और कौन वहां मस्जिद में और कौन गुरुद्वारा में और कौन चर्च में। पहले आंख तो हो तुम्हारे पास। आंख को निखार लो! फिर पत्थर की मूर्ति में भी तुम्हें वही परमात्मा दिखाई पड़ेगा। और नहीं होगी मूर्ति, तो भी वही दिखाई पड़ेगा। उपस्थिति भी उसकी है, अनुपस्थिति भी उसकी है। होना भी उसका है, न होना भी उसका है। जीवन भी उसका है और मृत्यु भी उसकी है। सब कुछ उसका है क्योंकि सब कुछ वही है। मगर इसकी प्रतीति तो हो जाए! और इसकी प्रतीति तुम्हें प्रकृति के करीब होगी।
क्योंकि प्रकृति उसके हाथों की छाप है। हर फल पर उसके हस्ताक्षर है।
जो आंखें हों तो चश्मे-गौर से औराके-गुल देखो।
किसी के हुस्न की शरहें, हैं इन रिसलों में।।
अगर आंखें हों तो जरा फूलों के पृष्ठ उलटो, मुर्दा किताबों में मत खोए रहो।
जो आंखें हों तो चश्मे-गौर से औराके-गुल देखो।
जरा फूलों के, पत्तियों के पृष्ट उलटो।
किसी के हुस्न की शरहें, लिखी हैं इन रिसालों में।।
इन किताबों में किसी अपरिसीम सौंदर्य की टीकाएं लिखी हैं। गीता की टीका में नहीं मिलेगा वह तुम्हें अभी। अगर गुलाब की टीकाओं में न मिला, तो गीता की टीका में नहीं मिलेगा। अगर कमल में नहीं दिखाई पड़ा तो कुरान में नहीं दिखाई पड़ेगा। और उसको कमल में दिखाई पड़ा, उसे कुरान में दिखाई पड़ कसता है। उलटी बात नहीं हो कसती कि पहले कुरान मग दिखाई पड़े, फिर कमल में दिखाई पड़े। क्योंकि कुरान परमात्मा से बहुत दूर हो गई। कमल अभी भी परमात्मा में खिला है। कमल में अभी भी परमात्मा बह रहा है--वही तो उसकी

लाली है, वही तो उसकी सुवास है। तुमसे ज्यादा समझ तो भौंरों में है। रखो एक कुरान और एक कमल और तुम पहचान लो। कमल के पास चला जाएगा भौंरा।
सम्राट सोलोमन के जीवन में ऐसा उल्लेख है। प्रसिद्धि थी कि उससे बड़ा कोई बुद्धिमान नहीं है। तो इथोपिया की रानी सम्राट के दर्शन करने आई, और उनकी परीक्षा लेनी चाही उसने कि सच में वे बुद्धिमान हैं या नहीं। और जरूर उसने जो तरकीब खोजी थी परीक्षा की, बड़ी महत्वपूर्ण थी। वह इथोपिया की महारानी अपने हाथ में नकली फूलों का एक गुलदस्ता और दूसरे हाथ में असली फूलों का गुलदस्ता लेकर आई। बड़े कलाकारों ने वे नकली फूल बनाए थे। वे इतने अली मालूम होत थे कि एक दफे असली पर शक हो जाए, मगर उन नकली पर शक नहीं हो सकता था। दोनों हाथों में फूल लिए वह रानी आकर दूर सम्राट से खड़ी हो गई परबार में और उसने कहा--अभी और पास न आऊंगी, पहले एक सवाल है, कौन से फूल असली हैं, कौन से नकली? सोलोमन ने एक क्षण सोचा, दरबारी भी मुश्किल में पड़े कि आज अड़चन आई! दरबारियों को भी मुश्किल हो रहा था यह तय करना कि कौन असली कौन नकली? बड़ा संदिग्ध मालूम हो रहा था--दोनों असली मालूम होते थे, एक से ज्यादा दूसरा असली मालूम होता था। एक-दूसरे से ज्यादा असली मालूम होते थे। सोलोमन ने कहा कि रोशनी जरा कम है, सारे खिड़कियां और सारे दरवाजे खोल दो, ताकि मैं ठीक से देख सकूं, मैं बूढ़ा भी हो गया हूं। बात भी ठीक थी, दरवाजे--खिड़कियां खोल दी गई। और जैसे ही दरवाजे-खिड़कियां खोली गई, एक क्षण सोलोमन देखता रहा और फिर उसने कह दिया कि बाएं हाथ में जो फूल हैं वे नकली हैं।
इथोपिया की रानी तो बड़ी चकित हुई। दोनों हाथों मग वह फूल लिए खड़ी थी, उसको भी याद रखना पड़ रहा था कि किस हाथ में नकली लिए है--क्योंकि वे इतने असली मालूम होते थे! हाथ पर लिख छोड़ा था उसने कि इस हाथ में नकली हैं और इसमें असली; नहीं तो खुद ही खुद ही भूल जाए। सम्राट ने कैसे जान लिया? उसने कहा कि क्षमा करें, मगर आपने चकित कर दिया, आपने कैसे जाना? सोलोमन ने कहा, अब झूठ क्या बोलना, फूल तो मुझे पहले भी दिखाई पड़ रहे थे, रोशनी की कोई ज्यादा जरूरत न थी ये जो मैंने दरवाजे-खिड़कियां खुलवाई, ये मधुमक्खियों के लिए। बगीचे से दो मधुमक्यिं भीतर आ गई। वे जिन फूलों पर आकर बैठ गई तेरे हाथों में वह असली। आदमी को आंखों को धोखा दिया जा सकता है, सोलोमन ने कहा; सोलोमन की आंखों को भी धोखा दिया जा सकता है, सोलोमन ने कहा, मगर मधुमक्खियों की आंखों को कैसे धोखा दोगे?
तुम्हारी किताबें-चाहे वे कितनी ही कीमती हों; चाहे कुरान हो, चाहे बाइबिल हो और चाहे हों और चाहे गुरुग्रंथ हो--न तो तितलियां आएंगी उन पर, न मधुक्खियां बैठेगी, न भौंरे गुंजार करेंगे। तुम भी जरा सोचो, भौंरे कहां गुंजार कर रहे हैं, तितलियां कहां उड़ी जा रही हैं? उन्हीं का पीछा करो, उन्हीं के साथ हो लो, उन्हीं जैसे हो लो, तो तुम्हें शून्य का अनुभव हो, तो तुम्हें पहली बार ध्यान की थोड़ी सी समझ आए। और वह समझ हो तो फिर बुद्धपुरुषों के वचन सार्थक हैं। दरिया कहै शब्द निरबाना। फिर दरिया के कहे शब्द निर्वाण को खोल देंगे, उघाड़ देंगे, बेपर्दा कर देंगे, घूंघट उठा देंगे। फिर नानक के शब्द परमात्मा से मिला देंगे। फिर मोहम्मद की वाणी अपूर्व है। अगर तुम्हारे भीतर शून्य हो; तो उसी शून्य में वह वाणी जाकर गुंजन पैदा कर सकती है, गुन-गुन पैदा कर सकती है। तुम्हारे भीतर शून्य ही न हो, तुम्हारा पात्र ही कूड़ा-कर्कट से भरा हो, तो कुछ नहीं हो सकता है। तुम्हारे पात्र में शून्यता होनी चाहिए।
और शून्यता सीखनी हो तो प्रकृति के पास जाओ; जाओ पहाड़ों के पास बैठो वृक्षों के पास। अदभुत थे वे लोग जिन्होंने वृक्षों की पूजा की, प्यारे थे वे लोग जिन्होंने सूरज-चांद-तारों को नमस्कार किया और इनको देवता कहा, ज्ञानी थे वे लोग जिन्होंने अग्नि की पूजा की, दिए जलाए और दिए की ज्योति पर अपने ध्यान को जमाया। अग्नि उसकी है, चांद-तारे उसके हैं, वृक्ष उसके हैं, नदी-नद, सागर-सरोवर उसके हैं। बेहतर थे वे लोग, समझदार थे वे लोग, उन्होंने प्रकृति के साथ संबंध जोड़ने की कोशिश की थी। और प्रकृति से जिसका संबंध जुड़ता है, परमात्मा बहुत दूर नहीं है--बस प्रकृति के ही घूंघट में तो छिपा है। प्रकृति उसकी ही ओढ़नी है। जरा प्रकृति को तुम समझने लगो

तो परमात्मा से ज्यादा देर दूर न रह सकोगे। और जो परमात्मा से दूर है, वह है ही क्या? एक अंधेरी रात। एक दुखस्वप्न।
सारी रात हवा गरजी है बादल बरसे सारी रात
सिसक रह था जब सन्नाटा तारे तरसे सारी रात
फूट-फूट कर फैल-फैल कर वन-पथ रोए सारी रात
बिजली की तड़पन में मेरे प्राण न सोए सारी रात
डोले भूधर, वृक्ष सशंकित भय से कांपे सारी रात
उमड़ असंख्य सजल स्रोतों ने जन-पथ नापे सारी रात लड़ती रही असंख्य पहाड़ी कज्जल काली सारी रात पीती रही हृदय जन-जन का भय की प्याली सारी रात थी डरावनी सृष्टि रही, आशंकित जगती सारी रात
नीड़ों में भय-विकल खगों की आंख न लगती सारी रात
धंसे रहे पंखों में उनके शावक विह्वल सारी रात
खोहों में थे खड़े कंटवित, वनपशु प्रतिपल सारी रात
झंझा से झुंझला-झुंझला अंधियारा बोला सारी रात
नभ से भू पर उतरा तम का उड़नखटोला सारी रात।
तुम्हारी जिंदगी है क्या? एक लंबी-लंबी रात, जिसकी सुबह आती ही नहीं!
एक ऐसी रात जिसकी प्रभात पता नहीं कहां खो गई! और एक ऐसी रात जिसमें न चांद है, न सितारे हैं! और एक ऐसी रात, चांद-सितारों की तो बात दूर, जुगनुओं की भी रोशनी नहीं! और एक ऐसी रात जिसमें न कोई दिया है, न कोई शमा है। बस तुम हो--लड़ाते, गिरते-उठते, दीवालों से सिर फोड़ते। और इसी को तुम जीसस समझे हो? जीवन तो उनका है जिनकी आंख खुली। क्योंकि जिनकी आंख खुली, उनकी सुबह हुई। जीवन तो उनका जिनकी अपने से पहचान हुई। अपने से पहचान हुई तो सबसे पहचान हुई। जीवन तो उनका है जिन्हें चारों तरफ परमात्मा का नृत्य दिखाई पड़ना शुरू हुआ। बस वे ही जीते हैं! शेष सारे लोग तो मरते हैं।
हाथ थे मिटे यूं ही, रोजे-अजल से ऐ अजल
रूए-जमी पै हैं तो क्या, जेरे-जमी हुए तो क्या?
क्या फर्क पड़ता है कि तुम जमीन के ऊपर हो कि जमीन के भीतर हो। मिटे ही हुए हो।
हम थे मिटे हुए यूं ही, रोज-अजल से ऐ अजल
मौत आई है तो तुम्हें भी यह कहना पड़ेगा कि ऐ मौत, तू नाहक आई है! हम तो मरे ही हुए थे। हम तो पहले से ही मरे हुए हैं। इतना ही फर्क होगा कि अभी जमीन के ऊपर थे, तू जमीन के नीच कर जाएगी। और क्या फर्क होगा?
हम थे मिटे हुए यूं ही, रोज-अजल से ए अजल
रूए-जमी पै हैं तो क्या, जेरे-जमी हुए तो क्या?
जिंदगी भर की यह सारी तलाश कहां ले जाती है? कब्र के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जाती मालूम होती। यह भी कोई जिंदगी हुई जो कब्र में समाप्त हो जाए! जिंदगी तो वह जो अमृत में समाप्त हो। मृत्यु में समाप्त हो, तो समझना कि तुम जिए ही नहीं, जीने का धोखा खाते रहे।
बहुत कुछ पांव फैलाकर भी देखा शाद दुनिया में।
मगर आखिर जगह हमने दो गज के सिवा पाई।।
और खूब चेष्टा करते हो तुम--ऐसा हनीं किसी ने की चेष्टा नहीं करते--बड़े उपाय करते हो, बड़े उपद्रव करते हो, बड़ा शोरगुल मचाते हो, मगर आखिरी उपलब्धि क्या है? बस एक छह फीट जमीन मिल जाए, एक दो गल जमीन मिल जाए! उतना बहुत। वही है उपलब्धि, वही है सार-निचोड़। इसे जिंदगी हो! नहीं यह जिंदगी नहीं है। दरिया के शब्द सुनो, जिंदगी की थोड़ी तलाश करो--दरिया कहै शब्द निरबाना
ये प्यारे सूत्र हैं, इनमें बड़ा माधुर्य है, बड़ी मदिरा है। मगर पीओगे
तो ही मस्ती छाएगी। इन्हें ऐसे ही मत सुन लेना जैसे और सब बातें सुन लेते हो; इन्हें बहुत भाव-विभोर होकर सुनना। आंख गीली हों तुम्हारी--और आंखें ही नहीं, हृदय भी गीला हो। उसी पीले पन की राह से, उन्हीं आंसुओं के द्वार से ये दरिया के शब्द तुम्हारी हृदय-वीणा को झंकृत कर सकते हैं। और जब तक यह न हो जाए तब तक एक बात जानते ही रहना कि तुम भटके हुए हो। भूल कर भी यह

भ्रांति मत बना लेना--कि मुझे क्या खोजना है! भूल कर भी इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि मैं जानता हूं, मुझे और क्या जानना है!
उड़ा-उड़ा सा जी रहता है
चूर-चूर विश्रांत शरीर,
दूर देश जाने को आतुर
अकुलाए से प्राण अधीर
जाने क्यों मुझको घर-बाहर,
सब कुछ हुआ पराया आज।
छिन जिसका आधार गया हो
हूं मैं ऐसी छाया आज।
खोया-खोया मन रहता है।
सोया सा सुन संसार!
कभी-कभी ऐसा लगता है
अब टूटा जीवन का तार!
लगता ही क्यों अब टूटा, तब टूटा, यह सच ही है। यह जीवन का तार कब टूट जाएगा, क्या पता? इसके पहले कि यह तार टूटे, उस संगीत को जन्मा लो जो कभी टूटता। तार बनते हैं और मिट जाते हैं, संगीत शाश्वत है। इस जीवन की वीणा को टूटने के पहले जगा लो, झंकृत करो। यह झंकृत हो जाए, तुम्हें पंख लग जाएं, तुम उड़ चलो। तुम उड़ चलो अपने गंतव्य की ओर, अपने गृह की ओर। नहीं तो अजनबी हो यहां, यह तुम्हारा घर नहीं। यह किसी का भी घर नहीं। घर की हमें तलाश करनी है। यह तो सराय है।
सराए-दहर में ऐ रूह! अपना जी नहीं लगता।
खुदा जाने, यहां कितने दिनों रहने को आए हैं।।
यहां जी मत लगा लेना। जिन्होंने ली जगाया है, सिर्फ दुख पाया है। जी
तो लगाना हो तो उसी जीवन के परम स्रोत से लगाना। क्योंकि वही मिले तो समझना कि कुछ मिला। निर्वाण मिले तो समझना कि कुछ मिला। और जब तक निर्वाण न मिले, तब तक समझना--कूड़ा बटोरते रहे। और क्षण-भर को भी भूलना मत। क्योंकि भूलने की हमारी बड़ी तैयारी रहती है। हमारा अहंकार यह बात भूलना चाहता है कि हम कूड़ा बटोर रहे हैं। अहंकार को बड़ी चोट लगती है इस बात से कि मैं और कूड़ा बटोर रहा हूं! अहंकार तो कंकड़-पत्थर बीनता है तो भी मानता है कि हीरे- जवाहरात इकट्ठा कर रहे है। धर्मशालाओं में रहता है और सोचता है अपने निवास-स्थान हैं। यह शब्द बहुमूल्य हैं, मगर उनके लिए ही बहुमूल्य हैं जिन्हें यह समझ में आनी बात शुरू हो गई कि मेरी जिंदगी अकारण जा रही है, बिना गीत गाए मैं विदा हुआ जा रहा हूं।
भीतर मैल चहल के लागी, ऊपर तन का धोवै है।
और क्रांति घटती है भीतर, और हम सब आयोजन बाहर कर रहे हैं। दिया जलना
है भीतर, और हम बाहर दीपावली जला रहे हैं। जलती रहें दीपमालाएं बाहर, मगर तुम अंधेरे हो, अंधेरे रहोगे--जब तक भीतर का दिया न जले। और बाहर हम कितने आयोजन कर रहे हैं, कितना स्नान; ध्यान कब करोगे? स्नान से देह की धूल धूल अति है, आत्मा की धूल कब धोओगे? ध्यान आत्मा का स्नान है। स्नान से शरीर प्रफुल्लित हो जाता है, ताजा हो जाता है, आत्मा को कब ताजा करोगे? आत्मा तुम्हारी मुर्दा हो रही है, आत्मा तुम्हारी दिन-हीन होती जा रही है, आत्मा को तुमने बिल्कुल उपेक्षित कर दिया है, शरीर की सेवा में सौ प्रतिशत तुमने अपनी शक्ति लगा दी है, और शरीर आज नहीं कल मौत छीन लेगी। यह घर ताश के पतों का घर है, यह नाव कागज की नाव है, यह डूबने ही वाली है। इसे कोई बचा नहीं सका है। इसी गांव को सजाने में फूल-पत्ती काढ़ने में तुम जिंदगी गंवा दोगे, या कुछ उस भीतर के परम सत्य की भी तलाश करोगे? जो जन्म में भी तुम्हारा है, मृत्यु में भी तुम्हारा है; जन्म के पहले भी तुम्हारा है, मृत्यु के बाद भी तुम्हारा है। तुम्हारा है, ऐसा कहना ठीक नहीं, तुम हो वह सत्य। तत्वमसि, वह तुम ही हो। वह तुमसे भिन्न नहीं है।
भीतर मैल चहल कै लागी,
... भीतर तो कीचड़ भरी है...
ऊपर तन का धोवै है।

किस कीचड़ की बात करते दरिया? वही कीचड़ की जिसकी सारे बुद्धों ने बात
की है। कौन सी कीचड़ भीतर भरी है? विचार की, वासना की, स्मृतियों की, कल्पनाओं की--यही सब कीचड़ है। इसी कीचड़ में तो तुम उलझे हो, इसी कीचड़ में तो आकंठ फंसे हो। वासनाएं ही वासनाएं भीतर सिर उठाए खड़ी हैं। और विचार और विचार का ताता लगा है। एक क्षण विश्राम नहीं, एक क्षण विराम नहीं। एक क्षण को भी यह रास्ता खाली नहीं होता--विचार हैं कि चलते ही जाते हैं, चलते ही जाते हैं। और कसे विचार? जो अतीत अब नहीं है, उसके विचार। कल किसी ने कुछ कहा था, उसके विचार। जो अब न हो गया, उसको क्यों ढोते हो? क्यों भूत-प्रेतों को ढोते हो? अब जो नहीं है, नहीं है, उसे जाने दो। उस कचरे को क्यों लिए फिरते हो? क्यों लाशें ढोते हो?
तुमने शिव की कथा सुनी होगी, कि जब पार्वती की मृत्यु हो गई, तो शिव पार्वती की लाश को अपने कंधे पर लेकर सारे देश में भटकते फिर, कि मिल जाए कोई हकीम, मिल जाए कोई वैद्य, हो जाए कोई चमत्कार--कोई जिला दे पार्वती को! लाश सड़ने लगी। लाश लाश है। प्रकृति कोई अपवाद नहीं करती, पार्वती की लाश है तो क्या हुआ! सड़ने लगी, दुर्गंध उठने लगी; अंग-अंग लाश के गिरने लगे सड़-सड़ कर। कथा यही है कि जहां-जहां एक-एक अंग गिरा पार्वती का, वही-वही हिंदुओं का एक-एक तीर्थ बना।
मगर लाश को ढोते हुए शिव!
यह तुम्हारी कथा है। यह कोई पुराण नहीं है, यह तुम्हारा मनोविज्ञान है। हर व्यक्ति लाशें ढो रहा है। और लाशें सड़ जाती हैं। और लाशों के अंग जहां-जहां गिरते हैं, वहीं-वहीं तो तुम्हारी स्मृतियों के तीर्थस्थल हैं। बुढ़ापे में भी लोग लौट-लौट कर देखते हैं जवानी के तीर्थस्थल। कभी किसी स्त्री को प्रेम किया, किसी स्त्री को चाहा था; कभी सफलता मिली थी, कभी जगत में झंडा फहराया था, लौट-लौट कर देखते रहते हैं। अब सिवाय दुर्गंध के और कुछ भी नहीं है। अब सिवाय याददाश्त के और कुछ भी नहीं। तुम्हारी स्मृतियों के अतिरिक्त अतीत का कोई अस्तित्व नहीं है। जिस व्यक्ति में थोड़ी भी बुद्धिमत्ता है, वह तत्क्षण अतीत से अपना संबंध तोड़ लेगा। क्योंकि इस कचरे को क्यों ढोना?
और एक मजे की बात, जो अतीत से संबंध तोड़ लेता है, तत्क्षण उसका भविष्य
से संबंध टूट जाता है। क्यों? क्योंकि भविष्य कुछ और नहीं है, अतीत को फिर से जीने का, अच्छे ढंग से और परिमार्जित ढंग से जीने की आकांक्षा है। भविष्य क्या है, कल तुम क्या चाहते हो? कल तुम वही चाहते हो जो तुम्हें कल अनुभव हुआ था और प्यारा लगा था। अब और-और चाहते हो। कल जो तुम्हें अनुभव हुआ था, उसमें शायद थोड़े-थोड़े कांटे भी थे। अब तुम कल ऐसा चाहते हो कि वे कांटे भी न हों, बस फूल ही फूल रह जाएं। शायद थोड़ी पीड़ाएं भी थी, वे पीडाएं भी तुम नकार कर देना चाहते हो--शुद्ध सुख बच जाए जल, दुख से मुक्त सुख बच जाए कल।
तुम्हारा भविष्य क्या है? तुम्हारा भविष्य अतीत का ही सुधारा हुआ रूप है। जिस दिन अतीत गिरता है, उसी दिन अतीत का प्रक्षेपण भविष्य गिर जाता है। और भविष्य और अतीत दोनों गिर जाएं तो तुम इसी क्षण में आबद्ध हो जाओगे, इसी क्षण में ठहर जाओगे। उस ठहरने का नाम विराम है, विश्राम है, विश्राम है। और उसी ठहरने में, इसी विराम में राम से पहले मिलन है। ठहरने में, जब तुम्हारे भीतर सब ठहर जाता है, कोई तरंगें विचार की नहीं, कोई वासना की तरंगें नहीं; न कोई अतीत है, न कोई भविष्य हैः न पीछे लौट कर देखते हो, न आगे दौड़ रहे हो; यहां और अभी; बस कीचड़ गई। वर्तमान में जो ठहर गया, उसका अंतर शुद्ध हो जाता है।
भीतर मैल चहल कै लागी। और भीतर तो कितना मैल लगा है! ढेर लगे कीचड़ के ऊपर तन का धोवै है। और हम हैं कि ऊपर-ऊपर आयोजन किए चले जाते हैं। घावों के ऊपर इत्र छिड़क रहे हैं, कि बदबू न आए। घावों के ऊपर फूलमालाएं चढ़ा रहे हैं, ताकि किसी को घाव दिखाई न पड़े। भीतर की गंदगी को बाहर के आरोपित सौंदर्य में ढांकने की चेष्टा चल रही है। भीतर की रिक्तता को बाहर के धन से भरने का उपाय हो रहा है। यही तो तुम्हारा संसार है। यही तुम्हारा जीवन है। कर क्या रहे हो तुम? किसी तरह भीतर की दरिद्रता ढंक जाए बाहर के आभूषण में। भीतर

का भिखमंगापन बाहर के हीरे-जवाहरातों में छिप जाए। मगर यह हो सकता है? यह नहीं हो सकता। बाहर की पड़ी रह जाती है, भीतर पहुंचती ही नहीं। बाहर और भीतर का कोई मिलन नहीं होता है। यह आया अलग। बीमारी भी भीतर है, इलाज बाहर चल रहा है। ये औषधियां सिर्फ धोखे हैं।
दरिया कहते हैं--
भीतर मैल चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है।
अविगत मुरति महल कै भीतर, वाका पंथ न जोवै है।।
और दौड़ रहे हो, दौड़ रहे हो, यह मिल जाए, वह मिल जाए और जो सब मिलने का मिलना है, वह मुरति तुम्हारे महल के भीतर, तुम्हारे घर के भीतर, तुम्हारे हृदय में विराजमान है। इस मंदिर में चले, उस मंदिर में चले, यहां सिर पटको, वहां सिर पटको, और जिसकी तुम तलाश कर रहे हो जन्मों-जन्मों से, वह एक क्षण को भी तुम्हें छोड़ा नहीं, तुम्हारे हृदय के गृह में बैठा तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। तुम्हारा मालिक तुम्हारे भीतर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।
अवितगत मुरति पहल कै भीतर, वाका पंथ न जावै है।।
न मालूम कितने-कितने रास्तों पर दौड़ रहे हो और एक रास्ते भर का भूल बैठे हो--भीतर जाने का रास्ता। इसके पहले कि बाहर खोजने निकलो, कम से कम भीतर झांक कर तो देख लो, कहीं ऐसा न हो कि हम उसे बाहर खोजते रहे और वह भीतर मौजूद है। जिन्होंने झांका, पाया। और जो बाहर दौड़ते रहे, खाली हाथ जीए, खाली हाथ मरे।
जुगति बिना कोई भेद न पावै, साधु-संगति का गावै है।
लेकिन इस भीतर के महल का जो रास्ता है, वह तुम्हें वही बता सकता है जो भीतर के महल में विराजमान हो गया। तुम्हें भूले तो इतना काल हो चुका, इतना अनंत काल, इतनी पर्तों पर पर्तें जम गई हैं तुम्हारे भीतर भ्रांतियों की, कि तुम अगर इन पर्तों को उलटने लगोगे तो जन्मों-जन्मों तक खोदते रहो, कुछ पता न चलेगा। तुम्हें भीतर का मार्ग तो वही दे सकता है जो भीतर पहुंच गया हो। जुगति बिना कोई भेद न पावै, तुम्हें कुंजी चाहिए।
और तुमने देखा?
ताला कितना ही बड़ा हो, कुंजी छोटी सी होती है। और ताला ही जटिल हो, कुंजी सरल होती है। और कुंजी हाथ में न हो तो तुम तोड़ते रहो ताले को हथौड़ी से, खुलेगा नहीं। और कुंजी हाथ में हो तो छोटा सा बच्चा भी खो लेता है। कोई बड़े पहलवानों की जरूरत नहीं होती ताला खोलने के लिए। कोई बड़ी शक्ति नहीं लगती। यह जो ताले को खोलने की कुंजी है, ऐसी ही युक्ति भी, योग की युक्ति भी सरल बात है। हाथ लग जाएं तो बच्चा खोल ले।
दरिया बीस ही वर्षा के थे तब परम बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। और यहां अस्सी-अस्सी साल के बूढ़े बुद्धत्व तो दूर, अभी उसी कूड़े-कर्कट की तलाश में हैं जिसको जवान खोजें तो माफ भी कर दो, मगर बूढ़े भी उसीको खोज रहे हैं! तो बड़ा आश्चर्य होता है! अगर कोई जवान महत्वाकांक्षी हो, क्षमा कर दो--जवान ही है आखिर, अभी जवानी का अंधापन है--लेकिन बूढ़े भी महत्वाकांक्षी हैं। एक पैर कब्र में है, फिर भी चाहते हैं कि अभी कोई और महत्वाकांक्षा पूरी हो जाए--एक पद, और, थोड़ी देर और कुर्सी पर बैठ लें, या और बड़ी कुर्सी मिल जाए। यह किस्सा कुर्सी का समाप्त ही नहीं होता। इसका कोई अंत आता नहीं दिखाई पड़ता बच्चे माफ किए जा सकते हैं, जवान भी माफ किए जा सकते हैं, बूढ़ों को माफ नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर कोई हिम्मत कर ले सदगुरु के पास होने की, तो बच्चों को भी, युवाओं को भी वह परम सत्य उपलब्ध हो सकता है।
दरिया बीस ही वर्ष के थे तब बुद्ध हुए। हाथ कुंजी लग जाए तो बात बड़ी सरल है, आसान है--दो और दो चार होते हैं, इतनी आसान है। जुगति बिना कोई भेद न पावै, इतना स्मरण रखना कि जुगति के बिना, ठीक-ठीक युक्ति के बिना, ठीक-ठीक विज्ञान के बिना भेद न पा सकोगे, रहस्य न पा सकोगे। साधु-संगति का गोवै है। लेकिन लोग अजीब हैं, अगर परमात्मा की भी तलाश करने की कभी आकांक्षा उठती है, तो भी साधु-संगति से भागते हैं। सोचते हैं खुद ही कर लेंगे। अगर भाषा सीखनी हो, तो शिक्षक के पास जाते है; गणित सीखना हो, तो शिक्षक के पास जाते है; भूगोल-इतिहास जैसी व्यर्थ की चीजें सीखनी हों, तो भी शिक्षक के पास

जाते हैं; कुछ भी सीखना हो तो किसी पाठशाला में जाते हैं; सिर्फ परमात्मा को सोचते हैं--किसी के पास क्या जाना! खुद ही कर लेंगे! और इस सदी में यह रोग बहुत फैला, इसलिए इस सदी में परमात्मा करीब-करीब हमसे बिछुड़ ही गया, हम उससे बिछुड़ गए हैं। इस सदी में एक अहंकार जगा है आदमी को, कि स्वयं पा लेंगे, किसी से सीखें? और ऐसा भी नहीं है कि कभी-कभी किसीने स्वयं को नहीं पा लिया है। कभी करोड़ों में एकाध व्यक्ति स्वयं की भी सत्य को उपलब्ध हो जाता है। मगर वह अपवाद है। और अपवाद नियम नहीं है। अपवाद से तो नियम ही सिद्ध होता है। अपने अहंकार को मत संभाले बैठे रहना। साधु-संगति से बचने का जो कारण है, वह इतना ही है कि साधु-संगति की पहली शर्त है--समर्पण, झुकना; और अहंकार झुकना नहीं चाहता। लोग भाग रहे हैं।
हुस्नो-इश्क एक है, जाहिर में फकत नाम हैं दो।
यह अगर सच है तो क्या, उनके बराबर हम है?
अक्ल से राह जो पूछी तो पुकारा यह जुनूं--
वह तो खुद भटकी हुई फिरती है, रहबर हम हैं।।
बुद्धि तो स्वयं भटकी हुई फिर रही है, उलझी हुई फिर रही है। अगर तुमने बुद्धि की सुनी और पीछे लग गए, तो बहुत पछताओगे।
खलील जिब्रान की एक कहानी है। एक आदमी गांव-गांव कहता फिरता था कि जिसे परमात्मा को पाना हो, मेरे पीछे आए। न कभी कोई उसके पीछे जाता था, न कभी कोई झंझट पैदा होती थी। लेकिन एक गांव में ऐसा हुआ, कि एक युवक खड़ा हो गया, उसने कहा कि मैं आता हूं आपके पीछे। वह आदमी थोड़ा डरा, झिझका, फिर उसने कहा कि ठीक है, आओ, कोई बात नहीं। उसको भटकाया खूब जंगलों में, पहाड़ों में, मरुस्थलों में। मगर वह भी एक जिद्दी था। सोचता था वह आदमी कि थक कर महीने दो महीने में भाग जाएगा। मगर वह पीछे ही लगा रहा। साल बीता, दो साल बीते, तीन साल बीते, वह तो नहीं थका, लेकिन वह आदमी ही थकने लगा कि अब कब तक इसको थकाते रहें? थकाने में भी थकना पड़ता है। और जब देखा कि यह जाता ही हनीं है, तीन साल बीत गए, तो यह तो जिंदगी खराब करवा दोगे, हमारी भी जिंदगी खराब करवा देगा! छह साल जब बीत गए तो एक दिन उस आदमी ने उसके पैर पकड़ लिए युवक के और कहा कि महाराज, मुझे क्षमा करो, अब आप जाओ! तो उसने कहा--मैं जाऊं कहा? आपने कहा था ईश्वर मिलाएंगे, तो मैं आपके पीछे चल रहा हूं। उसने कहा कि मैं क्या खाक तुम्हें ईश्वर से मिलवाऊंगा! तुम्हारी वजह से मेरा तक रास्ता खो गया। पहले मुझे रास्ता पता था। जब से तुम आए हो तब से मुझे भी रास्ता खो गया है, अब तुम मुझ पर कृपा करो। और अब मैं भूल कर कभी किसी से न कहूंगा। कि मेरे पीछे आओ, मैं तुम्हें पहूंगा दूंगा।
तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम से कहे जाते हैं, पीछे आओ, पहुंचा देंगे।
और उनकी सुरक्षा इसी मग है कि तुम कभी पीछे नहीं जाते। और तुम्हारी सुरक्षा उन्हीं पंडित-पुरोहितों के साथ है। क्योंकि वे भी झूठे हैं, तुम भी झूठे हो, झूठ और झूठ में एक तालमेल बैठ जाता है। लेकिन जब भी तुम दरिया, कबीर, नानक, फरीद, ऐसे किसी व्यक्ति के साथ खड़े हो जाओगे तो घबड़ाहट होगी, पैर कंपने लगेंगे, गिर पड़ोगे वहीं। डर लगेगा कि अब मौत आई, अब मुश्किल आई। इस आदमी के साथ चलना हो तो मिटना पड़ेगा। अपने को पोंछ देना होगा। दरिया ने ठीक शब्द प्रयोग किया है--साधु संगति का गोवै है। गोवै का अर्थ है, छिपाना, भागना, छिपना, डरना। साधु-संगति से डर रहे हो, छिप रहे हो, भाग रहे हो। मगर आदमी जब भागता भी है तो अपने भागने के लिए बड़े तर्क तय कर लेता है कि वहां रखा क्या है! इसलिए वहां नहीं जाता हूं! इसलिए तुमने सदा ही बुद्धपुरुषों के संबंध में न मालूम कैसी-कैसी अफवाहें फैलाई हैं। और उन अफवाहों के फैलाने के पीछे एक कारण है। उन्हीं अफवाहों के सहारे तुम अपने को छिपा पाते हो, नहीं तो छिपा नहीं पाओगे। उन्हीं अफवाहों की आड़ में तुम यह बहाना खोज लेते हो कि जाने की जरूरत ही क्या है, वहां है ही कौन? वहां रखा क्या है? या वहां जो भी है सब गलत है। तुम बड़े अच्छे-अच्छे शब्द खोज लेते हो, जिनका तुम्हें अर्थ भी पता नहीं होता।
एक मित्र ने मुझ पत्र लिखा है--अनेक ऐसे पत्र आते हैं--कि मैं आना चाहता हूं, लेकिन मैंने यह सुना है कि वहां जो आता है वह सम्मोहित हो जाता है। तो मैं डरता हूं कि अगर आया और सम्मोहित हो गया, तो फिर? सम्मोहन क्या

है, शायद उन्हें पता भी न हो। लेकिन एक शब्द पकड़ गया। और हर शब्द के साथ हमारे अर्थ जुड़े हैं, संबंध जुड़े हैं। अब उन्हें घबड़ाहट लग रही है, आना भी चाहते हैं लेकिन डर भी लग रहा होगा कि कहीं ऐसे ही सम्मोहित न हो जाएं, जैसे दूसरे हो गए हैं। और लगता उनको होगा कि प्रमाण भी मालूम होते होगे कि लोग वहां भले-चंगे जाते हैं, अच्छे-भले, और गैरिक वस्त्र पहन कर चले आते हैं! कहीं ऐसा हो सकता है? जरूर कोई सम्मोहन हो रहा है। कुछ बात समझ में नहीं आती। यही उन्होंने लिखा है, कि मेरे गांव से कई लोग गए, वे सब गेरुवा वस्त्र पहन कर आ गए। और जब से आए है तो उल्टी ही उल्टी बातें करते हैं। ढंग की बातें नहीं करते! और इनको मैं पहले से जानता हूं, अच्छे-छले आदमी थे; जब गए लिए, बिल्कुल ठीक-ठीक गए थे। इससे भय लगता है कि कहीं मैं भी जाकर उलझ न जाऊं।
तो पहले तो इस तरह के जाल बन कर आदमी रोकता है। फिर अगर आ भी जाए, तो बहुत सधा-बधा आता है। जागरूक रहता है कि कहीं कोई झंझट खड़ी हो, उसके पहले निकल जाना है। दूर-दूर रहता है, पास नहीं आता। यहां लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं हम आ तो गए, पहले ध्यान दूसरों को करते देखेंगे, फिर हम करेंगे। जब हमें पक्का भरोसा आ जाएगा। कि इसमें कुछ बड़बड़ नहीं है, तब करेंगे। मगर दूसरों को ध्यान करते देख कर तुम क्या देखोगे? अगर कोई नाच रहा है अपनी मस्ती में, तो नाच तो दिखाई पड़ जाएगा, मस्ती कैसे दिखाई पड़ेगी? और क्यों नाच रहा है? उसके भीतर जो नाच हो रहा है, बाहर का नाच तो केवल उसकी प्रतिछाया है। जैसे कोई नाच रहा हो तो उसकी छाय भी नाचती है। अब तुम छाया को अगर देखते रहोगे, तो क्या तुम नाचने वाले पहचान लोगे, समझा लोगे? देह के बाहर तो छाया ही बनती है।
तुम मीरा को नाचते देख कर समझ सकते थे क्योंकि उसके हृदय में कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं? क्या तुम समझ सकते थे यह बात मीरा को नाचते देख कर कि मीरा कृष्ण के सामने नाच रही है, तुम्हारे सामने नहीं? कि मीरा का नाच नाच नहीं है, जैसा नर्तकियों का होता है। मीरा कोई बड़ी नर्तकी भी नहीं थी। कभी नाच सीखा हो, इसका कोई उल्लेख भी नहीं है। तुम्हारी कोई भी नर्तकी मीरा को हरा देती नृत्य में, किसी प्रतियोगिता में मीरा जीतनी इसकी आशा रखना उचित नहीं है। लेकिन फिर भी मीरा है और तुम्हारी नर्तकियां सिर्फ नर्तकियां हैं। उसके नाच में कुछ और है। उसके नाच में एक प्राण है, एक भाव है, एक भक्ति है। आविष्ट है मीरा कृष्ण से। मीरा कहती हैः पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे। यह तो तुम्हें सुनाई पड़ जाएगा। उसका नाच भी दिखाई पड़ जाएगा, पैर में बंधे घुंघरू भी दिखाई पड़ जाएंगे, आवाज भी सुनाई पड़ जाएगी, मगर भीतर कृष्ण की बांसुरी बज रही है, इसलिए उसने पग मग घुंघरू बांधे हैं। उस बांसुरी की धुन पर मीरा नाच रही है। कृष्ण के आसपास नाच रही है। रास हो रहा है। मीरा अकेली नहीं है। मगर तुम्हें अकेली दिखाई पड़ेगी।
तुम ध्यान करते देखते दूसरे लोगों को क्या समझोगे? तुम जो भी समझोगे, गलत समझोगे। और तुम कहते जब तक मैं दूसरों को करते न देख लूं, मैं करूंगा! और तुम जो भी समझोगे, गलत समझोगे। और जो भी तुम बाहर से देखोगे, उससे भीतर की कोई तुम्हें खबर न मिलेगी। फिर शायद तुम करोगे ही नहीं। कि यह कोई ध्यान है! इस तरह नाचता, इस तरह दीवाना होना, इस तरह जुनून, यह कोई ध्यान है!
तुमने ध्यान की भी धारणा बना ली है। तुमने ध्यान का भी स्पष्ट आधार, रूपरेखा, व्याख्या कर ली है। बस ध्यान ऐसा होना चाहिए। अगर झेन आएगा तो वह समझता है ध्यान ऐसा होना चाहिए, जैसे महावीर बैठे हुए हैं। तो फिर मीरा को ध्यान नहीं हुआ; तो चैतन्य को ध्यान नहीं हुआ। और ध्यान रखना, अगर मीरा के ही ध्यान को तुम ध्यान मानते हो तो फिर बुद्ध को तुम या महावीर को शांत बैठे देख कर समझोगे--यह क्या है, खाली बैठे हैं! नाच कहां है? घूंघर कहां? तुम धारणाएं बना लेते हो। और प्रत्येक व्यक्ति मग परमात्मा अनूठे ढंग से घटता है, किसी अपेक्षा के अनुसार नहीं घटता। प्रत्येक के भीतर परमात्मा मौलिक रूप से घटता है, अद्वितीय रूप से घटता है। वह तो तुम्हारे भीतर घटेगा तो तुम जानोगे। मगर तुम डरते हो--करेंगे नहीं, देखेंगे। जैसे कोई सागर को देख कर तृप्त होगा? कि भोजन को देख कर भूख मिटेगी? यह तो पचाना

होगा! इसे तो पचाकर जीवनरस बनाना होगा। रक्त-मांस-मज्जा में रूपांतरित करना होगा। मगर डर लगता है कि वह तो रक्त-मांस-मज्जा में जिन्होंने रूपांतरित किया, वे तुम्हें लगते हैं कि कुछ अटपटा गए, कुछ बेबूझ हो गए; कहीं मैं भी बेबूझ न हो जाऊं!
अभी कुछ दिन पहले... यहां मेरी एक संन्यासिनी है, अमरीका में गोपा, उसके पिता आए। बहुत प्यारे आदमी थे! गोपा प्रसन्न है, आनंदित है--इसलिए उसे देखने आए थे। उसके आनंद, उसकी प्रसन्नता को देखकर खुद भी धीरे-धीरे डूबे। मुझसे बोले कि संन्यास लेने का मेरा मन है, लेकिन मेरी पत्नी कभी न समझ पाएगी। वह यहां है भी नहीं। उसे कुछ पता भी नहीं है। और वह बड़ी बौद्धिक किस्म की स्त्री है। और उससे हम सब घर के लोग डर कर ही जी रहे हैं। मैंने उनको कहा कि अगर इतनी झंझट हो, तो फिर दोबारा जब आएं तक देखना। मगर नहीं उनका मन माना--जैसे-जैसे नाचे, जैसे-जैसे ध्यान किया, अंततः कहने लगे कि नहीं, संन्यास लेकर जाऊंगा। गए। कल फोन आया है कि उनकी पत्नी ने उन्हें पागलखाने में भर्ती करवा दिया है। कारण? क्योंकि पत्नी यह मान नहीं सकती है कि मस्ती सच कैसे हो सकती है? वह कभी हंसे नहीं उसके सामने, उससे सदा डरते रहे, अब वह नाचते हैं उसके सामने। स्वभावतः पागल हो गए। अमरीका में तो स्वभावतः कहीं यह कोई बातें है होश की! कि पत्नी कुछ कहती है तो खिलखिला कर हंसते हैं। पत्नी समझाने की कोशिश करती है कि गेरुवा वस्त्र अलग करो, यह माला क्यों पहन रखी है, यह पहन कर बाहर कैसे निकलोगे घर के, तो मुस्कुराते हैं, हंसते हैं, नाचते हैं। स्वभावतः पत्नी ने समझा होगा कि दिमाग खराब हो गया।
और अड़चन ऐसी है, अगर तुम्हारा दिमाग खराब न हो, घर के लोग समझें कि दिमाग खराब है, तो तुम्हें और हंसी आएगी। कि यह भी खूब रही! तो वह समझाते होंगे, कि मैं पाग नहीं हूं। मगर जब भी कोई समझाने लगे कि मैं पागल नहीं हूं, तो और शक होता है कि होना ही चाहिए पागल, नहीं तो समझाओगे क्या? वह चिकित्सक को समझाते होंगे मैं पागल नहीं हूं, तो उनकी पत्नी उनसे कहती होगा--चुप रहो, तुम्हें बीच में बोलने की जरूरत नहीं है! हमको पता नहीं है कि पागल यानी क्या होता है? तुम चुप रहो! डाक्टर को जांच करने दो।
और जब भी तुम डाक्टर के पास जाओ--कभी तुम स्वस्थ हालत में भी जाकर देख लेना, वह कोई न कोई बीमारी निकालेगा। तुम चले जाना, जब बिल्कुल स्वस्थ अनुभव हो कि कोई बीमारी नहीं है, सब ठीक है, डाक्टर के पास चले जाना। वह कोई न कोई बीमारी जरूर निकाल लगो। एक नहीं अनेक निकाल सकता है। उसका धंधा यही है कि बीमारी निकाले, बीमारी खोजे। तुम आए उसके पास, यही काफी प्रमाण है कि तुम बीमार होने ही चाहिए। और बीमार भी पसंद नहीं करते अगर डाक्टर कोई बीमारी न निकाले। अगर डाक्टर कह दे कि तम बिल्कुल ठीक हो, तो मरीज सोचता है, किसी और डाक्टर के पास जाएं, यह भी कोई डाक्टर है! यह कोई बात हुई कहने की कि तुम बिल्कुल ठीक हो! कि हम तो इतनी मुसीबत में आए हैं और यह कहता है कि यह सिर्फ विचार की बात है! तुम्हारे मन में भांति हो गई है! ऐसे आदमियों को लोग पसंद नहीं करते। फिर डाक्टर ने फीस ली है। तो फीस को न्याययुक्त ठहराना भी चाहिए न! यह तो ऐसे ही फीस ले ली, न कोई बीमारी है, न कोई किरण है। तो डाक्टर कोई न कोई बीमारी खोजेगा। खोज ही लेगा। और मनोचिकित्सक के पास अगर तुम हंसोगे, प्रसन्न होओगे, तो वह जरूर समझेगा कि कुछ गड़बड़ हो गई। फ्रांस से एक युवक संन्यास लेकर गया। फ्रांस में नियम है--जैसा बहुत
से देशों में है--कि एक उम्र के बाद दो साल फौज में भर्ती होना पड़ेगा। वह जाते वक्त मुझसे पूछने लगा कि अब मैं क्या करूं, मैं फौज में भर्ती होना नहीं चाहता। यहां रह कर मैंने प्रेम का पाठ सीखा है, अब मैं किसी का पाठ नहीं सीखना चाहता। मैं क्या करूं? मैंने कहा, तू कुछ मत करना, जब कभी वे तुझे बुलाएं, तू कुंडलिनी ध्यान करना। उसको भी बात जंची। उसने कहा, यह बात बिल्कुल ठीक है। कुछ दिन पहले उसकी खबर आई कि उन लोगों ने करार दे दिया कि यह पागल है, इसको मिलिट्री में लेना ही मत! क्योंकि जब भी मैं जाता हूं दफ्तर में, बस जल्दी से हाथ-पैर हिला कर एकदम कुंडलिनी ध्यान करने लगता हूं। उन लोगों ने सब जांच करके देख लिया, पाया कि बिल्कुल पागल है। अब मुझे

बड़ी हंसी आती है, यह भी क्या जांच है! ये यह भी नहीं समझ पा रहे कि कुंडलिनी ध्यान है, इसमें पागलपन कुछ भी नहीं है।
आदमी तर्क खोज लेता है। आदमी शब्द खोज लेता है। आदमी बड़े तर्काभास पैदा कर लेता है अपने को बचाने के लिए। वैसे आदमी के लिए कहा है--जुगति बिना कोई भेद नहीं पावै, साधु-संगति का गोवै है। क्यों भाग रहे हो साधुओं की संगति से?
मंजिलें-दोस्त का निशां देखिए किस तरह मिले।
अकल तो खुद बहक गई, अब किसे रहनुमा करें?
किसी ऐसे व्यक्ति को खोजना होगा, ऐसा साथ खोजना होगा, जो अक्ल से ज्यादा गहरा हो, जो बुद्धि से ज्यादा गहरा हो। जिसकी रोशनी हृदय से उठती हो। सिर्फ विचार का ही सवाल न हो, अनुभव हो। जिसे दर्शन हुआ हो। जिसने जाना हो, जिसने देखा हो। जिसने वह चमत्कार देखा हो परमात्मा का।
सरापा सोज है ऐ दिल! सरापा नूर हो जाना।
अगर जलना तो जलकर, जलवागाहे-तूर हो जाना।।
हमारे-जख्म-दिल ने दिल्लगी अच्छी निकाली है।
छुपाए से तो छुप जाना मगर नासूर हो जाना।।
ख्याले-वस्ल को अब आर्जू झूला झुलाती है।
करीब आना दिले-मायूस के फिर दूर हो जाना।।
शबे-वस्ल अपनी आंखों ने अजब अंधेर देखा है।
नकाब उनका उलटना रात का काफूर हो जाता।।
मिलन की रात में, सुहागरात में आंखों ने एक अंधेर देखा है।
शबे-वस्ल अपनी आंखों ने अजब अंधेर देखा है।
नकाब उनका उलटना नरात का काफूर हो जाना।।
ऐसे किसी आदमी को खोजना होगा, जिसकी भांवरें पड़ गई परमात्मा से, जिसकी सुहागरात हो चुकी। जिसके माथे पर सुहाग का टीका है, और जिसने वह सबसे बड़ा अंधेर देख लिया कि उस परम प्यारे के मुंह से घूंघट का उठना कि सारे जगत से अंधेरे का विदा हो जाना, रोशनी ही रोशनी हर जाती, न भक्त बचता न भगवान बचता, बस दोनों एक महा-रोशनी के हिस्से हो जाते हैं। ऐसे किसी व्यक्ति को खोजे बिना युक्ति नहीं मिल सकती।
वस्ल की बनती हैं इन बातों से तदबीरें कहीं?
आर्जुओं से फिरा करती हैं तकदीरें कहा?
बैठे-बैठे सोचते ही मत रहना से किसी का मिलन नहीं हुआ है। सोचने से किसी को दर्शन नहीं हुआ है। सोचने से बाधा भला पड़ जाए, सेतु नहीं बनता है। आर्जुओं से फिरा करती हैं तकदीरें कहीं?
और सिर्फ आकांक्षाओं से कि ऐसा हो, वैसा हो, कल्पनाओं से किस्मतें नहीं बदला करतीं। कोई युक्ति चाहिए, कोई योग की विधि चाहिए।
कह दरिया कूटने बे गोदी, पटकि का रोवै है।।
भाग रहे हो साधु-संगति से और फिर सीस पटक कर रोते हो कि जिंदगी न मिली,
कि जिंदगी का राज न जाना, कि आनंद न मिला, कि सत्य न मिला, कि हम यूं ही व्यर्थ जिए। रोते हो सिर पट कर और भागते हो वहां से जहां से कुंजी मिल सकती थीं। वहां से पलायन कर जाते हो। इसलिए बड़ी कठोरता से--लेकिन फिर भी बड़ी करुणा से--दरिया ने कहा हैः कह दरिया कूटने बे गोदी... कूटने का अर्थ होता है, धूर्त, चालबाज... कह दिरया कूटने बे गोदी, कूटनीतिज्ञ, कूटने, धूर्त, धोखेबाज, बेईमान; और बे गोदी का अर्थ होता है, कायर।
तुम्हारे सारे तर्कजाल या तो तुम्हारी चालबाजियां हैं, या तुम्हारी कायरताएं हैं। जिसमें न चालबाजी है, न कायरता है, उसे साधु-संगति मिलेगी ही, मिल ही जाएगी--वह अपने घर में भी बैठा रहे तो गुरु से उसे खोजता हुआ आ जाता है।
कुछ भी हासिल न हुआ, जुहद से नखरत के सिवा।
शुग्ल बेकार हैं सब उसकी मोहब्बत के सिवा।।
कुछ भी हासिल न हुआ, जुहद से नखवत के सिवा।
झूठी उपासनाओं से काम न होगा। और तुमने जितनी उपासनाएं की है, बिना गुरु के हैं। इसलिए झूठी हैं। आरती भी उतार ली, पूजा भी कर ली, यज्ञ-हवन भी

किया, मगर किसने तुम्हें यह युक्ति दी? जिसने तुम्हें हवन करवाया, उसे परमात्मा मिला है? --यह तो जरा पूछ लो! उसकी हवा मगर परमात्मा का पराग उड़ता है? --यह तो जरा पूछ लो! उसकी आंखों में तो थोड़ा झांक लो! --वहां तारों की शीतलता है? उसका हाथ तो हाथ में लेकर लो! --वहां से कोई चुंबकीय ऊर्जा तुम्हें आकृष्ट करती, खींचती है? उसके पास चुप होकर बैठ लो, कोई बांसुरी सुनाई पड़ती है? नहीं, किराए का पंडित है, तुमने चार पैसे किराए के पंडित को दे दिए, उसने आकर हवन करवा दिया। तुम जैसा ही है। तुमसे जरा भी भिन्न नहीं है--तुमसे गया बीता भी हो सकता है।
कुछ भी हासिल न हुआ, जुहद से नखवत के सिवा।
झूठी उपासनाओं से कुछ भी कभी हासिल नहीं हुआ है।
शुग्ल बेकार हैं सब उसकी मोहब्बत के सिवा।।
सिवाय प्रेम के कोई प्रार्थना कभी सच्ची नहीं होती। मगर कौन तुम्हें प्रेम सिखाएं? जिसने प्रेम जाना हो, वही तुम्हें स्वाद लगाए। यह प्रेम समझाया नहीं जाता, सिखाया नहीं जाता। यह तो एक तरह की छूत की बीमारी है। प्रेम कातो संक्रमण होता है। यह तो छूत की तरह लगता है। सत्संग का अर्थ इतना ही है--कोई उस परम प्यारे को उपलब्ध हो गया, तुम उसके पास उठते रहो, बैठते रहो, उठते रहो, बैठते रहो, आज नहीं कल, कल नहीं परसाग, एक दिन बीमारी लग जाएगी। और यह बीमारी परम स्वास्थ है, परम सौभाग्य है!
विहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ।
जरा सोचो तो! कहां से आए, कुछ पता नहीं। क्यों आए, कुछ पता नहीं। और पक्षी, किस दिशा में उड़ जाओगे मरने के बाद, कुछ पता है? उसके पहले जिनको कुछ पता हो उनके साथ संबंध जोड़ो, उनसे कुछ नाता बनाओ।
विहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ।
पूछो अपने से--कहा रहे हो? और मौत आती है जल्दी। फिर देह तो यहीं पड़ी
रह जाएगी और यह भीतर छिपा हंस कहां जाएगा।?
नाम बिहूना सो परहीना...
और जिसने परमात्मा को स्मरण नहीं किया, उसके पंख नहीं हैं--ध्यान रखना--उसे उड़ाना नहीं हो सकेगा।
नाम बिहूना...
जिसके पास नमा नहीं है, परमात्मा का स्मरण नहीं है...
सो परहीना,
वह पंखरहित है।
भरमि-भरमि-भौ रहिहौ।।
यहीं-यहीं गिर जाओगे, तड़फड़ाओगे और यहीं-यहीं गिरते रहोगे। इसी तरह की
देहों में गिरते रहोगे। इन्हीं तरह के अंधेरे गर्भों में गिरते रहोगे।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौ रहिहौ।।
गुरुनिंदक वद संत के द्रोही, निंदै जनम गंवैहौ।
लेकिन लोग किसी सदगुरु के पास भी आ जाए तो भी संबंध नहीं जोड़ते संवाद नहीं जोड़ते, विवाद जोड़ते हैं। कुछ ऐसे लोग हैं कि अगर तुम गुलाब की झाड़ी के पास ले जाओ तो कांटों की गिनती करेंगे और फूलों को बिल्कुल देखेंगे ही नहीं। और जो कांटों की गिनती करेगा, उसके हाथों में अगर कांटे चुभ जाएं तो आश्चर्य क्या? अगर उसके हाथ लहूलुहान हो जाएं, तो आश्चर्य क्या? और जिसके हाथ लहूलुहान हो जाएं कांटों से, वह अगर गुलाब की झाड़ी पर नाराज हो जाए तो भी तर्कसंगत है। और जिसके हाथों में लहू हो और जिसकी आंखों में क्रोध हो, उसको गुलाब कैसे दिखाई पड़ेंगे? उसे गुलाब दिखाई नहीं पड़ेंगे। उसके लिए गुलाब भी कांटे हो गए। इससे उल्टे लोग भी हैं, जो गुलाब के फूलों को देखते हैं और ऐसे रस विमुग्ध हो जाते हैं कि उन्हें कांटे दिखाई ही नहीं पड़ते। उनके लिए धीरे-धीरे कांटे भी चूंकि गुलाब के फूल के रक्षक हैं, दुश्मन नहीं, प्यारे हो जाते हैं।
जीवन को देखने का विधायक ढंग है और एक नकारात्मक। किसी सदगुरु के पास जाकर भी तुम दोनों ही काम कर सकते हो। या तो नकारात्मक ढंग से देखो, तो हजार तुम्हें चूकें दिखाई पड़ जाएंगी। तुम खोज लोगे हजार चूकें। ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए। लेकिन इससे

तुम्हें क्या मिलेगा, यह सोचो! तुम्हें किसी ने पूछने के लिए बुलाया भी न था कि क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए। और बिना मांगे जो सलाह देता है, वह मूढ़ है। तुमसे किसने पूछा था कि गुलाब में कांटे होना चाहिए कि नहीं होने चाहिए? तुम आए थे गुलाब का रास ले लेते, गुलाब की गंध ले लेते, गुलाब के साथ नाच लेते, गुलाब के थोड़े गीत गा लेते, गुलाब जैसे हो जाते, गुलाब हो जाते। मगर तुमने वह छोड़ दिया वह मौका, तुमने कांटों का हिसाब किया।
सदगुरु के पास एक विधायक भावदशा हो तो ही संबंध जुड़ता है। अगर जरा भी नकारात्मक भावदशा हो तो संबंध जुड़ना तो दूर, संबंध जुड़ने की भावी संभावनाएं भी समाप्त हो जाती है।
गुरुनिंदक वद संत द्रोही, निंदै जनम गंवैहौ।
और गुरुओं की निंदा करके, संतों का विद्रोह करके, विरोध करके क्या मिलेगा तुम्हें? सिर्फ तुम्हारा जनम व्यर्थ चला जाएगा।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ।
और दौड़े फिर रहे हैं लोग, व्यर्थ की चीजों के प्रति। और व्यर्थ की चीजों में बड़े विधायक हैं। अगर दूसरे की स्त्री है, तो बड़ी सुंदर मालूम होती है। उसकी भूल-चूक नहीं दिखाई पड़ती। अगर दूसरे का महल है, बड़ा सुंदर मालूम पड़ता है; उसकी भूल-चूक नहीं दिखाई पड़ती। उस महल का मालिक रात में सो भी सकता है कि नहीं, इसका पता ही नहीं चलाते लोग। जिस सुंदर स्त्री को देख कर तुम मोहित हुए जा रहे हो, उसके पति की क्या गति है, इसका तुम्हें कुछ पता नहीं। गति कब से दुर्गति हो गई है, इसका तुम्हें कुछ पता हनीं।
व्यर्थ चीजों को तुम बड़ा विधायक ढंग से देखते हो--यह समझ लेना, यह एक
ही आदमी के दो पहलू हैं। जो व्यर्थ की चीजों को विधायक ढंग से देखता है, वह आदमी सार्थक चीजों को नकारात्मक ढंग से देखेगा--यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जो आदमी व्यर्थ की चीजों को नकारात्मक ढंग से देखता है, वह आदमी सार्थक चीजों को विधायक ढंग से देखता है। दोनों बातें सभी में होती हैं।
यह तो तुम्हारे पास प्रतिभा है, यह दुधारी तलवार है। इससे गलत को काटो
और ठीक को बचाओ। लेकिन कुछ लोग ठीक को काटते और गलत को बचाते। तो तलवार वह भी कर सकती है। जरा सोच-समझ कर कदम रखना जिंदगी में। अगर व्यर्थ में उलझना होने लगे, तो काटने की फिकर करना। तर्क का उपयोग करना। तलवार उठा लेना। और अगर कहीं सार्थक की थोड़ी सी भी गंध मिले, तलवार ढाल एक तरफ हटा देना। वहां डुबकी मारना।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ।।
क्या मिल जाएगा, इस बाहर की दौड़-घूप से, स्त्रियों के पीछे पुरुषों के पीछे, धन के पीछे, पद के पीछे, कौन सा गुण होगा? क्या लाभ होगा? किसको कब हुआ है?
मद पी माति मदन तन व्यापेउ, अमृत तति विष खैहौ।
और जितने ही कामवासना से भरे जाओगे और जितने ही मतवाले हो जाओगे काम से, मद पी माति मदन तन व्यापेउ, और जितना ही यह तृष्णा का जहर, कामना का जहर तुम्हारी देह में, रोएं-रोएं में समा जाएगा, उतना ही मुश्किल होती जाएगी। अमृत पीने के लिए, अयोग्य होते जाओगे। अब अमृत तजि विष खैहौ। और अमृत भी मिल सकता था, मगर लोगों ने विष चुन लिया है।
सच तो यह है, पीने के ढंग की ही बात है, पीने के अंदाज की बात है, जहर अमृत हो जाता है, अमृत जहर हो जाता है। यही दुनिया तो तुम्हें मिली है, यही दुनिया बुद्ध को। यही दुनिया तुम्हें मिली, यही दरिया को। मगर इसी दुनिया में दरिया ने परमात्मा खोज लिया, तुम कूड़ा-करकट बटोरते रहे। इसी दुनिया में बुद्ध ने निर्वाण पा लिया, तुम क्या पा रहे हो? दुनिया वही है, इसी में कोई अमृत पी लेता है, कोई जहर। बस पीने के अंदाज की बात हैं; पीने की शैली और ढंग की बात है।
समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ।।
और जरा सोचो तो, मौत प्रतिक्षण करीब आ रही है। हर वक्त उसका तीर तुम्हारे करीब से करीब आता जा रहा है। वह बिल्कुल तुम्हारी घात में बैठी

है। किस क्षण उसकी नंगी तलवार तुम्हारी गर्दन को काट देगी, कुछ पता नहीं। कल होगा भी या नहीं, पता नहीं! और फिर भी तुम व्यर्थ में उलझते हो! मौत भी तुम्हें जगा नहीं पाती! कैसी होगी गहरी तुम्हारी निद्रा!
चरनकवल बिन सो बूड़ेउ...
और जिसने किसी ऐसे सदगुरु की रोशनी में आंखें खोलना नहीं सीखा है, जिसने किसी सदगुरु के चरणों में झुकना नहीं सीखा है, और जिसने किसी सदगुरु के हाथों में अपना हाथ नहीं दे दिया है, वह डूबेगा।
... उभि चुभि थाह न पैहौ।
डुबकिया खाओगे, दुख पाओगे और थाह भी न मिलेगी इस सरोवर की--इस जीवन-सरोवर की। थाह भी पाई है लोगों ने। जिनने पाई है, उनके पास बैठो, संग साधो।
डरो मत! डरना स्वाभाविक है। क्योंकि उनके पास बैठने का अर्थ है, एक तरह की मृत्यु। अहंकार की मृत्यु। और अहंकार मरे तभी तो तुम्हारे भीतर आत्मा का उजियारा प्रकट हो सकता है। अहंकार टूटे तो आत्मा जन्मे।
तुम पर मिटे तो जिंदए-जावेद हो गए।
हमको बका नसीब हुई है, फना के बाद।।
जो भी मिटना सीख गया है सत्य के राह में, परमात्मा की राह में...
तुम पर मिटे तो जिंदए-जावेद हो गए...
उसने अमृत जीवन पा लिया।
हमको बका नसीब हुई है, फना के बाद।।
यही रजा है। मिटने के बाद होना मिलता है। फना के बाद बका। जिसने अपने
को शून्य कर लिया, उसमें पूर्ण उतर आता है।
तुम पर मिटे तो जिंदए-जावेद हो गए।
हमको बका नसीब हुई है, फना के बाद।।
और मिटना भी कुछ ऐसा-वैसा नहीं, थोड़ा बहुत नहीं, आंशिक नहीं, समग्र।
कुछ भी न बचे, तो ही सत्संग।
सुबह तक वह भी न छोड़े तूने ऐ बादे-शबा
यादगारे-रौनके-महफिल थी परवाने की खाक
परवाना तो मिट ही जाता है, लेकिन सुबह होते-होते उसकी राख भी हवा उड़ा
ले जाता है, वह भी नहीं बचती।
सुबह तक वह भी न छोड़ी तूने ऐ बादे-शबा
यादगार-रौनके-महफिल थी परवाने की खाक
कम से कम परवाने की खाक तो रह जाने देती। एक याद दास्त रहती। मगर नहीं, सुबह होते-होते हवा उसे भी उड़ा ले जाती है। परवाना तो रात ही जल जाता है, सुबह होते-होते उसकी राख भी उड़ जाती है। और तभी, उस अपूर्व क्षण में, जब तुम नहीं हो, परमात्मा का पदार्पण होता है, अवतरण होता है।
कहै दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गंवैहौ।
कर लो याद। कर लोग आयोजन मिटने का। वही आयोजन भजन है। भजन का अर्थ है, जिसमें तुम डूबो और मिटो। भजन का अर्थ है, जिसमें तुम न बचो।
कहै दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ-रोइ जनम गंवैहौ।
विहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ। थोड़ा सोच लो। क्षणभर रुककर पुनर्विचार कर लो।
बुधजन, चलहु अगम पथ भारी।
ऐ सोचने-समझने वाले लोगो, बुधजन, चलहु अगम पथ भारी, अगर सच में ही तुम सोचते- समझने वाले हो, अगर बुद्धिमान हो, तो आओ, अगम्य के इस पथ पर चलें! खोजें इस अनंत को! पाएं इस अज्ञात और अज्ञेय को! चलें इस महायात्रा पर, तीर्थयात्रा पर!
हजूम-गम ने सिखाने की लाख की कोशिश...
हमें तो आह भी करना न उम्र भर आया।
लहद में शाना हिलाकर यह मौत कहानी है--
ले अब तो चौंक मुसाफिर कि अपने घर आया।
सबक तो मकतबे-उल्हत में सबका था यकसां।
किसी को शुक्र, किसी को फकत गिला आया।।
शराब दे कि न दे तुझ पै मैं फिदा साकी!

मुझे तो बात में तरी बड़ा मजा आया।।
सबूके आते ही अल्लाह रे खुशी ऐ मस्त!
इमाम आए, रसूल आ गए, खुदा आया।।
यह दुनिया एक ही है, सिर्फ बुद्धिमत्ता की बात है। थोड़ी बुद्धि की क्षमता जन्माओ। और बुद्धिमत्ता से मेरा अर्थ बौद्धिकता नहीं है। बुद्धिमत्ता से मेरा अर्थ है--विवेक, प्रज्ञा। बौद्धिकता का अर्थ होता है, पढ़ो खूब शास्त्र और किताबें और खूब इकट्ठा कर लो सूचनाएं--तो बौद्धिकता, इंटेलेक्चुअॅलिटी। और जीवन को परखो, जीवन को समझो--तर्क से नहीं, शास्त्र से नहीं साक्षात से, जीवन के अनुभव से--तो एक और ही बात पैदा होती हैः बुद्धिमत्ता, इंटेलिजेंस।
इंटेलीजेंस और इंटेलिक्ट में बड़ा फर्क है। बुद्धिमत्ता और बौद्धिकता में बड़ा फर्क है। बौद्धिकता के हृदय का कोई हाथ ही नहीं होता। और बुद्धिमत्ता में हृदय ही आधार होता है। बुद्धिमत्ता में बुद्धि हृदय की सेवा करती है, बुद्धि हृदय के काम आती। और बौद्धिकता में हृदय को तो फांसी लगा दी जाती है जिसे गुलाम होना था--बुद्धि--वह मालिक होकर बैठ जाती है। बुद्धि मालिक की तरह खतरनाक है, सेवा की तरह बड़ी उपयोगी है। बुद्धिमत्ता में बुद्धि सेवक होती है, बौद्धिकता में बुद्धि मालिक होती है।
हजमे-गम ने सिखाने की लाख की कोशिश
हमें तो आह भी करना न उम्र भर आया।
और जिंदगी तो बहुत कोशिश कर रही है सिखाने की। इतने दुख हैं, लेकिन फिर भी तुम्हें आह भरना नहीं आ सका! जिंदगी सिखाती है और तुम सीखते नहीं।
अगर ठीक से आह भरो तो उसी से प्रार्थना पैदा हो जाए। अगर जिंदगी के दुख ठीक से देख लो, उसी से परमात्मा की प्यास पैदा हो जाए।
हुजूमे-गम ने सिखाने की लाख की कोशिश
हमें तो आह भी करना न उम्र भर आया।
लहद में शाना हिलाकर यह मौत कहती है--
ले अब तो चौंक मुसाफिर कि अपने घर आया।
मगर मौत भी आ जाती है भी कुछ हैं कि नहीं जागते, नहीं जागते!
एक आदमी मर रहा था--रहा होगा शुद्ध मारवाडी--पत्नी बैठी है, आखिरी घड़ी है, मारवाड़ी ने पूछा कि चुन्नू की मां, चुन्नू कहां है? सोचा चून्नु की मां ने कि बेटे की याद आ रही है। बड़े बेटे का नाम चुन्नू। रहा होगा चुन्नीलाल सेठिया इत्यादि, चुन्नू घर का नाम। कहा--घबड़ाएं न, चिंता न करें, चुन्नू आपके पास बैठा है, उस तरफ बिस्तर के। और मुन्नू कहा है? कहा कि मुन्नू भी बैठा हुआ है, आप चिंता न करें और छुन्नू कहां है? और पत्नी ने कहा, आप बिल्कुल आरा करें--वह उठने की चेष्टा करने लगा बूढ़ा! तो उसने कहा, सब यहीं हैं तो दुकान कौन चला रहा है? मरने के वक्त! और यह कह के ही गिरा और मर गया। यह कोई प्रेम के कारण नहीं पूछ रहा था कि चुन्नू कहां है, मुन्नू कहां है, छुन्नू कहां है, इससे प्रेम का कोई लेना-देना नहीं, दुकान चल रही है कि नहीं? दुकान कौन देख रहा है? तो नालायकों, दुकान क्या नौकरों के ऊपर ही छोड़कर आ गए हो?
इधर जिंदगी खतम हुई जा रही है, उधर अभी दुकान चलाने के ख्याल उठ रहे हैं। नहीं, बहुत कम हैं जिनको मौत में भी याद आती है।
लहद में शाना हिला कर यह मौत कहती है--
ले अब तो चौंक मुसाफिर कि अपने घर आया।
मगर कहां? न जिंदगी चौंकाती है तुम्हें, न मौत चौंकाती है, तुम्हारी नींद बड़ी गहरी है। तुम तो अगर सत्संग करो तो शायद जगो!
तीन ही उपाय हैं इस जिंदगी में जागने के। एक तो जिंदगी उपाय है, सबसे कारगर उपाय है। मगर हम तो जिंदगी बहुत बार जी लिए तो हम आदी हो गए हैं। जिंदगी शोरगुल मचाती रहती है, हम सुनते ही नहीं। हमारी हालत वैसी है जैसे जो आदमी रेलवे-स्टेशन पर काम करता है, उसे रेलो की आवाज सुनाई नहीं पड़ती, वह वहीं मजे से सो जाता है।
मेरे एक मित्र है, उनका काम ही, एजेंट हैं किसी कंपनी के तो सफर ही करना उनका काम है, वह घर नहीं सो पाते। वह कहते हैं, जब तक मैं ट्रेन में न

होऊं, नींद नहीं आती है। जब तक खटर-पटर न हो ट्रेन की, तब तक उन्हें नींद नहीं आती। वह जब किसी गांव में भी जाते हैं तो होटल में नहीं ठहरते, स्टेशन पर ही ठहरते हैं। उनको उतना उपद्रव चाहिए ही। जिंदगी हो गई है सफर करते- करते, वह अब आदत का हिस्सा हो गया है। ऐसे ही तुम अनेक-अनेक बार जी लिए हो, इसलिए जिंदगी चूक जाती है। तुम आदमी हो गए हो। और अनेक बार तुम मर भी चुके हो--दूसरा उपाय है मौत, कि मौत तुम्हें जगा दे, मगर अनंत बार तुम मर चुके हो, मौत के भी तुम आदी हो गए हो। अब तो बस तीसरा एक ही उपाय बचता है--सदगुरु। सदगुरु के पास तुम कभी नहीं गए हो, क्योंकि गए होते तो तुम होते नहीं।
जन्मे भी बहुत बार, मरे भी बहुत बार, सिर्फ सदगुरु से बचते रहे हो। तो अब एक ही उपाय बचा है कि तुम किसी सदगुरु की शरण गह लो।
बुधजन, चलहु अगम पथ भारी।
सदगुरु की शरण गह लो तो बस अब आ जाए।
सबूके आते ही अल्लाह रे खुशी ऐ मस्त!
इमाम आए, रसूल आ गए, खुदा आया।।
सब आ जाए।
तुमते कहौं समुझ जो आवै, अबरि के बार सम्हारी।।
कितनी बार तो चूक गए, दरिया कहते हैं, इस बार न चुको। अब की बार न चूको।
अबरि के बार सम्हारी। सब तो सम्हाल जाओ। तुमते कहौं समुझ जो आवै, सुन लो, समझ लो, तुमसे कहता हूं बार-बार, अबरि के बार सम्हारी। कितना तो चूके हो, इस बार चौंको, मत चूको! इस बार चुनौती लो, जाओ! दरिया तुमसे जो कहते, वही मैं तुमसे कहता--अबरि के बार सम्हारी।
कांट कूस पाहन नहिंह तहवां, उस यात्रा पर चलना है जहां न घास-पात है, कुश इत्यादि नहीं जिसको पड में, हवन में काम लाया जाता है, पूजा-पाठ में काम लाया जाता है। कांट कूट पाहन नहिं तहवां... वहां कोई पत्थर की मूर्तियां नहीं--पत्थर ही वहां नहीं--उस मंजिल पर चलना है... नाहिं बिटप बन झारी। न वहां झाड़ हैं, न पीपल देवता है, और न और तरह की झाड़ियां हैं जिनको पूजा चले, तुलसी इत्यादि।
वेद कितेब पंडित नहिं तहवा, न वहां वेद हैं, न कितेब--न कुरान--न कोई और किताबें हैं वहां। पंडित नहहिं तहवां, और वहां तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित नहीं हैं, शब्दों के जाल नहीं, सिद्धांतों के जाल नहीं। बिनु मसि अंक संवारी। वहां तो कुछ लिखा है जरूर, लेकिन वह स्याही से लिखा हुआ नहीं है। वहां जरूर कोई उच्चार हो रहा है, लेकिन वह उच्चार शब्द का नहीं है, शून्य का है। वहां जरूर कोई नाद है, कोई संगीत है, मगर वह वीणा पर पैदा किया गया संगीत नहीं है, आहत नाद नहीं है, वहां ओंकार गूंज रहा है।
नहिं तहं सरिता समुंद न गंगा, न वहां सागर है, न कोई सरिता है, न कोई गंगा है। ग्यान के गमि उजियारी, वहां तो बस ज्ञान का उजियाला है--उजियाला ही उजियाला, उजियाले का सागर, उजियालग की सरिता, उजियाले की गंगा।
नहिं तहं गनपति फनपति बरह्मा, न तो वहां गणपति हैं--गणेश ही--न फनपति--
न शेषनाग--न ब्रह्मा, वहां ब्रह्मा भी नहीं हैं। नहिं तहं सृष्टि संवारी। वहां न कोई स्रष्टा है, न कोई सृष्टि है। वहां तो सब शांत है और सब शून्य है और सब मौन है। वहां तो बस उजियाला है। प्रकाश स्वरूप है परमात्मा। वहां तो वह है जो सृष्टि के पहले था और सृष्टि के बाद भी होगा। वहां कोई सपना नहीं है।
सर्ग पताल मृतलोक के बाहर, न तो वहां स्वर्ग है, न नर्क, न मुत्यृलोक।
वह तीनों के बाहर है। तहवां पुरुष भुवारी। और वही असली मालकियत है। वहीं तुम सम्राट हो जाओगे। वहीं तुम भूपाल हो जाओगे--भुवारी। वहीं तुम स्वामी बनोगे। उसके पहले भिखमंगे ही रहोगे। नरक में तो, स्वर्ग में रहो तो, पृथ्वी पर रहो तो, सब जगह भिखारी रहोगे।
तुम देखते हो न, पृथ्वी पर तो हम जानते ही हैं कि सब भिखारी ही भिखारी हैं। मां रहे हैं, यह मिल जाए, हम मिल जाए, यह मिल जो। जो मांगता है, वह मांगना। वासना भिखमंगापन है। और नरक तो तुम सोच ही सकते हो, हालत और खराब होगी! पहले तो थी, अब का कुछ कहा नहीं जा सकता! अब हालत यह है कि यहीं हालत इतनी खराब है कि कौन जाने नरक में शायद थोड़ी ठीक भी हो।

मैंने सुना है एक राजनेता दिल्ली में मेरे। राजनेता थे, बड़े राजनेता थे। राजघाट में उनकी समाधि बनाई गई थी। तो स्वर्ग तो उनकी जाना निश्चित ही था। जो यहां जमा लेते हैं सांठ-सांठ, वे कहां भी जमा लेते हैं। जिनको सांठ-सांठ जमाना जाता है, वे कोई फिकर करते हैं यहां की, वहां की, वे सब जगह जमा लेते हैं। स्वर्ग जाना निश्चित ही थी। वे पहले ही स्वर्ग जाने की टिकट लेकर ही चले थे। मगर पहला पड़ाव उन्होंने नरक में किया। शैतान बड़ा हैरान हुआ। शैतान ने कहा, नेताजी, आप के पास तो सीधी टिकट स्वर्ग की है--कैसे आपने पाई, मैं पूछता भी नहीं; लेकिन टिकट स्वर्ग की है, आप यहां क्यों रुकते हैं? लेकिन नेताजी ने कहा, ऐसा है, स्वर्ग जाने के पहले थोड़ी सी शांति और आनंद का अभ्यास तो कर लूं। थोड़ा स्वर्ग जाने के योग्य तो हो जाऊं। इसलिए नरक में टिकता हूं। शैतान बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, आप कह क्या रहे हैं? उन्होंने कहा, हां, दिल्ली से यहां ज्यादा शांति है। दिल्ली तो बड़ी मुश्किल थी! एक क्षण चैन, ध्यान करना कहां संभव! कोई अचकन खींच रहा है, कोई चूड़ीदार पजामा खींच रहा है, कोई नाफा ही ले भागा! ध्यान करना, बैठने की सुविधा कहां! दिल्ली में और ध्यान! इसलिए नरक में थोड़ा विश्राम करेंगे, ध्यान करेंगे, थोड़े सुख का अनुभव लेंगे, फिर दूसरा पड़ाव स्वर्ग। एकदम से ज्यादा सुख भी शायद सहा जाए, न सहा जाए; उतनी शांति शायद भाए, न भाई; इसलिए थोड़ी देर यहां रुक जाने दो।
पहले तो ऐसा था कि नरक की हालत खराब थी, अब की मैं नहीं कह सकता। अब तो हालत पृथ्वी पर और भी बुरी है। पृथ्वी तो भिखमंगे हैं, नरक में भी भिखमंगे हैं, स्वाभाविक। क्योंकि जहां दुख है, वहां भिखमंगापन है। लेकिन स्वर्ग में भी भिखमंगे हैं। तुम अपने पुराणों को उठा कर देखो, तुमको पता चल जाएगा। स्वर्ग में भी बड़ा भिखमंगापन है। वहां भी बड़ी दौड़ है। कहानियां हैं पुराणों में, वे कहानियां अर्थपूर्ण हैं। कि स्वर्ग के देवता भी जमीन पर आ जाते हैं। किसी ऋषि की स्त्री के साथ व्यभिचार कर जाते हैं। स्वर्ग के देवता! यह तो हद हो गई भिखमंगेपन की। ऊब जाते होंगे अप्सराओं से, तो थोड़ा स्वाद बदलने को--आ जाते होंगे पृथ्वी पर! ऊब गए उर्वशी इत्यादि से, तो उन्होंने कहा, चलो जरा हेमामालिनी को मिल आएं! ये तुम्हारे देवी-देवता? देवियों की भी यही हालत है, कुछ देवताओं से बेहतर नहीं है, क्योंकि वहां समानता है। वहां देवी-देवता सब बराबर हैं। ऐसा नहीं है जमीन जैसा कि देवता तो कुछ भी करें लोग कहते हैं, भाई, वे तो पुरुष हैं। स्त्रियां कुछ करें तो अड़चन आती है। जब शादी होती है तो लड़की का कुंआरापन पक्का करने की हम चेष्टा करते हैं, लड़के के क्वांरेपन की कोई फिकर नहीं करता। लड़के तो लड़के हैं! और लड़की लड़की नहीं है? लड़की भी लड़की है। मगर यहां भेद हैं। यहां पुरुषों ने स्त्री को खूब दबा रखा है। लेकिन स्वर्ग में कोई भेद नहीं है। तो देवियां भी आ जाती हैं। इंद्र ही नहीं ऊब जाते उर्वशी से; उर्वशी भी इंद्र से ऊब जाती है। तो कथाएं हैं कि उर्वशी ऊब गई एक बार बहुत, तो चली आई पृथ्वी पर, पुरुरवा के साथ रही। थक गई देवताओं को भोगते-भोगते! मनुष्यों को भोगने की आकांक्षा जगी।
यह तो भिखमंगापन ही है। इसमें कुछ भेद नहीं है। जरा भी भेद नहीं है।
यह इसी पृथ्वी का ही विस्तार मालूम होता है। इसी का एक्सटेंशन। थोड़ा इससे बेहतर होगा। जैसे लोग जिनके पास सुविधा होती है, बीच बाजार में नहीं रहते, सब अर्ब में रहते हैं। ऐसे स्वर्ग इसीका सब अर्ब समझो। कि जरा सुविधा है वहां, थोड़ा बगीचा लगा सकते हो। अगर यही भय और यही परेशानियां वहां हैं। जरा ही कोई ऋषि मुनि ध्यान ज्यादा कर लेता है कि इंद्र का इंद्रासन डोलने लगता है। यह तो खूब राजनीति हुई! और इंद्र घबड़ा जाता है। तत्क्षण भेज देता है सुंदर रमणियों को कि सताओ ऋषि को। यह ऋषि महाराज ज्यादा आगे बढ़े जा रहे हैं। क्योंकि अगर इतने ज्यादा पुण्य कर लिया, तो यह इंद्र हो जाएंगे। फिर मेरी गद्दी का क्या होगा?
इसमें तो कुछ बहुत फर्क न हुआ। यह तो बात कही की कही रही जो दिल्ली की थी। देखते, अभी चरणसिंह ने किसान-रैली कर ली। मतलब मोरारजी का आसन डगमगाने लगा। अब वह घबड़ाए, कि अब जल्दी चरणसिंह को पावस मंत्रिमंडल में लो, अब कुछ न कुछ करो! ये ऋषि-मुनि आगे बढ़े जा रहे हैं! इंद्र भी घबड़ाता है। पुराणों

में कथाएं भरी पड़ी हैं, इंद्र घबड़ा जाता है। जरा ही किसी ऋषि-मुनि ने त्याग किया, उपवास किया--अब ये गरीब ऋषि-मुनि, यह सिर्फ भूखे बैठे ध्यान कर रहे हैं आंख बंद किए, इनसे क्यों परेशान होते हो? और अगर स्वर्ग में भी यह चिंता बनी हुई है तो क्या खाक स्वर्ग है!
इसलिए जिन्होंने जाना है, उन्होंने स्वर्ग की आकांक्षा नहीं की। हमारे पास, सारी पृथ्वी की भाषाओं में सिर्फ हमारे पास शब्द है--मोक्ष। दुनिया की किसी भाषा में मोक्ष शब्द का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है। दुनिया में जितने धर्म भारत के अतिरिक्त पैदा हुए--ईसाइयत, इस्लाम, यहूदी-- उनके पास स्वर्ग और नरक बस दो ही शब्द हैं, मोक्ष जैसा कोई शब्द नहीं है। मोक्ष की धारणा बड़ी अदभुत धारणा है। नरक है दुख ही दुख, स्वर्ग है सुख ही सुख। मगर हमने यह अनुभव किया कि सुख और दुख अलग-अलग नहीं होते, यह एक ही सिक्के के दो पहलू है। इसलिए स्वर्ग और नरक बहुत दूर नहीं हो सकते, पड़ोस में ही होगे। बीच में झीनी सी दीवाल होगी। क्योंकि जहां सुख है वहां दुख होना ही चाहिए। नहीं तो सुख पता ही न चलेगा। और जहां दुख है वहां सुख होना ही चाहिए। नहीं तो दुख का पता न चलेगा। तो नरक में भी समझो कि सुख है--एक प्रतिशत होगा, निन्यानबे प्रतिशत दुख होगा और स्वर्ग में भी दुख है--एक प्रतिशत होगा और निन्नयानबे प्रतिशत सुख होगा--मगर दोनों साथ ही हो सकते हैं। ये सीधा सा मनोविज्ञान है।
इसलिए हमने एक तीसरी अवस्था की तलाश की--मोक्ष। मोक्ष का अर्थ है, न जहां दुख है, न जहां सुख है। फिर वहां क्या होगा? वहां परम शांति होगी, शून्यता होगी, सन्नाटा होगा। उस सन्नाटे को ही हमने ब्रह्म कहा है, उस सन्नाटे को ही हमने सत्य कहा है--सत्यम शिवम सुंदरम्। उसे ही हमने सच्चिदानंद कहा है।
सर्ग पताल मृतलोक के बाहर, तहवां पुरुष भुवारी।
और वहीं पहुंच कर, मोक्ष में पहुंच कर ही तुम मालिक होओगे, उसके पहले मालिक नहीं हो सकते।
कहै दरिया तहं दरसन सत है...
और जब ऐसी अवस्था आ जाए जहां न दुख, न सुख, और परम शाति है--शांति ही शांति है--तब जाननाः
कहै दरिया तहं दरसन सत है...
वहां जो दिखाई पड़े, वही सत्य है।
... संतन लेहु विचारी।।
अगर विचारना ही हो कुछ, तो इस बात विचारों, संतों! हे बुधजन, चलहु अगम
पथ भारी। अगर देखने योग्य कुछ है, तो बस सत्य है।
यही है धुन कि तेरी जलवागाह में जाकर।
हजार आंखें हों, और सबसे यार को देखे।।
आंखें ही आंखें रह जाएं, और चारों तरफ फैला हुआ प्रकाश, वही प्रीतम है, वही यार है। उसकी ही तलाश चल रही है। परमात्मा मोक्ष है, मुक्ति है; परमात्मा परम स्वतंत्रता है।
सोचना हो कुछ, तो ऐसी बात सोचना; भावना हो कुछ, तो ऐसी बात भावना ध्यान में लाने योग्य कुछ लगे, तो बस यही है, इसका ध्यान करना, धारणा करना तो शायद यह जीवन व्यर्थ न जाए जैसे और जीवन व्यर्थ गए हैं।
अबरि के बार सम्हारी--तुमते कहौं समुझ जो आवै--
बुधजन, चलहु अगम पथ भारी।

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
दूसरा प्रवचन

वसंत तो परमात्मा का स्वभाव है

पहला प्रश्नः आपने संन्यासीरूपी प्रसाद दिया है, वह पचा सकूंगी या नहीं? उससे जो प्रेम, खुशी, आनंद दिया है--वह कहीं भी नहीं पाया। और भी डूबना चाहती हूं, ताकि मैं खो जाऊं। कैसे?

मंजुला! मनुष्य की क्षमता अपार है। मनुष्य बूंद में पूरा सागर है। समग्र परमात्मा को पचाने के क्षमता है उसकी। उसने कम में तृप्ति भी हनीं होने वाली उससे पहले जो रुक गए, नासमझ हैं। परमात्मा को ही पीना है, परमात्मा को ही पचाना है--और पूरा-पूरा। जब तुम्हारे हृदय का एक भी परमात्मा से अछूता रह जाए तब तक बेचैनी बनी रहेगी। एक भी कण तुम्हारा परमात्मा से पृथक रह जाए, तो संताप भूतरूप से परमात्मा को पचा ले और स्वयं को परमात्मा में डूबा दे।
संन्यास से शुरुआत, मंजुला, अंत नहीं। यात्रा का पहला कदम हैं। लेकिन हमें अपनी क्षमता का बोध नहीं है। और हमें हमारी क्षमता का बोध होने भी नहीं दिया जाता। सदियों-सदियों से तुम्हें समझाया गया है--पापी हो। सदियों-सदियों से तुम्हारी निंदा की गई है। तुम्हारे तथाकथित साधु-संत अगर कोई एक काम करते रहे हैं निरंतर, तो वह है तुम्हारी निंदा का। और तुम उस निंदा को सुनते रहे हो। निंदा की पर्तों पर पर्तें तुम्हारे भीतर जम गई हैं। तुम्हें जम गई है। तुम्हें अपने पर भरोसा खो गया है। और जिसे अपने पर भरोसा खो जाए, उसकी आत्मा खो गई। और जिसके हृदय में अपने प्रति निंदा आ जाए, उसका परमात्मा से सेतु टूट गया। क्योंकि इसी आत्मा को लेकर तो परमात्मा के द्वार पर जाना है। यही तो हमारी भेंट है। यही तो हमारी अर्चन है, यहीं हमारी पूजा है। अगर यह फूल नहीं हैं, तो किस मुंह को लेकर परमात्मा के द्वार पर जाओ? और साधु-संतों ने मनुष्य की इतनी निंदा की है! उसे नारकीय कीड़ा कहा है। नारकीय कीड़े कैसे परमात्मा तक पहुंचेंगे? और इतनी तरकीब से निंदा की है, इतना गणित उसमें बिठाया है कि तुम्हें पता भी नहीं चलता है। और निंदा इतनी प्राचीन है कि करीब-करीब सनातन धर्म मालूम होती है। इतने दिनों से सुनी है बकवास कि वह बकवास तुम्हारा संस्कार बन गई है।
क्यों? क्या होगा इसके पीछे राज?
इसके पीछे राज है, राजनीति है। राजनीति यह है कि मनुष्य अगर निंदित हो, तो उसका शोषण आसानी से किया जा सकता है। क्योंकि निंदित मनुष्य भयभीत हो जाता है। और जो भयभीत है, वह कायर होता है। जो कायर है, उसमें बगावत मर जाती है। मनुष्य को डरा दो, फिर वह जंजीरें पहनने को राजी हो जाएगा। उसे कंपित कर दो, फिर वे किन्हीं के भी चरणों में सिर रखने को राजी हो जाएगा। उसे कंपित कर दो, उसका आत्म-गौरव छीन लो, उसकी गरिमा नष्ट कर दो, फिर वह किसी के भी सामने झुकने को आतुर रहेगा। वह खोजेगा ऐसे लोग जिनके सामने झुके। उसकी तुमने रीढ़ तोड़ दी। अब वह सीधा खड़ा नहीं हो सकता। अब वह आज्ञाकारी होगा--आत्मवान नहीं आज्ञाकारी। अब उसके भीतर चेतना नहीं होगी, थोथा चरित्र होगा। अब उसके भीतर धर्म का सूरज नहीं ऊगेगा। नीति का पाखंड, बस यही उसकी जिंदगी होगी। भीतर कुछ, बाहर कुछ। मुखौटे ओढ़े हुए जीएगा वह आदमी। और यही राजनेता चाहते हैं, यही पंडित-पुरोहित चाहते हैं, यही तथाकथित धर्मगुरु चाहते हैं। आदमी को गुलाम बनाने का बड़ा आयोजन चल रहा है, बड़ा शड्यंत्र चल रहा है। उसमें धर्मगुरु और राजनेता सदा से सम्मिलित रहे हैं। उन दोनों ने आदमी की गर्दन को पकड़ रखा है।
मैं चाहता हूं, तुम्हारी आत्मगरिमा वापस दूं। चाहता हूं कि तुम्हें याद दिलाऊं कि तुम परमात्मा को भी पचा लो, इतनी तुम्हारी क्षमता है इससे कम तुम्हारी क्षमता नहीं है। सारा आकाश तुम्हारे भीतर समा जाए, इतना तुम्हारा विस्तार है। आकाश तुमसे छोटा है। अंतर-आकाश बाहर के आकाश से अनंत गुना बड़ा है। अनंत-अनंत गुना बड़ा है। संन्यास इस बात की उदघोषणा है

कि तुमने अपने पापी होने का भाव छोड़ दिया, कि तुमने पंडित-पुरोहितों की बकवास से छुटकारा कर लिया, कि तुमने वह कूड़ा-करकट अपने सिर से झाड़ कर फेंक दिया कि तुम साफ-सुथरे हुए। संन्यास इस बात की घोषणा है कि अब मैं आज्ञाकारी नहीं हूं, आत्मवान हूं।
आत्मवान का अर्थ यह नहीं होता कि वह जरूरी रूप से आज्ञाएं तोड़ेगा। आत्मावान का इतना ही अर्थ होता है, आज्ञा विवेकपूर्ण होगी तो स्वीकार करेगा, अविवेकपूर्ण होगी तो स्वीकार करेगा। आत्मवान का इतना ही अर्थ होता है कि उस पर कुछ थोपा न जा सकेगा। वह मिट जाएगा, मगर किसी चीज को थोपे जाने के लिए राजी न होगा। मिट जाएगा। लेकिन बिकेगा नहीं। बाजार में तुम उसे बेच न सकोगे। तुम उसे गुलाब न कर सकोगे। तुम लाख प्रलोभन दो और लाख भय दो, तुम उसे कारागृहों में कैद न कर सकोगे। तुम उसे सींकचों में बंद न कर सकोगे। विद्रोह उसके भीतर की चमक होगी--असली धार्मिक आदमी विद्रोही होता है। असली धार्मिक आदमी इस महिमा के बोध से आनंदित होता है कि मैं छुद्र नहीं हूं--अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। अनहलक, मैं हक हूं, मैं सत्य हूं।
और ध्यान रखना, इस उदघोषणा में अहंकार नहीं है। जब तक अहंकार हो तब तक तो ऐसी उदघोषणा हो ही नहीं सकती।
क्यों इस उदघोषणा में अहंकारी नहीं--मालूम तो होती है! जब कोई कहता है--अहं ब्रह्मास्मि, तो लगता है कि यह तो बड़े अहंकार की बात हो गई। नहीं। क्योंकि जब कोई कहता है, अहं ब्रह्मास्मि, तो उसने यह भी कह दिया--तुम भी ब्रह्म हो। अगर कोई कहे कि मैं ब्रह्म हूं, तुम भी ब्रह्म हो, पत्थर-पत्थर ब्रह्म ही का छिपा हुआ रूप है, इस पूरे ब्रह्मांड के भीतर ब्रह्म छिपा है-- इसीलिए तो हम इसे ब्रह्मांड कहते हैं--यह उसका डंडा है जिनसे ब्रह्मा प्रकट होता है, या प्रकट हो रहा है, यह सारा का सारा अस्तित्व ब्रह्ममय है, ऐसी जिसकी उदघोषणा है, वही संन्यासी है।
मंजूला; जरा भी सोचना नहीं कि संन्यास का जो प्रसाद मिला है वह पचा सकूंगी या नहीं? यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो बस शुरुआत है। अभी तो बहुत बड़े डग भरने है! अभी तो सागर पीने हैं! अभी तो ब्रह्म को पचाना है। और जितना तुम्हारा अपने पर भरोसा होगा, उतना संभावनाओं के द्वार खुलते चले जाते हैं।
पूछा हैः "और भी डूबना चाहती हूं ताकि मैं खो जाऊं। कैसे?"
खोने का एक ही उपाय है--मैं-भाव गिर। अहंभाव गिरे। ब्रह्मभाव बढ़े। अहं ब्रह्मास्मि में, मैं ब्रह्म हूं में सारे अध्यात्म का सार सूत्र आ गया। मैं घटता जाए, ब्रह्म बढ़ता जाए। जिस दिन ऐसी घड़ी आ जाए कि मैं का पता न चले और ब्रह्म ही ब्रह्म का बोध हो, उस दिन जानना मंजिल आ गई। अभी तो ऐसा है, ब्रह्म का तो कुछ पता नहीं चलता, ब्रह्मचर्चा चलती है! ब्रह्म का कुछ पता नहीं चलता। शब्द ही है कोरा, थोथा। इस शब्द में अभी कोई अर्थ नहीं है। अर्थ तो डालना पड़ता है अहंकार के विसर्जन से। अहंकार का विसर्जन अब ध्यान में रहे। ऐसा कुछ भी न करो, जिससे अहंकार संपुष्ट हो, बलिष्ठ हो, अशक्त हो। ऐसा सब कुछ करो, जिससे अहंकार गिरे, विदा हो। बस यही तुम्हारी चर्या है, यही संन्यास का आदेश है। बस इतनी ही जांच करते रहना कि जो भी मैं करूंगा मैं करूं, उसे अहंकार भरने के लिए तो नहीं कर सकता हूं। इतना स्मरण रहे, क्योंकि अहंकार भरने के लिए किया गया दान पाप हो जाता है, अहंकार भरने के लिए किया गया पुण्य पाप हो जाता है। और निरअहंकारिता से जो भी होता है, वही पुण्य है। उठना-बैठना है। श्वास लेना पुण्य है।
यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह जन हैः गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गाएगा?
पनडुब्बाः ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लाएगा?
यह समिधाः ऐसी आग अठीला बिरला सुलगाएगा।
यह अद्वितीयः यह मेराः यह मैं स्वयं विसर्जित यह दीप, अकेला स्नेह भरा,

है गर्व भरा मदमाता, पर
इस का भी पंक्ति को दे दो।

यह मधु हैः स्वयं काल की मीना का युग-संचय, यह गोरसः जीवन-कामधेनु का अमृत-पूत पय, यह अंकुरः फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयंयम्भू, ब्रह्म, अयुतः
इसको भी शक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा,
वह पीड़ा, जिस की गहराई को स्वयं उसी ने नापा;
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंध आते कडुवे, अनुरक्त-नेत्र, उल्लंब-बाहु, यह चिर-अखंड अपनापन।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इस को भक्ति को दे दोः
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।
जैसे कोई दिए को छोड़ देता है नहीं की धार में, इस अंधकार के दिए को भी पंक्ति को दे दो। छोड़ दो इसे भी नदी की धार में। बह जाने दो इसे, बचाओ मत, सम्हालो मत।
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदताता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।
और प्यारा भी है वह दीप, सदी-सदी अनंत-अनंत काल में साथ भी रहा है, और इसने थोड़ी बहुत रोशनी भी दी है, ऐसा भी नहीं है कि इसने कोई रोशनी न दी हो, इसने अंधेरे में जैसे अंधे के हाथ की लकड़ी होती है ऐसा तुम्हें सहारा भी दिया है, लेकिन फिर भी अंधे की लकड़ी आंख नहीं है। और जब आंख मिल रही हो, तो लकड़ी छोड़ देनी होगी। जब चलना जाए, तो फिर सहारे छोड़ देने होते हैं। धन्यवाद दे दो इस अहंकार को कि खूब दूर तक तुमने साथ दिया, बंधु, लेकिन जब विदा, अलविदा!
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।
जाने दो, बह जाने दो इसे। तुम बचो, अहंकार न बचे। अस्तित्व बचे, अस्मिता न बचे। बस फिर आकाशों के आकाश भी तुम में समा जाएं, इतने तुम बड़े हो, इतने तुम विराट हो!
पूछा हैः "क्या करूं? कैसे यह घटित होगा?"
तुम्हारे कुछ करने से यह घटित नहीं हो सकता। क्योंकि तुम कुछ भी करो मंजुला, मैंने किया है, यह भाव सघन होगा। कुछ भी करो! अहंकार छोड़ने का उपाय करो, तो भी भीतर यह अहंकार घना होगा कि अहह, मैं अहंकार छोड़ रही, अहंकार गिरा रही! यह नया अहंकार खड़ा हो जाएगा। और यह अहंकार पहले से ज्यादा सूक्ष्म होगा और ज्यादा घातक होगा। जितनी क्षमा हो कोई चीज, उतनी प्रबल और शक्तिशाली हो जाती है। क्योंकि जीतनी सूक्ष्म हो, उतनी ही अदृश्य हो जाती है। दिखाई नहीं पड़ती। और शत्रु अदृश्य हो तो बहुत खतरनाक हो जाता है। दृश्य हो, तो बचने का कुछ उपाय करो, ढाल उठा लो जब वह तलवार चलाए, लेकिन दृश्य न हो, फिर ढाल कैसे उठाओगे? अदृश्य अहंकार खतरनाक हो जाता है। साधारण लोगों का अहंकार दृश्य अहंकार है। और जिनको तुम त्यागी-तपस्वी कहते हो, मानते हो, उनका अहंकार अदृश्य अहंकार है।

और उन्होंने अहंकार कैसे पा लिया? अहंकार छोड़ने की कोशिश में और एक नया अहंकार पा लिया जो पहले से ज्यादा बदतर है। छोड़ने की कोशिश मत करना। फिर अहंकार कैसे जाएगा? जागने की कोशिश करो। होशपूर्ण हो जाओ। अहंकार को छोड़ो मत, अहंकार को देखो कहां है। और तुम चकित, आश्चर्य चकित, आश्चर्य विमुग्ध हो उठोगे, क्योंकि जैसे ही देखने चलोगे, अहंकार नहीं पाओगे। और तब, तब एक चकित कर देने वाला होता है, अवाक कर देने वाला अनुभव होता है कि अहंकार था ही नहीं, बस मेरी मान्यता थी। इसलिए न तो पकड़ा जा सकता था, न छोड़ा जा सकता था। जाग कर देखा और खो गया।
और अगर बिना कुछ किए चलता ही न हो--क्योंकि हमारी जन्मों-जन्मों की आदत है, कुछ करने की; हम बिना किए क्षण भर को नहीं रह सकते। मैं किसी को कहता हूं कि घड़ी भर रोज शांत बैठा लिया करे, वह कहता है--लेकिन करे क्या? आप कुछ मंत्र इत्यादि दे दें--जाप करें, माला फेरें; कोई मंत्र दे दें--राम, ओम, अल्लाह--कुछ रटें, कुछ तो चाहिए। आलंबन के नाम से वह यह कह रहा है कि हम घड़ी भर भी बिना किए नहीं रह सकते, कुछ करें, तो ही बैठ सकते हैं। तो कुछ भी बकवास दे दो, तो भी चलेगा। कोई नमोकार मंत्र और गायत्री की ही जरूरत नहीं है, कुछ भी; अललटप्पू भी दे दो। तो चलेगा, बस उसको दोहराते रहें तो एक काम रहेगा। कोका कोला, कोका कोला, कोका कोला कहते रहें, तो भी चलेगा--कोई राम-राम, राम-राम, राम-राम कहने का ही कोई सवाल नहीं है! अगर कुछ करने को रहे। माला ही पकड़ा दो तो उसको फेरते रहेंगे, मगर कृत्य रहना चाहिए।
अगर अड़चन ही हो कि बिना किए जागना बनता ही न हो--सब से ऊंची बात तो है
कि चुप हो जाओ; घड़ी-भर रोज अपने भीतर झांककर देख लो, जब समय मिले तब आंख बंद करके झांक कर देखो, यह अहंकार क्या है? कहां है? खोजो! घूम आओगे पूरे अपने आंगन में भीतर के, कोने-कोने में, और कहीं उसे पाओगे नहीं; और उसके न पाने में ही मुक्ति है--मगर अगर यह न हो सके तो उससे एक कदम नीचे की बात प्रार्थना है। तो फिर परमात्मा से कहो! तुम्हारे किए तो गड़बड़ हो जाएगी। तो फिर परमात्मा से प्रार्थना से प्रार्थना करो!
बंधन दिए तो मुक्ति भी दो
बांध शत-शत बंधनों में,
दुख दिया मधुमय क्षणों में,
वेदना को सह सकूं
ऐसी मुझे तुम शक्ति भी दो।
बंधन दिये तो मुक्ति भी दो!

ऊब कर इस निखिल जग में,
डगमगाते पैर मग में,
आज जग के कार्य में
इस हृदय को अनुरक्ति भी दो! बंधन दिये तो मुक्ति भी दो!
अति सरल विश्वास लेकर
आंसुओं का अर्ध्य दे कर
मांगती वरदान
चरणों की मुझे चिर शक्ति भी दो!
बंधन दिये तो मुक्ति भी दो!
न करो कुछ, तो श्रेष्ठतम। न किए बने ही नहीं, तो द्वितीय बात है-- प्रार्थना करो। कृत्य-शून्यता के जो निकटतम बात है, वह प्रार्थना है। और प्रार्थना भी शब्दों में मत करना सिर्फ भाव की हो। बस झुक जाना भाव से। नहीं कि कोई बंधी-बंधाई औपचारिक प्रार्थना दोहराना--कि जय जगदीश हरे--उससे नहीं होगा कुछ, शब्द-शून्य, भावपूर्ण लेट जाना चरणों में उसके अज्ञात, बस कह देना एक बार कि बंधन दिए, अब तू ही मुक्ति दे! तूने ही दिया होगा अहंकार, अब तू ही ले ले! त्वदीयां वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये। यह तेरी चीज है, तू सम्हाल।

लेकिन यह नंबर दो की बात है, ध्यान रखना। बन सके तो नंबर एक! प्रतिभाशाली के लिए नंबर एक। अगर प्रतिभा बिल्कुल न हो, अगर समझ हो ही न, अगर समझ में धार बिल्कुल न हो, बोथली हो समझ, तो नंबर दो।

दूसरा प्रश्नः मैं वृद्ध हो गया हूं, सोचता था कि अब मेरे लिए कोई उपाय नहीं है। लेकिन आपके शब्दों ने फिर उत्साह जगा दिया है। रोशनी खोती आंखें फिर किसी अज्ञात प्रकाश की किरण से आंदोलित हो उठी है। भगवान, यह क्या हो रहा है? मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं?

जीवन भर स्वप्न देखे और यह प्रश्न न उठाया। ऐसा अदभुत है मनुष्य का मन। दुख हो, तो हम मान लेते हैं कि सच है। अंधेरा हो तो हम श्रद्धा रखते हैं कि है। प्रकाश की किरण दिखाई पड़े, तो शक उठता है, संदेह उठता है। स्वप्न तो नहीं, कोई भ्रांति तो नहीं? ध्यान में जब साधक उतरते हैं और जब पहली दफा उन्हें आनंद की लहर छूती है--तो यह रोज की घटना है--वह मुझसे आकर कहते हैं कि हमको भरोसा नहीं आता। यह कोई भ्रम तो नहीं है। मैं उनसे पूछता हूं, जिंदगी भर इतने दुख उठाए, कभी यह प्रश्न न उठाया कि भ्रम तो नहीं है, आज जरा सी सुख की पुलक आई, एक छोटा सा फूल खिला और भरोसा खो दिया!
हम दुख के प्रति इतने श्रद्धावान क्यों है? हम दुख को क्यों मान लेते हैं? सुख को क्यों नहीं मान पाते?
शायद कारण यही है कि सदियों-सदियों से दुख तो परिचित है और सुख अपरिचित है। दुख को तो हमने अंगीकार कर लिया है कि दुख है ही और सुख का तो हम स्वाद ही भूल गए हैं। अब जो जहर ही पीता हो, जहर ही जीता रहा हो, एकदम एक दिन अचानक अमृत की बूंद उसकी जीभ पर पड़ जाए, वह भरोसा न कर सकेगा। कैसे भरोसा करे? बात भी समझ में आती है। लेकिन जिस पर हम भरोसा करते हैं उसको हम बल देते हैं, यह भी ख्याल रखना। और जिस पर हम श्रद्धा करते हैं, उसमें हम अपनी ऊर्जा डालते हैं। और जिसमें हमारी श्रद्धा है, वह बढ़ता जाएगा। और जिस में हमारी अश्रद्धा है, उसके लिए हमने द्वार बंद कर दिए। तुम उसी अतिथि के लिए द्वार खोलते हो जिसका तुम्हें भरोसा है कि आता होगा। तुम उसी की बाट जोहते हो जिसके आने का भरोसा है।
दुख की हम राह देखते है, दुख के लिए द्वार खोले बैठे हैं, बंदनवार सजाए बैठे हैं, सुस्वागतम लिखा हुआ है--दुख के लिए। और सुख अगर द्वार पर दस्तक दे, हम जल्दी घबड़ाहट में द्वार बंद कर देते हैं। हमें भरोसा ही नहीं आता कि सुख और मेरे द्वार! ऐसा कभी नहीं हो सकता। भूल-चूक हो गई होगी। किसी और द्वार पर जाने वाला अतिथि यहां आ गया होगा। या हो सकता है मैंने कोई स्वप्न देखा--दिवा-स्वप्न, खुली आंख का स्वप्न। सुख और मुझे!
तुम कहते, मैं वृद्ध हो गया हूं। नहीं, तुम कभी वृद्ध नहीं हो और न कभी वृद्ध हो सकते हो। जो वृद्ध होता है, वह तुम नहीं हो। शरीर कभी बच्चा होता है, कभी जवान होता कभी बूढ़ा होता है, तुम न कभी बच्चे थे, न कभी जवान थे, न कभी बूढ़े। तुम बचपन के भी साक्षी थे, जवानी के भी साक्षी थे, बुढ़ापे के भी साक्षी हो। तुम जीवन के भी साक्षी थे और मृत्यु के भी साक्षी रहोगे। तुम साक्षी हो। कैसा वार्धक्य? कैसा जन्म? कैसी मृत्यु? मगर हमें जीना ही नहीं आया। क्योंकि हमारा साक्षी ही नहीं जगा। हम तो ऐसे ही धक्के-मुक्के खाते रहे और कहते रहे--जीवन है--बचपन ने धकाया तो जवान हो गए, जवानी ने धकाया तो बूढ़े हो गए, जिंदगी ने धकाया तो मर गए, कब्र में चले गए। कब्र धका देगी तो फिर किसी गर्भ में प्रविष्ट हो जाएंगे। ऐसे खाते रहे धक्के। यह जिंदगी नहीं है।
दुनिया में जो हैं भी तो न होने की तरह।
जागे भी अगर कभी तो सोने की तरह।।
हंसना तो बड़ी बात है, इसका क्या जिक्र।
रोना है कि रोए भी न रोने की तरह।।
यहां कुछ भी स्वस्थ नहीं है। हंसने की तो बात ही छोड़ दो, रोना है कि रोए भी न रोने की तरह।

हमारा कुछ भी सच्चा और प्रामाणिक नहीं है। तुम कुनकुने-कुनकुने हैं। हमारे जीवन में त्वरा नहीं है। हमने किसी क्षण को उसकी समग्रता में नहीं जीया है। इसीलिए चूक हो रही है। क्योंकि जो व्यक्ति किसी भी क्षण को समग्रता में जीता है, उसे साक्षी का अनुभव होने ही लगता है। समग्रता एक तरफ घटती है, दूसरी तरफ साक्षी घटता है। समग्रता और साक्षी एक ही घटना के दो पहलू हैं।
किसी भी घड़ी में समग्ररूपेण जीओ और तुम चकित होओगे कि तुम्हारे भीतर साक्षी जग गया। नाचो समग्ररूपेण, ऐसे कि नाच ही बचे, ऐसे कि तुमने अपनी सारी ऊर्जा उंड़ेल दी, अपनी सारी शक्ति डाल दी, कि कुछ बचाया नहीं, कि कुछ सम्हाल नहीं, कि कोई कृपणता न की, और तम तब बड़े हैरान होओगे--देह नाच रही है और तुम जाग कर देख रहे हो? जब देह पूरी-पूरी नृत्य में होगी, तभी तुम्हारे भीतर साक्षी सजग हो जाएगा। परिधि तो पूरी त्वरा से घूमेंगी और केंद्र परिपूर्ण रूप से जागा हुआ देखेगा घूमती हुई परिधि को।
न हम बच्चों को बच्चे रहने देते, हम बच्चों को बूढ़ा होने की चेष्टा में लगा देते हैं। बच्चा कूदे तो कहते हैं--बैठो, शांत बैठो! तुम्हें अकल हनीं है? अकल तुम्हें नहीं है। बच्चा अभी बूढ़े की तरह बैठ नहीं सकता-- तुम्हें यह अकल नहीं है। बच्चा नाचे, कूदे, वृक्षों पर चढ़े तो हम कहते हैं-- तुम्हें बुद्धि है या नहीं? शांति से बैठो, किताब पढ़ो! स्कूल का काम करो। यह झाड़ पर चढ़ने से क्या होगा? गिर-गिरा गए तो और टांग टूट जाएगी। हम बच्चों को यह कह रहे हैं कि अभी तुझे बच्चा होना पूरा-पूरा ठीक नहीं, अभी से बूढ़ा हो जा। अभी से सम्हल कर चल। फिर गैर-सम्हल कर कब चलेगा? फिर यह अनुभव चूक ही जाएगा। और जो बच्चा अभी से कुनकुना-कुनकुना जीने लगा, उसकी जवानी भी कुनकुनी हो जाएगी; क्योंकि एक चीज दूसरे से जड़ी है।
और जवानी को भी हम जवान नहीं होने देते। इतना काट-पीट कर देते हैं उनकी जिंदगी में, इतना दमन सिखाते हैं, इतने अवरोध डाल देते हैं कि हम उन्हें कभी पूरा जवान नहीं होने देते। और इसलिए फिर जब बुढ़ापा भी आता है, तो बुढ़ापा भी फिर सुंदर नहीं होता। क्योंकि समग्र नहीं होता। जो भी समग्र है, वही सुंदर है। और जो भी समग्र है, उसी के पीछे साक्षी का जागरण होता है। तुम कहते हैं, मैं वृद्ध हो गया हूं। नहीं, कोई कभी वृद्ध हुआ नहीं, तुम कैसे ही जाओगे? तम अपवाद नहीं हो सकते। कभी कोई वृद्ध नहीं हुआ--यहां कभी कोई वृद्ध होता ही नहीं। वृद्ध होना स्वप्न है। क्योंकि शरीर से तादात्म्य बना रखा है। कल शरीर बीमार था तो तुम बीमार हो गए थे। और आज शरीर स्वस्थ है तो तुम स्वस्थ हो गए। शरीर जैसे रंग बदलता है, उसके साथ तुम रंग बदल लेते हो। और तुम शरीर नहीं हो। और अगर यह तुम्हें याद आ जाए तुम बड़े चकित होओगे--शरीर बीमार है और तुम स्वस्थ! और शरीर बूढ़ा है और तुम पर रंचमात्र इसकी छाया नहीं पड़ती शायद मेरी बातों को सुन कर यही तुम्हें स्मरण आया, यही तुम्हारे जीवन के किरण आई, यही आशा जगी, यही उत्साह पैदा हुआ।
कहा, तुमने, सोचता था कि अब मेरे लिए कोई उपाय नहीं। ऐसा तो कभी नहीं
हो सकता। सुबह का भूला सांझ भी घर आए तो भी भूला नहीं कहाता। आखिरी क्षण तक भी बोध हो सकता है। मरते-मरते भी बोध हो सकता है। आखिरी क्षण में इधर सांस टूटने को और बोध हो सकता है। क्योंकि बोध में समय लगता ही नहीं। दो पलो के बीच में जो खाली जगह है, उसमें बोध होता है। और दो पलो के बीच में। जो खाली जगह है, उसे हम नाप ही नहीं सकते--वह इतनी छोटी है। इसीलिए तो उसको दो पलो के बीच में रखा है। और ध्यान रखना, हर दो पल के बीच में थोड़ी सी जगह है। नहीं तो एक पल दूसरे पल पर चढ़ जाएगा। जैसे मालगाड़ी का एक्सीडेंट हो जाए और एक डिब्बे पर चढ़ जाए। फिर एक पल को तुम दूसरे पल से अलग न कर सकोगे। एक सेकंड गया, दूसरा आया, दूसरा गया, तीसरा आया; जरूर हर सेकंड के बीच थोड़ा सा विरोम होगा।
यह मेरी दो अंगुलियां देखे हो? ये दो हैं, क्योंकि बीच में खाली जगह है। अगर बीच में खाली जगह न हो तो अंगुली एक हो जाएगी। इन दो अंगुलियों को कितने ही पास ले आऊं तो भी इनके बीच में खाली जगह है ही--कम हो जाए, मगर है। खाली जगह न रहेगी तो दो अंगुलियां एक हो जाएंगी। हर दो शब्दों के बीच में

खाली जगह है। हर दो क्षणों के बीच में खाली जगह है। बोध की घटना उस रिक्त स्थान में घटती है। इसीलिए तो ज्ञानियों ने कहा है--अगर शास्त्र पढ़ने हों तो शब्दों में मत पढ़ना, शब्दों के बीच में जो खाली जगह है उनमें पढ़ना। अगर शास्त्र पढ़ने हों तो पंक्तियों में मत पढ़ना, दो पंक्तियों के बीच में जो खाली जगह है वहां पढ़ना। यह केवल सूचक बातें हैं। शब्दों मग नहीं, दो शब्दों के बीच। क्षणों में नहीं, दो क्षणों के बीच। तो मरते-मरते भी जाग सकता है कोई। कभी भी इतनी देर नहीं हो गई। कभी इतनी देर होती ही नहीं। भय न करो!
कहते होः "सोचता था कि अब मेरे लिए कोई उपाय नहीं है।"
नहीं उपाय सदा है। यह बड़ा आश्वासन है कि उपाय सदा है। और मौत तो हमेशा उतनी ही दूर है।
कल एक युवती आई। उसका छोटा सा बच्चा--डेढ़ साल का--गिर गया फव्वारे और समाप्त हो गया। वह मुझसे पूछते लगी कि ऐसा क्यों हुआ? मैंने उसे कहा-- व्यर्थ के सवालों में मत पड़! और मैं तुझे कोई सांत्वना नहीं दूंगा, कि ऐसा क्यों हुआ; कि तुझे ऊंची-ऊंची बातें करूं कि जो परमात्मा के प्यारे होते हैं, उन्हें परमात्मा जल्दी उठा लेता है। यह सब बकवास मैं न करूंगा तुझसे। यह तो समझाने की बातें हैं, यह तो मलहम-पट्टियां हैं। अब किसी का बच्चा मर गया है, अब उसको क्या कहो! तो लोग कुछ रास्ते खोज लिए हैं, कि परमात्मा के जो प्यारे होते हैं, उनको जल्दी उठा लेता है। तो बाकी जो परमात्मा के प्यारे नहीं हैं, वह ही यहां जी रहे हैं, तो बुद्ध बयासी साल तक जिए, परमात्मा के प्यारे नहीं थे! कृष्ण भी अस्सी साल तक जीए, महावीर भी अस्सी साल जीए, तो परमात्मा के प्यारे नहीं होंगे। तो जो गर्भ में ही मर जाते हैं, वह बहुत प्यारे हैं! नहीं, यह सांत्वनाएं हैं। और मैं समझाता हूं, आदमी की मजबूरी भी है। अब किसी के घर ऐसी दुर्घटना घट जाए तो हम करें भी क्या? हमारी भी समझ में नहीं आता कि अब करें क्या? वह युवती मुझसे पूछती थी--ऐसा क्यों हुआ? मैंने कहा, मौत तो किसी की भी किसी भी क्षण घट सकती है। मौत न जवान देखती, न बूढ़े देखती। मौत तो आ रही है सभी की--देर-अबेर, क्या फर्क पड़ता है! मौत हमेशा अगले क्षण में है। घट सकती है। बच्चे की घट सकती है, बूढ़े की घट सकती है।
घर कब्र बने अब वह महल आ पहुंचा।
हुशियार कि पैगामे-अजल आ पहुंचा।।
लेकर खते-शौक चल चुका है कासिद।
पहुंचा न अर आज तो कल आ पहुंचा।।
घर कब्र बने अब वह महल आ पहुंचा।
वह घड़ी आ गई, जब घर कब्र बनेगा। मगर वह घड़ी आई ही हुई है। घर कब्र बना
ही हुआ है।
हुशियार कि पैगामे-अजल आ पहुंचा।।
मृत्यु का संदेश आ गया। मगर आया ही हुआ है। जिस दिन से हम पैदा हुए, उसी दिन से मौत आनी शुरू हो गई। सच तो यह है, जन्म के दिन दिन को जन्मदिन नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जन्म के दिन ही तो मौत की यात्रा शुरू होती है।
जैसे ही हम पैदा हुए कि हमने मरना शुरू कर दिया। एक दिन बच्चा जी लिया, मतलब एक दिन मर गया। जो तुम जन्म-दिन मानते हो, जन्म-दिन न मान कर मृत्युदिन मनाओ तो ठीक। क्योंकि इतनी मौत और करीब आ गई।
लेकर खते-शौके चल चुका है कासिद।
वह हरकारा मौत का पत्र लेकर चल ही चुका है, जिस दिन तुम पैदा हुए उसी दिन चल चुका है।
पहुंचा न अगर आज तो कल आ पहुंचा।।
अब देर-अबेर है, आज नहीं आ पाया, कहीं राह में रुक गया होगा, विश्राम कर लिया होगा, किसी धर्मशाला में नींद लग गई होगी, तो कल आ जाएगा। मगर मौत तो घटने वाली है। अदभुत बात है कि जीवन में और सब अनिश्चित है, सिर्फ मौत निश्चित है। यह भी कैसा जीवन! इसको जीवन कैसे कहें जहां सिर्फ मौत निश्चित है! एकमात्र चीज सुनिश्चित है, वह मौत। एक ही बात की गारंटी दी जा सकती है कि मरोगे। औरतों किसी बात की गारंटी नहीं दी जा सकती। और तो सब बातें हों,

न हों, मगर मौत जरूर होगी। गरीब की होगी, अमीर की होगी; कुशल की, अकुशल की होगी; बुद्धू की होगी, बुद्धिमान की होगी। इस सारे जगत के इतने बड़े विस्तार में एक ही बात सुनिश्चित है--मृत्यु। जो इतनी सुनिश्चित है, वह सात दिन बाद आई तो, सत्तर वर्ष बाद आई तो, क्या फर्क पड़ेगा! जो समझदार है, वह तो प्रतिपल जानता है कि मौत आ रही।
लेकर खते-शौक चल चुका है कसिद।
पहुंचा न अगर आज तो कल आ पहुंचा।।
तुम कहते हो, सोचता था अब मेरे लिए कोई उपाय नहीं, लेकिन आपके शब्दों
ने फिर उत्साह जगा दिया है। मेरे शब्दों ने उत्साह नहीं जगाया, उत्साह तो तुम्हारे भीतर है ही, तुम विस्मृत कर बैठे थे, विस्मरण हो गया था। मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं--कोई किसी को कुछ दे नहीं सकता--जो तुम्हारे भीतर है, उसकी याद दिलाई जा सकती है।
इसे तुम मुझसे मत बांधना। नहीं तो यहां से जाओगे और सोचोगे कि अब जिसने जगाया था, वही नहीं, तो फिर उत्साह सो जाएगा। यह तुम्हारे ही भीतर है। यह तुम्हारी ही भेंट है तुम्हारे लिए। मैं अगर कुछ था तो निर्मित था। इस निर्मित को कारण मत समझ लेना। नहीं तो मुझसे दूर गए, फिर उत्साह खो जाएगा। मेरे शब्दों ने तुम्हारे भीतर उत्साह को जन्माया नहीं है, सिर्फ तुम्हें याद दिला दी है कि तुम्हारे भीतर इतनी क्षमता है। इसे तुम भूल बैठे थे। तुम्हारी जेब में खजाना था और तुम्हें याद भूल गई थी, मैंने सिर्फ तुम्हें याद दिला दी। अब याद को बनाए रखना।
कहा तुमने, रोशनी खोती आंखें फिर किसी अज्ञात प्रकाश की किरण से आंदोलित हो गई हैं। वह प्रकाश की किरण भी सदा से मौजूद है। मगर तुम उसकी तरफ देखते नहीं, देखते ही नहीं। तुम पीठ किए हो, तुम विमुख हो। तुम सूरज की तरफ पीठ किए खड़े हो। मेरी बातों में आकर तुमने जरा पीछे लौटकर देख लिया, बस। सूरज तुम्हारा है, लौट कर देखना तुम्हारी क्षमता है, आंखें तुम्हारे पास हैं, तुम रोशनी में जी सकते हो, मगर तुमने अंधेरे में जीने का तय कर लिया था। यह तुम्हारा निर्णय था।
गिला जलवे को तेरे था कि आलम आश्कारा है,
हमें रोना तो जो कुछ है वोह अपनी कम निगाही का।
उस परमात्मा की तो शिकायात ही नहीं की जा सकती, क्योंकि उसने तो चारों तरफ अपने जल्वे को, अपनी रोशनी को, अपने उत्सव को फैला रखा है। उसने तो कोई दिशा खाली नहीं रखी। वह तो बस दिशाओं में बरस रहा है। उससे। हम शिकायत नहीं कर सकते, उससे गिला नहीं कर सकते। हमें रोना है तो बस एक बात का रोना हम कर सकते हैं--अपनी कम निगाही का। हम देखते ही नहीं। आंखें हैं और आंखें बंद किए हैं। रोशनी मैं तुम्हें नहीं देता, सिर्फ पुकारता हूं कि जरा आंख खोलो। और अगर तुम सुन लो और आंख खोलो, तो रोशनी भी तुम्हारी है, आंख भी तुम्हारी है।
और अब तुम्हें विचार उठा है कि भगवान, यह क्या हो रहा है? मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं? भरोसा नहीं आता हमें कि शुभ हो सकता है। हमें अशुभ पर भरोसा है। बुरा ही हो सकता है। हमें कांटों के साथ बड़ी श्रद्धा है। फूल अगर खिलते भी हों तो हम सोचते हैं--सपना होंगे। यह दृष्टि बदलो, यह दर्शन बदलो। इसी गलत दृष्टि और दर्शन के कारण सत्य पर पर्दा पड़ा हुआ है। सत्य पर पर्दा नहीं है, तुम्हारी आंख पर पर्दा है।
नाफहमी अपनी पर्दा है दीदार के लिए।
वर्ना कोई नकाब नहीं यार के लिए।।
उस प्यारे के ऊपर कोई नकाब नहीं है, कोई पर्दा नहीं है। उसने कोई घूंघट नहीं डाल रखा है। लेकिन तुम्हारी आंख पर तुमने पट्टी बांध रखी है।
तुम कोल्हू के बैल जैसे हो। और बांधने वालों ने बड़ी तरकीब से बांधी है।
आंख पर पट्टी न हो तो तुम कभी के बगावत कर जाते। तुम थे राजनीतिज्ञों, दो कौड़ी के पंडित-पुरोहितों के चक्कर में न पड़ते। कभी के बाहर हो गए होते।
जंजीरें तोड़ दी होती।
देखते हो, तांगे में घोड़े को जोतते हैं तो आंख पर पट्टियां बांध देते हैं। नहीं तो घोड़ा निकल भागे। अगर उसको ठीक-ठीक दिखाई पड़ता रहे, तो निकल

भागे। उसे कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता, उसे बस सिर्फ आगे चार कदम दिखाई पड़ते हैं। चार कदम दिखाई पड़ते हैं, इसलिए उसे यह भरोसा भी नहीं आता कि भागूंगा भी तो भागूंगा कहां? जगह कहां है भागने की? धीरे-धीरे वह यह भरोसा कर लेता है--इतनी ही तो है, इतनी ही जिंदगी है।
एक दार्शनिक, विचारक तेली के घर तेल लेने गया था। तेली तेल बेच रहा था, उसके पीछे ही, पीठ के पीछे कोल्हू चल रहा था, तेल पेरा जा रहा था। एक बैल खींच रहा था कोल्हू को। वह दार्शनिक जरा हैरान हुआ--दार्शनिक आदमी था, हर चीज में प्रश्न उठाना उसकी आदत थी! उसने कहा कि मैं एक प्रश्न पूछूं? मेरी जिज्ञासा शांत करोगे? तेली ने कहा, आपकी जिज्ञासा और मैं शांत करूं? हम तो सुनते आए हैं कि आप लोगों की जिज्ञासा शांत करते हैं। उस दार्शनिक ने कहा, लेकिन यह जिज्ञासा दर्शन की नहीं है, कोल्हू से संबंधित है। मैं यह पूछना चाहता हूं कि कोई चलाने वाला नहीं है, बैल खुद खल कैसे रहा है? बैल कोल्हू को चला रहा है, वजन ढो रहा है, तेल पेर रहा है और चलाने वाला कोई भी नहीं! मैंने बहुत देखे, बहुत कोल्हू चलते देखे, मगर यह इतना आज्ञाकारी बैल! इतना धार्मिक बैल! इतना श्रद्धालु बैल! यह तुम्हें कहां मिल गया? इस जमाने में, कलियुग में कहां धार्मिक मिलते हैं? खोजे-खोजे नहीं मिलते। उस तेली ने मुस्कुरा कर कहा कि जरा आप गौर से देखें, उसकी आंख पर पट्टियां बंधी हुई हैं। उसे पता ही नहीं चलता कि कोई पीछे चलाने वाला है या नहीं। वह लौट कर नहीं देख सकता। वह इसी धोखे में है कि कोई चलाने वाला है। और कभी-कभी यहीं बैठे-बैठे में हांक देता हूं। बस वह समझता है मैं पीछे हूं।
मगर दार्शनिक ऐसे ही तो राजी नहीं हो जाता, इतनी जल्दी तो राजी नहीं
हो जाता। उसने पूछा कि यह मेरी समझ में आया कि आंख पर पट्टियां हैं। लेकिन कभी रुक करके जांच भी तो कर सकता है बैल कि जरा रुक कर देख ले कि है भी कोई पीछे कि नहीं? तो उसने कहा, आपने क्या मुझे बुद्धू समझ रखा है? मैंने उसके गले में घंटी बांध रखी है। वह चलता रहता है, घंटी बजती रहती है। जैसे ही रुका कि घंटी बंद हुई कि मैं उछल कर उसको हांक देता हूं, एक कोड़ा फटकार देता हूं। उसको यह भ्रांति मैं मिटने ही नहीं देता कि मैं पीछे हूं। मगर दार्शनिक तो दार्शनिक, उसने कहा बस एक बात और! मैं यह पूछना चाहता हूं कि बैल खड़े होकर गर्दन हिला कर घंटी नहीं बजा सकता? उस तेली ने कहा, महाराज जरा धीरे बोलो, कहीं बैल न सुन ले! और आप कृपा कर तेल कहीं और से खरीद लिया करें, इस तरह की बातें, क्या मेरे बैल को बिगाड़ना है?
पंडित-पुरोहितों ने तुम्हारी आंख पर खूब पट्टियां बांधी हैं, गले में घंटियां बांधी हैं। तुम चले जा रहे हो। तेल किसी के लिए पेर रहे हो, तेली के बैल हो गए हो। तो अब जब पहली बार तुम्हें थोड़ी सी रोशनी की किरण दिखाई पड़ी तो भरोसा नहीं आता। मगर मैं तुमसे कहता हूं--
खिजां में खुश्क शाखों से लिपट कर मुफ्त जी खोना।
बहार आएगी घबड़ाओ न ऐ उजड़े चमनवालो!
वसंत का तुम्हें भरोसा नहीं, पतझड़ ही पतझड़ तुमने देखे हैं। मैं तुमसे कहता हूं--वसंत भी आता है। वसंत भी आता है, वसंत है! पतझड़ है कहीं, तो तुम्हारी कोई भूल-चूक के कारण। वसंत तो परमात्मा का स्वभाव है। फूल खिलेंगे बहुत!
खिजां में खुश्क शाखों से लिपट कर मुफ्त जी खोना।
बाहर आई ही हुई है, जरा आंख खोलो, जरा पट्टियां सरकाओ, जरा शब्दों के जाल काटो, जरा सिद्धांतों के ऊपर सिर उठाओ और बहार आई हुई है। सारा अस्तित्व बहार में नाच रहा है--सिर्फ तुम्हें छोड़ कर। सब तरफ किरणें बरस रही हैं और सब तरफ परमात्मा का नृत्य है, उसकी बांसुरी बज रही है। परमात्मा न बच्चे देखता, न जवान, न बूढ़े। उसके महोत्सव में सभी को निमंत्रण है। तुम जिस दिन अपने को आनंद देने के लिए तत्परता दिखाओगे, उसी क्षण-घड़ी वह महासौभाग्य फलित हो जाएगा। जिसके लिए जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा की है।
अब यह जो छोटी सी किरण उतरी है, शक न करो, संदेह न करो, इसे स्वप्न न कहो। असलियत उलटी है--तुमने अब तक जो जाना, वह स्वप्न था, अब पहली बार सत्य की किरण उतरी है। इस किरण का साथ गहरा; इसको पकड़ ही लो, इसे छोड़ना मत।

क्योंकि इसी एक छोटी सी किरण के सहारे चलते रहे तो उस परम परमेश्वर के, परम प्रिय के महासूर्य तक पहुंच जाओगे। यह पतला सा धागा किरण का उससे जुड़ा है। मैं समझता हूं तुम्हारी अड़चन, तुम्हारी तकलीफ।
अति उदास संध्यान पतझर की!
शीध्र लौटते पक्षी घर को,
कलरव से भर कर अंबर को,
शांत सरोवर में सोई है
छाया किस आकुल अंतर की?
अति रदस संध्यान पतझर की! गोपद-घूलि पंथ में छाई,
किसकी सुधि मन में जग आई, कांप उठे हैं प्राण विकल हो लगन लगी राही को घर की!
अति उदास संध्या पतझर की!
सूखे पत्ते झर-झर पड़ते,
नव बसंत का स्वागत करते,
पाती हूं अपने अंतर में
अमर शून्यता ही अंबरकी!
अति उदास संध्यान पतझर की!
मानता हूं बूढ़े हो गए तुम, संध्या है अब, उदास संध्या है, पत्ते झर-झर
कर गिर रहे हैं!
गोपद-धूलि पंथ में छोई,
किसकी सुधि मन में जग आई,
लेकिन यह गौण है तुम्हारा बुढ़ापा और यह पतझड़ और यह संध्या। महत्वपूर्ण है--
किसकी सुधि मन में जग आई,
गोपद-धूलि पंथ में छाई,
कांट उठे हैं प्राण विकल हो
लगन लगी राही को घर की!
अति उदास संध्या पतझर की!
माना, संध्या है, उदास है! मगर अगर तुम्हें घर की याद आ जाए तो उदासी मिट जाए--संध्या सुबह हो सकती है। पतझर मधुमास हो सकता है। यह जो छोटी सी थाप पड़ी है तुम्हारे द्वार पर, इसे चूक मत जाना। यह जो धीमी सी आवाज तुम्हें सुनाई पड़ी है अपने ही अंतर की, इसको फिर भीड़-भाड़, शोरगुल में खो मत देना। जिंदगी तो गई, जाने दो, अगर यह किरण पकड़ ली तो कुछ भी गया नहीं, कुछ भी खोया नहीं। सब खोकर भी सब पा लिया जाएगा। एक नया सूत्र-पात्र हुआ है।
बाट किस की जोहते हैं
आज फिर मेरे नयन?
प्यास बढ़ती जा रही है
देख मृग जल का मनोहर।
लक्ष्य मृग जल को मनोहर।
लक्ष्य अपना पा सकूंगी
क्या कभी मैं मुक्त होकर? हास, रोदन में रमा है
आज मेरा हृदय उन्मन!
कंटकों की सेज पर ही
जब इसे सोना पड़ा।
कब भला अधिकार के हित
जा किसी से यह लड़ा?
मिल गई थी किंतु कैसे
एक आशा की किरण?
मिल गई दो बूंद जल की
तृप्ति क्यों होती नहीं?

प्राण की इच्छा अपूरण
शांति से सोती नहीं।
कह रहा है कौन मुझसे
शीध्र आ मेरी शरण।
बाट किसकी जोहते हैं
आज फिर मेरे नयन?
पुकारा है परमात्मा ने तुम्हें।
कह रहा है कौन मुझसे
शीध्र आ मेरी शरण।
यह घड़ी आ गई। बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि।
कह रहा है कौन मुझसे
शीध्र आ मेरी शरण।
बाट किसकी जोहत हैं
आज फिर मेरे नयन?
यह जो किरण आई है, यह मुमुक्षा की किरण है। और ठीक समय पर आ गई। मौत के पहले आ गई। अभी जीवन है, अभी जागने का अवसर है। इस किरण के लिए परमात्मा को धन्यवाद दो! इस किरण के लिए अनुगृहीत अनुभव करो, इस स्वप्न मत कहो! स्वप्न कहा तो यह स्वप्न हो जाएगी। स्वप्न कहा तो यह हाथ से खो जाएगी। क्योंकि जिसे हम स्वप्न कहते हैं, उसे हम हाथ से छोड़ देते हैं। जिसे हम सत्य कहते हैं, उसे हम पकड़ लेते हैं। और अक्सर ऐसा हो जाता है--सपनों को भी पकड़ लो तो सत्य हो जाते हैं और सत्यों को भी छोड़ दो तो स्वप्न हो जाते हैं।

तीसरा प्रश्नः भगवान, प्रेम की चुनरी ओढ़ा दी है आपने।
खूब-खूब अनुग्रह से भर गई हूं।

उर्मिला! मैं तो बस निमित्त हूं। मेरे हाथ उसके ही हाथों का काम कर रहे हैंः यह जो चुनरी मैंने तुम्हें ओढ़ा दी है प्रेम की, यह उसने ही ओढ़ा दी है, उसे ही धन्यवाद देना। मुझे बीच में मत लेना। मुझे मत अटकना। मुझे तो संदेशवाहक समझो। जैसे पत्रवाहक आता है और चिट्ठी दे जाता है। जिसका पत्र है उसको तुम उत्तर देते हो, पत्रवाहक आता है और चिट्ठी दे जाता है। जिसका पत्र है उसको तुम उत्तर देते हो, पत्रवाहक को नहीं। मैंने तो केवल उसकी चुनरी तुम्हें सौंप दी, उसकी ही याद करना, उसको ही धन्यवाद देना, उसका ही गीत गाना। अभी और बहुत कुछ होने को है। यह तो चुनरी जुड़ गई थी, थोड़ा संबंध बना। अभी बहुत कुछ मिलने को, अभी बहुत कुछ बरसने को है।
पंछी बोले भोर हो गई!
कलियां फूल बनी कुछ हंस कर,
भौंरे मुग्ध हुए रस पीकर,
रजनी अपने आंसू से प्रिय चरण धो गई!
पंछी बोले भोर हो गई!
ऊषा ने खोला जब घूंघट,
गूंज उठा कलरव से पनघट,
नक्षत्रों की पांति न जाने कहां खो गई?
पंछी बोले भोर हो गई!
रोई रात ओस बिखर कर,
चांद छिपा पल भर मुस्काकर,
प्राणों में सिहरन भर कर जब व्यथा रो गई!
पंछी बोले भोर हो गई!
उर्मिला, सुबह हो रही है! पंछी जो गीत गा रहे हैं सुबह का, उनके कारण सुबह नहीं हो रही है, सुबह होने के कारण पंछी गीत गा रहे हैं। मैं जो तुम्हें पुकार रहा हूं, मेरे पुकारने के कारण परमात्मा नहीं है, परमात्मा के कारण मैं पुकार रहा हूं। तुम तो इतना ही समझना मुझे जैसे के पंछी गीत गाते हैं। सुबह के पंछियों का गीत गाना सिर्फ भोर होने की खबर है। और

बुद्धपुरुषों ने जो गीत गाए हैं, वह सब सुबह के पंछियों के गीत हैं। जिनने सुन लिए वह धन्यभागी हैं! अभागे बहुत हैं। वह और करवट लेकर कंबल को और सिर पर फैला कर और गहरी नींद मग सो जाते हैं। शायद उन्हें नाराजगी भी आती है कि यह पंछियों ने बकवास क्यों लगा रखी है! यह पंछी शोरगुल क्यों कर रहे हैं, सोने भी नहीं देते! अधिक लोग तो नाराज होते हैं अगर उन्हें जगाओ तो।
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। मेरे एक अध्यापक थे। मैं रोज सुबह चार बजे घूमने जाता। उन्होंने भी जिंदगी भर बड़ी कोशिश की थी कि सुबह चार बजे उठ कर कभी घूमे। मगर कोशिश कभी सफल नहीं हो पाई थी। मुझसे उन्होंने कहा कि तुम रोज घूमने जाते हो, मेरी जिंदगी भर से आशा है कि ब्रह्ममुहूर्त में कभी मैं भी उठूं, मगर यह हो ही नहीं पाता। मैं तो नौ बजे के पहले, पाठ-नौ के पहले उठ ही नहीं पाता। मैंने कभी सुबह का सौंदर्य और सुबह की ताजगी अनुभव नहीं की। अगर तुम मुझे उठाओ तो शायद बात बन जाए। मैंने कहा, मैं उठाऊंगा। उन्होंने कहा लेकिन मैं एक प्रार्थना करता हूं, जब तुम उठाओगे तो मैं आसानी से राजी नहीं होऊंगा। क्योंकि मेरे पिता भी मुझे उठाते थे, खींचते थे तो भी मैं उठ नहीं पाता था; बस सुबह तो मैं बिल्कुल बेहोश हालत में होता हूं। अलार्म बजता है तो घड़ी को पटक देता हूं। और मैं ही अलार्म भर कर सोता हूं राम। मैंने कई घड़ियां तोड़ डाली हैं, कि यह दुष्ट घड़ी सुबह-सुबह फिर बजने लगी। धीरे-धीरे मेरे परिवार के लोगों ने यह बात ही छोड़ दी। सब से मैं कह चुका हूं कि उठाओ। जो भी मुझे उठाता है, उससे ही झगड़ा हो जाता है सुबह। तो यह मैं तुम्हें बता देता हूं। मैंने कहा, आप उसकी फिकर छोड़ो। आप अपनी सम्हाल रखना! उन्होंने कहा, मतलब? मैंने कहा कि मैं भी जिस काम में लग जाता हूं, फिर लग ही जाता हूं। अगर तुम जिंदा मिले, तो उठाऊंगा ही! अब मर ही जाओ तो बात अलग है।
तो मैं तीन-चार लोगों को लेकर पहुंचा। मैंने कहा कि अब पता नहीं, अकेले से सम्हलें कि न सम्हलें! उठा-उठा कर खींचा उनको, चांटे भी लगाए। मेरे अध्यापक थे, बड़े गुस्से होने लगे, आंखें तरेरने लगे कि तुम मेरे विद्यार्थी होकर मुझे मार रहे हो, मैंने कहा इस वक्त कोई विद्यार्थी नहीं और कोई अध्यापक नहीं। इस वक्त जगाने वाला और सोने वाला। यह बकवास नहीं चलेगी। आज ब्रह्ममुहूर्त का दर्शन करवाएंगे। खींच-खींच कर, बाल्टी भर पानी उनके ऊपर डाल कर--वे गाल देते जाएं; उन्हें मैंने कभी गालियां देते नहीं देखा था, एकदम गालियां देने लगे, कि बदतमीज हो तुम लोग, ऐसे हो, वैसे हो; हमने कहा इस सब से कोई सार नहीं है, आप बकते रहो--जबर्दस्ती उनको कपड़े पहना दिए। उनको लेकर बाहर घुमाने चले--चार आदमी उनको पकड़े हुए। जब सुबह की ताजगी ने थोड़ा उन्हें शांत किया और जब ऊगते सूरज के आनंद को उन्होंने देखा, बहुत माफी मांगने लगे कि क्षमा करना हमने जो गालियां दीं। हमने कहा, आपको क्षमा मांगना ठीक नहीं, हमें क्षमा मांगनी चाहिए कि हमने जो आपको इतना सताया; और मारा भी आपको! विद्यार्थी होने के नाते हमें आपको मारना नहीं चाहिए। क्षमा हम मांगते हैं! मगर इसके सिवाय और कोई उपाय न था। तुम्हें जिन्होंने भी जगाया है, उनसे तुम नाराज हुए। नींद प्यारी लगती है। क्योंकि नींद की छाया में प्यारे सपने चल रहे हैं। कैसे-कैसे सपने हैं तुम्हारे! यह कर लूं, वह कर लूं; यह हो जाऊं, वह हो जाऊं। बड़े-बड़े साम्राज्य तुम बना रहे हो। बड़े सोने के महल खड़े कर रहे हो। और ऐसे में कोई आकर जगा दे, और ऐसे में कोई जगाने के पीछे पड़ जाए, और तुम लाख उपाय करो और छोड़े न--तो बुद्धों पर लोग नाराज रहे। उनकी नाराजगी बिल्कुल स्वभाविक है। इसे बुद्धों ने बड़े प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है।
जीसस ने मरते वकत परमात्मा से प्रार्थना की कि है प्रभु, इन सबको माफ
कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं है यह क्या कर रहे हैं! जो इन्हें जगा रहा था, उसको मार रहे हैं। जो इनके सपने तोड़ रहा था, उसको फांसी लगा रहे हैं। और इन्हें माफ कर देना, क्योंकि यह बेचारे सब सोए हुए लोग हैं। यह अपने बचाए कि मुझे बचाएं? दो में से एक ही बच सकता है। अगर मैं रहूंगा तो इनकी नींद में दखल डालता रहूंगा। अगर मैं न रहूं, तो यह निश्चित सो सकते हैं।

उर्मिला, मेरा काम तो इतना है जो सुबह के पक्षियों का, भोर की खबर दे रहा हूं। और भोर सदा से ही है। सुबह के पक्षी कभी-कभी होते हैं, यह मुश्किल है। इसलिए जो सुन ले, वह धन्यभागी है! और तुमने मेरी बात सुनी, तुम्हारे हृदय तक बात पहुंच गई है--इसलिए तुम कह रही हो कि खूब-खूब अनुग्रह से भर गई हूं। इस अनुग्रह को अपने ही भीतर सम्हाल कर मत रख लेना। इसे बांटो। क्योंकि यही एक उपाय अनुग्रह प्रकट करने का--जो मिला, उसे बांटो। और एक ही रास्ते पर, एक ही अधिक से अधिक लोगों तक इस अमृत की खबर पहुंच सके। और जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है--मकानों की मुंडेरों पर चढ़ा जाओ और वहां से चिल्लाओ। क्योंकि जब तक तुम चिल्लाओगे न, लोग इतनी गहरी नींद मग सोए हैं कि जाग न सकेंगे। तो जिसको भी मेरे पास थोड़ा स्वाद मिले, थोड़ी भोर की भनक मिले, थोड़े सूरज की किरण हाथ आए, उसके पास धन्यवाद का एक ही उपाय है कि वह बांटे लुटाए।
उर्मिला, लुटाओ! कहो! गाओ-गुनगुनाओ! तुम्हारे व्यक्तित्व से प्रकट होने दो!
मूक रह पाता सजनि! मैं मूक भी तो रह न पाता!

मूक ही जलते तृषा से दग्ध मरु-पाषाण व्याकुल
मूक ही जलते सितारे--मूक जलते दीप घुल-घुल
काश! मैं भी मूक रहता--सोख तृष्णा की अमावस
हो न पाता यह मुखर आराधना का सिंधु--पावस
और खामोशी न पूछो! बीत जाता मौन जीवन
शेष गीतों में कहां यों भी हुआ जाता निवेदन तो कदाचित कुछ जलन में तृप्ति का आभास होता मूक रह पाता वियोगिनी! मूक भी मैं रह न पाता!

प्राण जलते, होंठ जलते, मूक निश्चल डोलता मैं दर्द की रानाइयों में पर न अंतर खोलता मैं देखता दिन-रात लगते आग मधुबन में निरंतर देखता जलती जवानी एक खोया स्वप्न पाकर
देखता तूफान घिरते किंतु घुट जाते जिगर में, वस्त्रहीन से बंधे चीत्कार चलते बंद घर में प्यास का अवसाद मेरा पाप यह वरदान होता
मृत्यु बंदी कर न सकती जन्म का निर्मूल्य-नाता
पर तुम्हारी प्रीति पा ली मैं इसे कैसे छिपाता? दर्प संचित मर्म में जो--मैं उसे कब तक न गाता
भूल कब इस जन्म की यह युग-युगों की प्यास आली
तृप्ति सूनी ही न जब जीवन-मरण के द्वार खाली तृप्ति--हां! चिर तृप्ति ही! जब कल्पना की आंच में जल दग्ध होते प्राण मेरे इन अभावों में अंचल
भस्म होता किंतु जितना--भीगती यह साध मेरी
मूक रह पाता सजनि! मैं मूक भी तो रह न पाता!

हो रही अनुभूति--जैसे प्रतिध्वनित तुम व्याप्त प्रतिपल विश्वव्यापी स्वर विरह का बस तुम्हारा दाह उज्ज्वल
आज तो तुम स्वप्न पर चिर सत्य यह मेरी मुखरता
शेष फिर भी लालसा--जैसे न क्षण-भर मर्म भरता
यह तुम्हारी व्याप्ति जीवन में न जब तक शांति लाती
बस समझ लो है अधूरी प्राण! तेरी ज्योति-बाती
आग वह कैसी न जिससे हों तरंगित नीर-निर्झर
मूक रह पाता सजनि! मैं मूक भी तो रह न पाता!

चाहिए फिर आज मुझको साधना की ज्योतिधारा प्रज्वलित दीखे सदा आलोक मंगलमय तुम्हारा

अस्त रवि की तम-तृषा से हों निविड़ जब सांझ के पट मुक्त हो--निर्बंध होत मेरी किरण के रूप का घट
और देखूं--शेष सीमा पर विकल तेरी दीपाली
मस्त रजनी गा उठे--मैंने तुम्हारी प्रीति पाली
गूंजती मेरी तरंगें--यह विसर्जन सुख अनोखा
आज व्याकुल बाहुओं से मैं तुम्हारा पथ सजाता
मूक रह पाता सजनि! मैं मूक भी तो रह न पाता
उस प्रभु के प्रेम की थोड़ी सी झलक मिले तो मूक तुम रहना भी चाहो तो न
रह सकोगे। कहना ही होगा! और जानते हुए कि कह कर भी कहा नहीं जा सकता। वह गीत कभी गाया नहीं जा सकता, फिर भी गुनगुनाता तो होगा। वह नृत्य की नाचा नहीं जा सकता, फिर भी घूंघर तो पैर में बांधने होंगे। फिर भी मृदंग तो बजानी होगी, फिर भी वीणा के तार तो छूने होंगे। वह अव्यस्त व्यक्ति नहीं होता। लेकिन फिर भी जब उसकी बाढ़ जाएगी भीतर, तो बांटे बिना कोई चारा नहीं।
मूक रह पाता सजनि! मैं मूक भी तो रह न पाता!
चाहो तो भी चुप नहीं रह सकते। चाहना भी मत! चुप रहने की जरूरत भी नहीं है। जिस दिन तुम्हारे मन में ऐसा हो कि मुझे धन्यवाद देना है, उस दिन जान लेना कि घड़ी आ गई बांटने की। जो मिला है, लुटाओ!
पर तुम्हारी प्रीति पा ली मैं इसे कैसे छिपाता?
मूक रह पाता सजनि! मैं मूक भी तो रह न पाता!
और जानते है--
शेष गीतों में कहां यों भी हुआ जाना निवेदन
कहना जो है, कहा न जा सकेगा। फिर भी कहना तो होगा। क्योंकि तुम्हारे कहने के प्रयास में ही बहुतों की प्यास प्रज्वलित हो उठेगी। तुम्हारे कहने की असफल चेष्टा में ही बहुतों के भीतर उस पर स्वाद को पाने की तड़फ जग उठेगी। तुम बहुतों के तार छू दोगे, गीत गा सको कि न गा सको, लेकिन बहुत हृदयों के तार झंकृत हो सकेंगे। फैलाओ प्रेम के गीत को, गाओ परमात्मा के गीत को, वही एकमात्र धन्यवाद है।
उर्मिला, तूने पूछाः "प्रेम की चुनरी ओढ़ा दी है आपने।"
अब इस प्रेम की चुनरी को औरों पर भी ओढ़ाओ। और ध्यान रखना एक शाश्वत नियम, प्रेम ऐसी संपदा है, बांटो तो बढ़ती है, न बांटो तो घटती है। साधारण अर्थशास्त्र लागू नहीं होता प्रेम की संपदा पर। साधारण अर्थशास्त्र का नियम है--बांटो तो कम होगी, बचाओ तो बढ़ेगी। भीतर के अर्थशास्त्र का नियम है--बांटो तो बढ़ेगी संपदा, न बांटा तो जो है वह भी खो जाएंगी।
जिन्होंने भीतर का सत्य जाना है, उन्होंने दान को धर्म कहा है। दान का मतलब इतना हनीं है कि तुम किसी को दो पैसे दे दो। वह कोई दान है! तुम कुछ लेकर तो आए न थे, किसी से दो पैसे छीन लिए थे, फिर किसी को दे दिए--वह कोई दान है! तुम कुछ ले तो न जाओगे; जो यहां छूट ही जाएगी वह अगर दे भी गए तो दान क्या! नहीं, उस दान का अर्थ नहीं है। दान बड़ा अदभुत शब्द है। दान का अर्थ है, तुम्हारे भीतर जो है, तुम जो हो, उसे बांटो। स्वयं को बांटो। और उस बांटने में ही तुम्हारी आत्मा बड़ी होती जाएगी, विराट होती जाएगी। बांटते-बांटते ही आत्मा परमात्मा हो जाती है।

चौथा प्रश्नः भगवान,
बहाने और भी होते जो जिंदगी के लिए
हम एक बार तेरी आरजू भी खो देते।

कृष्ण भारती! बहाने और भी होते, तो भी तुम उसकी आरजू खो नहीं सकते थे।
कोई बहाना उसकी आरजू खोने का बहाना नहीं बन सकता। क्योंकि कोई पाना बिना उसे पाए पाना नहीं है। परमात्मा को पाए बिना आदमी भिखमंगा ही रहता है। कुछ भी पा ले। बड़े साम्राज्य बना ले।
याज्ञवल्क्य, भार का एक प्राचीन ऋषि, घर छोड़कर जाने लगा वन की ओर। उसकी दो पत्नियां थी। उसके पास अपार संपदा थी। उसने कहा, मैं तो अब जाता हूं, यह संपत्ति आधी-आधी तुम दोनों को बांट देता हूं। एक पत्नी तो बहुत

आह्लादित हुई--पत्नी जैसी पत्नी रही होगी। शायद इसी संपत्ति के लिए याज्ञवल्क्य से विवाह किया होगा। यह अच्छा ही हुआ, कि यह झंझट मिटी, यह सज्जन चले भी और अपार संपदा छोड़ जाते हैं! अब मौज मजा होगा।
लेकिन दूसरी पत्नी ने कहा, जब आप छोड़ कर जा रहे हैं इस संपदा को, तो एक बात तो तय है कि यह संपदा संपदा नहीं। नहीं तो आप क्यों छोड़ते? और जिसे आप छोड़ रहे हैं, उसे मुझे क्यों उलझाते हैं? मुझे क्यों दे जाते हैं? अगर आपने छोड़ने योग्य पाया, तो इस कूड़ा-करकट को मुझे क्यों दे जाते हैं? फिर मुझे भी वही बताइए जो असली संपदा हो, जिसकी तलाश में आप जाते हैं। मैं इस संपदा का क्या करूंगी?
ठीक बात उसने कही। सीधी सी बात है, साफ-साफ बात है, कि अगर इस संपदा से आपको कुछ नहीं मिला, तो मुझे क्या मिल जाएगा?
मगर इतने बुद्धिमान बहुत कम लोग होते हैं, जो दूसरे के अनुभव से सीख लें। तुम जरा धनियों की आंखों में तो झांक कर देखो, निर्धनता पाओगे वहां! तुम बड़े-बड़े पदों पर बैठे लोगों के भीतर तो झांको, वहां बड़ी हीनता पाओगे। मनोवैज्ञानिक तो कहते ही हैं, सिर्फ हीनता की ग्रंथि से पीड़ित लोग ही पदाकांक्षी होते हैं, महत्वाकांक्षी होते हैं। हीनता की ग्रंथि से जो पीड़ित हैं, वे ही राजनीति में प्रवेश करते हैं। राजनीति में प्रतिभाशाली लोग नहीं जाते। संयोगवशात कभी कोई प्रतिभाशाली आदमी राजनीति में मिल जाए, बात और। अपवाद स्वरूप। लेकिन सामान्यता राजनीति में जाता ही है रुग्णचित्त व्यक्ति, जो इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स, हीनता की गहन ग्रंथि से भरा हुआ है। जो जानता है कि मैं कुछ नहीं हूं और बताना चाहता है कि मैं कुछ हूं, और एक ही उपाय दिखाई पड़ता है कि हाथ में शक्ति हो, पद हो, सत्ता हो। फिर अगर सत्ता सेवा करने से मिलती हो तो सेवा भी करता है। मगर लक्ष्य सत्ता का है। किसी तरह पद पर बैठ जाए!
लेकिन जरा पद जिनके पास हैं, उनके भीतर झांकना। वहां न विश्राम है, न आनंद है, न प्रेम है। हो ही नहीं सकता। क्योंकि प्रेम ही होता तो पद के लिए जो संघर्ष करना पड़ता है वह करना मुश्किल हो जाता। उसमें तो कई गर्दनें काटनी पड़ती हैं। कई लोगों को सीढ़ियां बनाना पड़ता है, उनकी लाशों पर पैर रख कर चढ़ना पड़ता है। दिल्ली कोई ऐसे ही नहीं पहुंच जाता! पीछे बड़ा मरघट छोड़ जाना पड़ता है, तक कोई दिल्ली पहुंच पाता है। न मालूम कितने लोगों को दुखी और पीड़ित करना होता है, तब कोई दिल्ली पहुंच पाता है। अगर प्रेम होता तो यह संभव ही नहीं था। और इतने लोगों को दुखी और पीड़ित और पराजित करके जो पहुंच जाएगा पद पर, वह चैन से कैसे रह सकता है? क्योंकि वे सब लोग बदला लेने को आतुर रहेंगे। और जो पद पर पहुंच जाएगा--कोई अकेला ही तो पदाकांक्षी नहीं है, सारा मनुष्यों का जगत तो पदाकांक्षी है, सारी पृथ्वी तो रोग से भरी है महत्वाकांक्षा के, हर बच्चे में तो हमने जहर घोल दिया है महत्वाकांक्षा-- तो तुम अकेले ही पद पर थोड़े ही पहुंचते हो, सारे लोग पहुंच रहे हैं उसी पद पर, तो बड़ी धक्का-धुक्की है, बड़ी मारामारी है। चैन कहां? विश्राम कहां? कितना ही पा लो इस जगत में, कुछ मिलता नहीं। लेकिन इतने बुद्धिमान कम लोग होते हैं, जितनी याज्ञवल्क्य की पत्नी थी, जिसने कहा कि जब आपको कुछ नहीं मिला, तो मुझे दे जाते हैं? मुझे भी वही मार्ग दिखाए।
तुम जरा गौर से अपने चारों तरफ देखो, अगर तुम में जरा भी बुद्धि है तो
एक बात समझ में आ जाएगी कि संसार में पाने योग्य कुछ भी नहीं है। और इस बोध की घड़ी का नाम ही संन्यास है।
तुम कहते होः
"बहाने और भी होते जो जिंदगी के लिए,
हम एक बार तेरी आरजू भी खो देते।"
नहीं, कृष्ण भारती, कोई बहाना उसके पाने के लिए रुकावट नहीं बन सकता।
सब बहाने आज नहीं कल टूट जाते हैं। भ्रामक सिद्ध होते हैं, मृग-मरीचिकाएं सिद्ध होते हैं। पाना तो उसी को होगा, बाकी बहाने तो सिर्फ भुलाने के बहाने होते हैं। हां, थोड़ी देर अटका लो, उलझा लो, भरमा लो; थोड़ी देर खिलौना हैं, खेल लो।

इसलिए खिलौने बदलने पड़ते हैं रोज-रोज। आज के खिलौने कल बासे हो जाते हैं, कल फिर ताजे खिलौने खोजने पड़ते हैं। फिर थोड़ी देर उलझे रहो, फिर ताजे खिलौने खोजने पड़ेंगे। जिंदगी में हम खिलौने बदलते रहते हैं और मर जाते हैं। लेकिन याद रखना, कितने ही खिलौने बदलो और कितने ही रास्ते बदलो और कितने ही उपाय खोजो उससे बचने के, उसकी याद से नहीं बच सकते। आज नहीं कल उसकी याद उभर-उभर कर आएगी। क्योंकि वह हमारा स्वभाव है। वह हमारी अंतरात्मा है। उसे न पाया तो हमने अपने को गंवाया।
तुम्हें भुला देने को मैंने
कितने अलग रास्ते बदले,
किंतु तुम्हारे पांव जहां भी
जाता हूं अंकित मिलते हैं।
वह बांसुरी तोड़ दी मैंने जिसमें बंद तुम्हारे स्वर थे,
वे सब जगह खुरच दी मैंने जहां तुम्हारे हस्ताक्षर थे, तुम्हें भूला देने को मैंने
रोपे फूल, लताएं सींचीं,
किंतु तुम्हारी देह-गंध ही
देते हुए सुमन खिलते हैं।
खोले द्वार सभी वे जो खुद तुमने बंद किए थे,
वे सब काम किए गिन-गिन कर बेहद तुमको नापसंद थे, तुम्हें भूल देने को मैंने
महलों से संबंध बनाएः
उनकी छायादार गली में
चलते मगर पांव जलते हैं।
इतनी भीड़ जुटाई मैंने चारों ओर खड़े अपने हैं,
लगता है लेकिन सबके सब सिर्फ अपरिचित हैं, सपने हैं,
तुम्हें भुला देने को तुमसे
कितनी दूर चला आया हूं;
किंतु तुम्हारी तरह यहां भी
वृक्ष मुझे पंखा झलते हैं।
नहीं भागा नहीं जा सकता। भागने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि परमात्मा
सब जगह है, जहां जाओगे, उसीको पाओगे।
तुम्हें भूला देने को तुमसे
कितनी दूर चला आया हूं;
किंतु तुम्हारी तरह यहां भी
वृक्ष मुझे पंखा झलते हैं।
कहां जाओगे? उसके वृक्ष, उसके चांद-तारे, उसका सूरज, उसके पक्षी उसके पहाड़, उसके नदी-नद, उसके झरने, उसे सागर--कहां बचोगे? कैसे बचोगे? और तुम भी तो वही हो, तुम्हारी श्वास में भी तो वही आता-जाता और तुम्हारे हृदय में वही धड़कता है।
तुम्हें भुला देने को मैंने
कितने अलग रास्ते बदले,
किंतु तुम्हारे पांव जहां भी
जाता हूं अंकित मिलते हैं।
कहां जाओगे? कैसे बचोगे उससे? उसका मंदिर फैला है, अनंत। उसके मंदिर में ही हम हैं। जहां भी तुम हो, पवित्र भूमि पर खड़े हो। जहां भी तुम हो, तीर्थ है। आदमी चेष्टा तो सब करता है।
वह बांसुरी तोड़ दी मैंने जिसमें बंद तुम्हारे स्वर थे,
वह सब जगह खुरच दी मैंने जहां तुम्हारे हस्ताक्षर थे,
तुम्हें भुला देने को मैंने
रोपे फूल, लताएं सींचीं,
किंतु तुम्हारी देह-गंध ही
देते हुए सुमन खिलते हैं।

गुलाब में उसी की गंध है, और कमल में भी और जूही में भी और केवड़े में भी--उसी की गंध है। गंध ही उसकी है। रंग ही उसका है। इंद्रधनुष देखो, तो उसी के सात रंग। और कोई चरवाहा, अलगोजा बजाने लगे, तो उसी के स्वर। और कहीं मृदंग पर थाप पड़े, तो वही बज रहा है, वही बजा रहा है। नहीं, भागने का कोई उपाय नहीं है। जागो। भागो मत। उससे बचना संसार, उसमें डुबकी मारना संन्यास। और कहीं हाथ फैलाने से होगा भी क्या! जब मालिकों का मालिक देने को राजी है, तुम झोली उसके सामने क्यों नहीं फैलाते? तुम भिखमंगे से मांग रहे हो, जो खुद ही मांग रहे हैं!

मैंने सुना है, दो ज्योतिषी रोज-सुबह बाजार जाने से पहले रास्ते पर मिलते थे। एक-दूसरे का हाथ देखते थे। अच्छा रंग था, अच्छा ढंग था। एक-दूसरे का हाथ देखते थे कि आज धंधा कैसा चलेगा? अगर तुम उसको हाथ दिखा रहे हो जो खुद ही तुम्हें हाथ दिखा रहा है, तो जरा सोचो तो, जो अपना हाथ नहीं देख सकता! ...

मैं जयपुर में था, राजस्थान के एक बड़े ज्योतिषी को कोई मेरे पास ले आया। उन ज्योतिषी ने कहा, मेरी फीस तो एक हजार एक रुपया है। मैंने कहा, देंगे। पहले आप हाथ तो देखो! हाथ देखो। फिजूल की बातें जैसे ज्योतिषी करते हैं, की। जब बात खत्म हो गई, तो मैंने कहा, ठीक नमस्कार! उन्होंने कहा, और एक हजार एक रुपया! मैंने कहा, आज आपके भाग्य में एक हजार एक हैं ही नहीं। उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं? मैंने आपसे पहले ही कहा था कि एक हजार एक फीस। मैंने कहा, अपने कहा होगा लेकिन भाग्य में भी तो होने चाहिए! मुझे हाथ दिखाइए! मैंने कहा, उसमें है ही नहीं। मैं भी क्या कर सकता हूं? मैं तो देने को राजी हूं, मगर भाग्य के खिलाफ नहीं जा सकता। मैंने उनसे कहा, कम से कम अपना हाथ तो घर से देख कर चला करो कि आज कैसे आदमी से मिलना होगा! इतना भी नहीं कर पाए, मेरा हाथ देखने चले हो, अपना हाथ नहीं देख पाए।

मगर यहां भिखमंगों के सामने लोग भीख मांग रहे हैं। तुम जिससे भीख मांग रहे हो, वह तुमसे भीख मांग रहा है। यहां कैसा मजा है! तुम जिससे प्रेम मांग रहे हो, वह तुमसे प्रेम मांग रहा है? अगर उसके पास ही प्रेम होता, तो तुमसे क्यों मांगता? और अगर तुम्हारे पास प्रेम होता, तो तुम उससे क्यों मांगते? प्रेमी नहीं मांगते, प्रेम देते हैं। जिनके पास है, वे देते हैं, जिनके पास नहीं है, वह मांगते हैं। फिर मांगना ही जब हो, तो क्या छोटों से मांगना!

मैं अब किसी विटप के आगे
फैलाऊंगा नहीं हथेली,
तुम चंदन, जब नहीं तुम्हीं से,
मेरा ताप हरा जाता है।

अगर परमात्मा ही ताप नहीं हर रहा है तो उसकी मर्जी! मगर अब किसी और से क्या मांगना?

मैं अब किसी विटप के आगे
फैलाऊंगा नहीं हथेली,
तुम चंदन, जब नहीं तुम्हीं से,
मेरा ताप हरा जाता है।
जितनी गंध मुझे दी तुमने,
उससे अधिक महकता हूं मैं।
खाली पात्र दिया जो तुमने,
छूकर उसे बहकता हूं मैं।
मैं अब किसी चरक से अपनी,
पीड़ा जाकर नहीं कहूंगा,
तुम मरहम जब नहीं, तुम्हीं से,
मेरा घाव भरा जाता है।

मेरा दान-पात्र जर्जर था,
यह तो थी सुपात्रता मेरी,
कंचन-पात्र दिखाकर लेकिन

कस्तूरी ले गए अहेरी।
प्रतिभा है निर्धन की बेटी, इस शापित को कौन वरेगा,
तुम हो हृदय, न जब तुमसे ही, उसका प्रणय वरा जाता है।

जब-जब मन ऊबा है घर से
बहलाया है चौराहों ने,
सूरज फिर जन्मेगा कल को,
धैर्य बंधाया चरवाहों ने, अब मैं बहते हुए तृणों से, संबल कभी नहीं मांगूंगा,
तुम हो पोत न तुमसे ही
लेकर मुझे तरा जाता है।

अब मैं बहते हुए तृणों से,
संबल कभी नहीं मांगूंगा,
क्या तिनकों से सहारे मांगने?
तुम हो पोत न तुमसे ही
लेकर मुझे तरा जाता है।
अगर परमात्मा का पोत तुम्हें नहीं लेकर तर सकता, तो कौन तुम्हें लेकर तरेगा? अगर उसका चंदन तुम्हें शीतल नहीं कर सकता, तो कौन तुम्हें शीतल करेगा? नहीं, छोड़ो और सब जगह मांगना, छोड़ो सब और द्वार, उसके ही द्वार पर जमा दो अड्डा। हटना ही मत। उसके द्वार पर दस्तक दिए ही चले जाना।
जीसस ने कहा हैः खटखटाओ, खटखटाओ और द्वार खुलेंगे; मांगो, मांगते ही रहो और मांग पूरी होगी। पूछो और उत्तर मिलेगा। खोजो, खोजते ही रहो, पाना सुनिश्चित है। हां, देर-अबेर हो सकती है। मगर देर-अबेर उसकी तरफ से नहीं होती, तुम्हारे मांगने में ही कुनकुनापन होता है, इसलिए होती है। तुम्हारे मांगने में त्वरा नहीं होती, समग्रता नहीं होती। तुम्हारी मांग तुम्हारे प्राणपण से नहीं होती, ऐसी ही होती है कि देखे, शायद मिल जाए! ऐसे नहीं मिलेगा।
विवेकानंद अमरीका में बोलते थे; एक दिन उन्होंने बाइबिल का उद्धरण दिया और कहा कि श्रद्धा है, अगर पहाड़ों से भी कहो तो पहाड़ हट जाएं। एक बूढ़ी स्त्री उसी क्षण ताली बजाने लगी--बड़ी प्रसन्न हो गया! उसके घर के पीछे ही पहाड़ था। और पहाड़ की वजह से वह बड़ी अड़चन में थी। पहाड़ की वजह से न रोशनी आती थी घर में, न हवाएं, आती थी घर में। पहाड़ की छाया में पड़ गया था घर। और बूढ़ी, उसे सर्दी भी ज्यादा सताती थी। अगर रोशनी आ सके सूरज की! तो उसने कहा, यह अच्छा हुआ, मैंने बाइबिल तो पढ़ी, कभी इस पर ध्यान नहीं दिया। ठीक है, बाइबिल कहती तो यही है। कि श्रद्धा पहाड़ों को हटा सकती है। उसने कहा, अभी जाकर पहला काम यही करना है।
घर गई, खिड़की पर पहाड़ देखा--कि अब आखिरी बार देख लेना है--खिड़की बंद की, वहीं नीचे बैठ कर उसने कहा--है प्रभु, श्रद्धा से कहती हूं, हटा दे इस पहाड़ को! बिल्कुल हटा दे! ऐसी तीन-चार बार कहा, थोड़ी देर आंख बंद किए बैठी रही, फिर उठी, फिर खिड़की खोली। पहाड़ जहां था वहां ही था। उसने कहा, मुझे मालूम ही था, ऐसे कहीं पहाड़ हटते हैं
मगर मालूम ही था कि ऐसे कहीं पहाड़ हटते हैं, तो कहने में बल कैसे हो सकता है? मगर यह मालूम ही था कि पहाड़ नहीं हटते, तो श्रद्धा कहां? वह तो वचन पूरा ही नहीं हुआ! वचन वह है कि श्रद्धा पहाड़ हटा सकती है। मगर श्रद्धा हटा सकती है, कहना नहीं। श्रद्धा ही नहीं है, तो पहाड़ क्या तिनके भी नहीं हट सकते। और हमारी मुसीबत यही है। हम मांगते तो है, हम पुकारते तो हैं, लेकिन हमारी पुकार में जान ही नहीं होती। जान चाहिए पुकार में तब तो उस तक पहुंच सकेगी! तब ही तो पहुंच सकेगी! कुछ प्राण होने चाहिए पुकार में; कुछ बल, ऊर्जा होना चाहिए खुमार में। हम ऐसे ही बेमन से कि शायद हो जाए तो हो जाए,

हर्ज भी क्या है, बिगड़ता भी क्या है! हमारी प्रार्थना नपुंसक है, इसलिए व्यर्थ जाती है।
मांगों, पूरे हृदय से मांगों और मिलेगा। और जब मांगो तो छुद्र चीजें
मत मांगना। क्योंकि छुद्र चीजें कभी पूरे हृदय से नहीं मांगी जा सकती।
चीजें ही छुद्र हैं, उनकी मांग कैसे समग्र हो सकती हैं, उनकी मांग कैसे विराट हो सकती है? मांग तो एक ही विराट हो सकती है, उस परमात्मा की मांग। उसको ही मांग लो। और जिसने मालिक को पा लिया, उसने सब पा लिया।

आखिरी प्रश्नः भगवान, चरण तले हृदय! दस वर्ष से अभी तीस वर्ष की उम्र
तक गांव के, हरिद्वार-ऋषिकेश, मथुरा-वृंदावन, नासिक-बंबई, कुंभ की साधु- महात्माओं की मंडलियों के साथ रहने और अनेकों बार करीब के रिश्तेदारों की चिंताओं में आग लगाने तक के अवसर पर भी मुझे रोने का कभी अनुभव नहीं हुआ। परमेश्वर की अनुभूति होने की आपकी कार्यप्रणाली से घृणा होने के बावजूद भी यहां आया। आपकी पुस्त अज्ञात सागर का आमंत्रण की एक ही पंक्ति--ज्ञान बाहर से उपलब्ध नहीं होता--बस उसने ही संन्यास दे दिया। प्रवचन में चौंका देने वाले गणितः याद रखना, सभी नाम परमेश्वर के हैं, और सभी नाम झूठे हैं; प्रकृति की सभी वस्तुओं पर परमेश्वर के हस्ताक्षर हैं, तुम हमेशा उससे घिरे हो--यह सुनकर प्रेमाश्रु बहना तो दूर, इन्हें रोकने तक का उपाय भी नहीं मालूम!
भगवान, अब मैं क्या करूं?

रामावतार! अब हृदय भर कर रोओ! अब यह अपूर्व क्षण आ गया रोने का! आंसुओं
से ज्यादा गहरी तो कोई और प्रार्थना नहीं है। आंसुओं से ज्यादा प्रगाढ़ तो और कोई निवेदन नहीं है। आंसू ही जोड़ते हैं। आंसू ही सेतु बनते हैं तुम्हारे परमात्मा के बीच। और आंसू ही, प्रेम के आंसू ही तुम्हारी आंखों को निर्मल करेंगे, स्वच्छ करेंगे। और आंसू ही तुम्हारी आंख की धूल को बहा ले जाएंगे, और आंख के पर्दे कट जाएंगे, आंख की जाली कट जाएगी। दृष्टि उपलब्ध होगी। और आंसू न केवल आंख को साफ करते हैं, शुद्ध करते हैं, हृदय को भी निर्मल कर जाते हैं और निर्दोष कर देते हैं।
तुम कहते हो, साधु-संतों की मंडली में रहा और आंसू कभी आए नहीं। साधु- संतों की मंडली ही न रही होगी। अहंकारियों की जमाते हैं, वहां आंसू कहां? आंसू तो निर-अहंकारी के होते हैं। इसलिए तुम देखते हो, पुरुष कम रोते हैं-- पुरुष ज्यादा अहंकारी है अगर कोई पुरुष रोता हो तो लोग कहते हैं, क्या नामर्द, क्या रो रहे हो, क्या स्त्रियों जैसा व्यवहार कर रहे? पुरुष की अकड़ और अहंकार पुरुष को रोने नहीं देता। और फिर पुरुषों में भी जो त्यागी इत्यादि होता हैं, उनका अहंकार तो और भी प्रगाढ़ हो जाता है। और जिन्होंने धूनी इत्यादि रमा ली, और जिनको दस-पांच मूढ़ शिष्य मिल गए, उनका तो कहना ही क्या? वे तो भयंकर अहंकार से भर जो हैं। वहां आंसू कहां? वहां तो हृदय सूख जाता है। वहां तो रसधार बिल्कुल सूख जाती है। वहां तो त्याग-तपश्चर्या की अकड़ आ जाती है। वहां तो व्रत-उपवास की अस्मिता आ जाती है। वहां तो मैंने संसार छोड़ दिया है, इसका भयंकर अहंकार प्रबल होने लगता है। तुम उन्हीं अहंकारियों के साथ रहे, इसलिए आंसू नहीं आए। तुम्हें भक्तों का साथ ही हनीं मिला। तुम्हें प्रेमियों का साथ नहीं मिला।
और कोई साधु-संत कुंभ के मेलों में मिलेंगे! कुंभ के मेलों में तो सर्कस पहुंचती हैं। तरह-तरह के सर्कस--ग्रेट बाम्बे सर्कस और ग्रेट रेमन सर्कस और ग्रेट रशियन सर्कस, सब तरह के सर्कस वहां पहुंचते हैं। नागाओं का सर्कस देखो! और साधु-संतों की मंडलियां--अखाड़े! उन्हीं के पास तुम बैठे रहे, इसलिए वहां आंसू नहीं आ सके।
यह कोई कुंभ का मेला नहीं है, यह तो मधुशाला है। यह कोई मंदिर भी नहीं है, यहां तो प्रेमियों का मिलन हो रहा है। यह तो दीवानों की एक जमात है। यहां तो हृदय को खिलाने का आयोजन किया जा रहा है। बुद्धि को भरमने का नहीं, भाव को खिलाने का। यहां अगर आंसू न आएं तो तुम पत्थर थे।
व्यर्थ गया सब स्नेह-समर्पण

व्यर्थ गया सब पूजन-अर्चन
वे न हिले-डोले मुसकाए, हम अपना हिय हारे, पत्थर के थे देव हमारे।
मुख पर ममता की माया थी
तन पर जड़ता की छाया थी
भिगो न पाए उनका आंचल, मेरे निर्झर खारे,
पत्थर के थे देव हमारे।
जगमग-जगमग ज्योतित पातें
जिनको गिन-गिन काटी रातें
उनसे तो अच्छे ही निकले सूने नभ के तारे,
पत्थर के थे देव हमारे।
और तुम जिन मंदिरों में, जिन तीर्थों में जाते रहे, उन पत्थरों पर तुम फूल चढ़ाते रहे! पत्थरों के देवताओं के सामने बैठोगे, आंसू आएंगे भी कैसे? होंगे भी तो सूख जाएंगे। तुम भी पथरीले हो जाओगे। जरा देवताओं को गौर से चुनना! क्योंकि देवताओं को चुनने का अर्थ होता है, तुमने अपना भविष्य चुन लिया। पत्थर मत पूजना, नहीं तो पत्थर हो जाओगे। मुर्दे मत पूजना, अन्यथा मुर्दे हो जाओगे। भगोड़े मत पूजना, अन्यथा भगोड़े हो जाओगे। तुम पूजा उसकी ही करोगे, न जो तुम होना चाहते हो!
वही जीवंत देवता हो, तो झुकना। और जहां भी जीवित कोई मंदिर होता है, तो उसका ढंग मधुशाला का होता है। वहां तो भीतर की शराब ली-दी जाती है। वहां तो शराब पी पिलाई जाती है। वह तो पियक्कड़ों का जमघट होता है।
रामावतार, भूल से तुम ठीक जगह आ गए। धक्के खाते-खाते तुम इस किनारे भी
लग गए। आश्चर्य की घटना है! क्योंकि तुम कहते हो, परमेश्वर की अनुभूति होने की आपकी कार्यप्रणाली से घृणा होने के बावजूद भी यहां आया, आश्चर्य की घटना है! लेकिन अगर समझो भीतर के गणित को, तो बहुत आश्चर्य की नहीं। यहां दो तरह के लोग आते हैं--दो ही तरह के लोग आ सकते हैं। और मैं चाहता हूं, सारी दुनिया को दो तरह के लोगों में बांट दूं। इसी का उपाय कर रहा हूं। या तो मुझे प्रेम करो या घृणा करो। बीच के आदमी मैं पसंद नहीं करता। और इसी काम में लगा हूं। या तो तुम्हें प्रेम करना पड़गा, या घृणा करनी पड़ेगी। तटस्थ, तटस्थता मेरे साथ चल नहीं सकती। तुम देखोगे दस-बीस साल के बीच कि या तो कोई आदमी मुझे घृणा करता है, या कोई मुझे प्रेम करता है। बस दो में बंट जाएगी स्थिति। बढ़ती जा रही, रोज बंटती जा रही है।
घृणा करनेवाले से मुझे बेचैनी नहीं है। क्योंकि जो घृणा करता है, वह
आज नहीं कल प्रेम करेगा। क्योंकि घृणा प्रेम का ही उलटा रूप है--शीर्षासन करता हुआ प्रेम, सिर के बल खड़ा प्रेम। घृणा बहुत दूर नहीं है प्रेम से। घृणा प्रेम की ही उलटी दशा है। और जो शीर्षासन कर रहा है, उसको पैर के बल खड़ा कर देना बहुत दिक्कत नहीं है, रामावतार, इसीलिए बात घट गई! तुम आए, सिर के बल खड़े होगे, ज्यादा कुछ, अड़चन हमें करनी नहीं पड़ी, बस इतना तुम्हें बताना पड़ा कि क्यों नाहक सिर को कष्ट दे रहे हो, परमात्मा ने तुम्हें पैर के बल खड़ा होने के लिए बनाया है! अगर सिर के बल ही खड़ा करना था, तो सिर के बल ही खड़ा करना। तुम क्यों शीर्षासन कर रहे हो? और तुम्हें बात समझ में आ गया--इतनी सी बात है, सीधी-साफ बात है। और तुम जल्दी से छलांग लगा कर पैर के बल खड़े हो गए--यही संन्यास है। उलटे को सीधा कर लेना, यही संन्यास है।
जो प्रेम करता है, वह भी रूपांतरित हो जाएगा। और जो घृणा करता है, वह
भी रूपांतरित हो सकता है। लेकिन जो तटस्थ है, उदासीन है; जिसको न घृणा है, न प्रेम, उसके साथ कोई संबंध न जुड़ सकेगा। क्योंकि उससे भावात्मक कोई नाता ही नहीं। जिससे घृणा का नाता है, उससे भाव का नाता जो हो ही गया। मुझे घृणा करने वाला भी रात-दिन मेरे संबंध में सोचता है--सोचना ही पड़ेगा उसे! प्रेम करने वाला शायद कभी-कभी भूल भी जाए--और भी हजार काम हैं--मगर घृणा करने वाला तो सोचता ही है। उसे तो सोचना ही पड़ेगा। और घृणा करनेवाला भी कभी न कभी आएगा--सोचेगा कि एक बार जाकर देखना भी चाहिए, जिस आदमी को घृणा कर-कर के हम अपनी जिंदगी गंवा रहे हैं, इसको देख तो आना चाहिए कि मामला क्या है? तुम यहां कभी आए नहीं थे और घृणा से भर गए थे? और ऐसे अनंत लोग हैं जो घृणा से

भरे हैं, और यहां कभी आए नहीं। उन्हें आना पड़ेगा, उनकी घृणा ही ले आएगी। और एक बार तुम यहां आ गए, फिर तो तुम जानते ही हो... यहां सम्मोहन चलता है! आदमी सम्मोहित हो जाते हैं! भले-चंगे आते हैं और बिल्कुल गड़बड़ हो जाते हैं! सब सूझ-बूझ खो देते! बड़ी बुद्धिमानी लेकर आते, आर सब बुद्धिमानी रफूचक्कर हो जाती है। वही हालत तुम्हारी हो गई। अब साधु-संतों के सत्संगी रहे, विरागियों के साथ रहे, उदासीनों के साथ रहे--बड़ा कचरा लाए होओगे! मगर कचरा कचरा ही है--एक चिंगारी पड़ जाए जरा सी और राख हो जाता है।
ऐसी ही चिंगारी तुम्हारे भीतर पड़ गई एक छोटे से वचन से--ज्ञान बाहर से उपलब्ध नहीं होता।
छोटी-छोटी बातें हज--मैं कोई बड़ी बात कह ही नहीं रहा हूं; सीधी साफ बात
कह रहा हूं, दो चार ऐसी बातें कह रहा हूं। जिसके भीतर थोड़ी भी बुद्धि है, उसे उन बातों को अंगीकार करना ही होगा। सुन भर ले, समझ भर ले! हां, कान मैं ही उंगलियां डालकर बैठ जाए तो बात अलग। बहरा ही हो जाए तो बात अलग। आंखें ही न खोले तो बात अलग। नहीं तो यह सीधी-सीधी बातें हैं कि सभी नाम परमेश्वर के हैं, और सभी नाम झूठे हैं। प्रकृति की सभी वस्तुओं परमात्मा के हस्ताक्षर हैं। और किसके होंगे? नाम सभी इसके हैं; और किसके होंगे? क्योंकि वही सबके भीतर है। और नाम सब झूठे हैं, कामचलाऊ हैं, क्योंकि कोई बच्चा नाम लेकर आता नहीं। सर्टिफिकेट लिए नहीं चला आता, अपने बगल में दबाए, कि यह मेरा नाम-पता ठिकाना! बच्चा जब पैदा होता है तो बिना नाम के होता है। तुम्हें मालूम है, गुलाब को पता है उसका नाम गुलाब? अगर उसको मालूम होता और तुम किसी दिन कहते कि रोज, एकदम नाराज हो जाता कि बकवास बंद करो, मेरा नाम गुलाब है। रोज, मेरा नाम नहीं। लेकिन गुलाब को पता ही नहीं कि रोज नाम है, कि गुलाब नाम है, कि क्या नाम है--नाम है ही नहीं उसका कुछ। नाम तुम्हारे दिए हैं, कल्पित हैं। नीम को नीम कहो तो नीम है और आम कहो तो नीम है। कुछ भी नाम दे दो। नीम को कुछ पता ही नहीं चलता, फर्क ही नहीं पड़ता। नाम से कुछ फर्क पड़ता है? लेबल कुछ भी लगा दो।
हमें लेबिल लगाने पड़ते हैं। नहीं तो यह व्यवहार का जगत कैसे चले? पहचान के लिए हमें नाम देने पड़ते हैं कि इनका नाम राम, इनका नाम रहीम। और मूढ़ता तो तब है जब राम धीरे-धीरे सोचने लगता है कि यही मैं हूं। लेबल के साथ तादात्म्य हो गया। न तुम राम हो, न तुम रहीम हो। कोई नाम सच्चा नहीं है; कल्पित है, कृत्रिम है--उपयोगी है जरूर, लेकिन यथार्थ से उसका कोई संबंध नहीं है। और फिर भी मैं कहता हूं कि सभी नाम उसके हैं। क्योंकि नीम भी उसी का नाम, आम भी उसी का नाम, गुलाब भी उसी का नाम, राम उसी का नाम, रहीम भी उसी का नाम। क्योंकि वही है और कुछ भी नहीं। सीधे-सीधे गणित हैं।
इन छोटी-छोटी, सीधी-सीधी बातों को सुन कर तुम कहते हो--प्रेमाश्रु बहना तो दूर, इन्हें रोकने तक का उपाय नहीं मालूम। रोकना मत! सौभाग्यशाली हो कि आंसू बहने लगे। पहली दफा सत्संग में आए हो। पहली बार तीर्थ से जुड़े हो। जहां आंसू बहें वहां तीर्थ। जहां हृदय उमंग से भर जाएं, उल्लास से भर जाए, आनंदमग्न हो जाए; जहां भीतर गुनगुन होने लगे, जहां पैर फड़कने लगें नाचने को, वहीं मंदिर। अब इन आंसुओं को पुकारने दो परमात्मा को, यह आंसू तुम्हारी पुकार बनेंगे--रोकना मत। अब तुम मुझसे पूछते--अब तो मैं क्या करूं? अब तुम कुछ न करना, इनको बहने दो, कृपा करके कुछ न करना! कहीं रोक न लेना, पुरानी आदतवश सम्हाल न लेना कि यह मैं क्या कर रहा हूं? कहो मन कि रामावतार, तुम जैसा पुरुष, सत्संगी, साधु-महात्माओं के साथ रहा, बच्चों जैसा रो रहा है! तुम जैसा ब्रह्मज्ञानी और बच्चों जैसा रो रहा है! रोक मत लेना। नहीं तो चूक जाओगे! द्वार आते-आते कही ऐसा न हो कि छिटक जाओ! और कभी- कभी छोटी सी भूल भटका देती है।
एक बौद्ध कथा है। एक आदमी एक महल में खो गया है--बड़ा महल है। उस महल में
एक हजार दरवाजे हैं, मगर नौ सौ निन्यानबे झूठे हैं, सिर्फ दिखाई पड़ते हैं, है दीवाल। दीवाल पर चित्रित दरवाजे! जाओगे पास तो कुछ न मिलेगा, दीवाल मिलेगी। दूर से देखोगे तो दरवाजा दिखाई पड़ेगा। एक दरवाजा सच है हजार दरवाजों में। और वह आदमी खो गया है, वह भटक रहा है असली दरवाजे की तलाश में। और वह नौ सौ निन्यानबे दरवाजों को पार करके, घंटों-घंटों भटक कर, थका-

मांदा हजारवें दरवाजे के पास आता है--जो कि असली है। मगर नौ सौ निन्यानबे जो नकली देखे हों, उसको असली पर भी भरोसा नहीं आता। नौ सौ निन्यानबे भी बिल्कुल ऐसे ही लगते थे, जरा भी भेद न था, और गलत साबित हुए। अब यह हजारवां! इसके पास भी वह वैसे ही आता है--उदास, थका-मांदा, घिसटता। और तभी एक मक्खी उसके कान पर बैठ जाती है तो वह मक्खी को उड़ाने में आगे निकल जाता है! वह हजारवां दरवाजा चूक गया। वह हजारवें दरवाजे को टटोल कर नहीं देखता। तुम उस आदमी पर नाराज भी मत होना। जिसने नौ सौ निन्यानबे टटोल कर देखे हों और झूठे पाए हों, हजारवें में उसकी क्या उत्सुकता हो सकती है? और जरा सा कारण मिल गया कि मक्खी कान पर बैठ गई आकर। वह मक्खी उड़ाने में लग गया और आगे बढ़ गया। फिर निन्यानबे का चक्कर शुरू हुआ।
ठीक दरवाजा भी कभी-कभी मिलते-मिलते चूक जाता है।
आंसुओं को रोकना मत। दबाना मत, यह संन्यास जो मैंने तुम्हें दिया है, रामावतार, पुराने ढंग का सड़ा-गला संन्यास नहीं है। यह जीवंत संन्यास है। यह भगोड़ों का संन्यास नहीं है, यह जीवन का प्रेम करने वालों का संन्यास है। यह जीवन-विरोधी नहीं है, यह जीवन का सम्मान है, यह जीवन का समादर है। यह संसार में परमात्मा को छिपा मानता है। इसलिए संसार को छोड़ कर नहीं जाता। संसार को गौर से देखता है, खोजता है--यही कहीं परमात्मा है। यह संन्यास जीने की क्षमता और साहस रखता है। तुम अपने आंसुओं को प्रार्थना बनने दो। मैंने तुम्हें पुकारा!
आते-जाते सांझ सवेरे,
संध्या को नभ के आंचल में
चमक उठा है तारा!
मैंने तुम्हें पुकारा!
अंधकार में दीप दिखाओ,
मुझको मेरी राह बताओ,
निर्बल हूं मैं, हे करुणामय! मुझको मिले सहारा!
मैंने तुम्हें पुकारा!
पथ के शूल मुझे हैं चुभते, फूल डाल में हंस कर झुकते, ढूंढ़ रही कण-कण में तुमको मेरा मन अब हारा!
मैंने तुम्हें पुकारा!
गाकर मैंने दुख भुलाया
मधुऋतु में ही पतझड़ पाया।
भटक गया मेरा मन पागल
अब तो मिले किनारा!
मैंने तुम्हें पुकारा!
इहन आंसुओं को पुकार बनने दो! प्रार्थना बनने दो! इन्हें रोकना मत, इन्हें झर-झर झरने दो! इन्हें निर्झर बनने दो! इन्हें बहने दो, यही उसके चरणों में पहुंच जाएंगे। यही उसके चरणों को पखारेंगे! यही तुम्हारे आंखों के फूल तुम्हारे अर्चना के फूल हैं! और इसी मार्ग से वह अनूठी घटना घटेगी, जिसका स्पर्श मात्र अमृत से जोड़ जाता है।
महकी-महकी बेला उग आएगीः
आंगन को सिर्फ चरन से छू भर दो।
हर दुख के समय उपस्थित राहत है
आंसू कोई ऐसा संबंधी है!
गीतों का तुम तक आना-जाना है,
मुझ पर लेकिन यह भी पाबंदी है। अंधी किस्मत को दृग मिल जाएंगे, माथे को सिर्फ नयन से छू भर दो।

कुछ मस्ती उनसे मिली विरासत में

जिन लावारिस गलियों ने पाला था! रीत घट बांध कतारें आगे थे
मैंने जब घर से पांव निकाला था। देखो, यह अश्रु सुमन बन जाएंगेः लोचन को सिर्फ वसन से छू भर दो।

जिसका ग्राहक मिलना ही मुश्किल है ऐसी माला में गूंथ दिया मुझको!
जो कलियां मुझसे अब तक सहमत हैं,
उन कलियों ने बदनाम किया मुझको।
जिसमें अपना प्रतिबिंब निहारा होः
मुझको बस उस दर्पण से छू भर दो।

महकी-महकी बेला उग आएगीः
आंगन को सिर्फ चरन से छू भर दो।
जरा सी पुलक, जरा सा स्पर्श उस परमात्मा का और क्रांति घट जाती है! लोहा सोना हो जाता है! कंकड़ हीरे हो जाते हैं!
देखो, यह अश्रु सुमन बन जाएंगेः
लोचन को सिर्फ वसन से छू भर दो।
महकी-महकी बेला उग आएगीः
आंगन को सिर्फ चरण से छू भर दो।

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
तीसरा प्रवचन

भजन भरोसा एक बल

बेवाह के मिलन सों, नैन भया खुसहाल।
दिल मन मस्त मतवल हुआ, गूंगा गहिर रसाल।।
भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम पर, सोइ संत बिबेकी दास।।
है खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोय।
भरम लगे भटकत फिरे, तिरथ बरत सब कोय।।
जंगम जोगी सेपड़ा पड़े काल के हाथ।
कह दरिया सोइ बाचिहै, सत्तनाम के साथ।।
बारिधि अगम अथाह जल, बोहित बिनु किमि पर।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त है मंजधार।

दरिया कहै सब्द निरबाना!
निर्वाण की सुगंध उनके ही शब्दों में हो सकती है जो समग्ररुपेण मिट गए; जो नहीं है। जिन्होंने अपने अहंकार को पौंछ डाला। जिनके भीतर शून्य विराजमान हुआ है। उसी शून्य से संगीत उठता है निवार्ण का। जब तक बोलने वाला है तब तक निवार्ण की गंध नहीं उठेगी। जब बोलने वाला चुप हो गया, तब फिर असली बोल फूटते हैं। जब तक बांसुरी में कुछ भरा है, स्वर प्रकट नहीं होंगे। बांसुरी तो पोली हो, बिल्कुल पोली हो, तो ही स्वरों की संवाहक हो पाती है।
दरिया बांस की पोली पोंगरी है। शब्द निर्वाण से उनसे झर रहे हैं--उनके
ही हैं, परमात्मा के हैं। क्योंकि निर्वाण का शब्द परमात्मा के अतिरिक्त और कौन बोलेगा? और कोई बोल नहीं सकता है। और जहां से तुम्हें निर्वाण के शब्दों की झंकार मिले, वहां झुक जाना। फिर अपनी अपेक्षाएं छोड़ देना। लोग अपेक्षाएं लिए चलते हैं, इसलिए सदगुरुओं से वंचित रह जाते हैं। तुम्हारी कोई अपेक्षा के अनुकूल सदगुरु नहीं होगा। तुम्हारी अपेक्षाएं तुम्हारे अज्ञान से जन्मी है। तुम्हारी अपेक्षाएं तुम्हारे अज्ञान का ही हिस्सा है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपेक्षाओं के अनुकूल गुरु को खो जात है। गुरु तो सदा मौजूद है--पृथ्वी कभी-कभी इतनी अभागी नहीं रही कि गुरु मौजूद न हों--लेकिन हमारी अपेक्षाएं!
अब जैसे तुमने अगर अलहिल्लाज मंसूर को अपना गुरु समझा और तुम खोजने निकले, तो तब तक किसी को गुरु न मानोगे जब तक उसके हाथ-पैर न कटें, और जबान न काटी जाए और गर्दन न गिराई जाए--तब तक तुम किसी को गुरु न मानोगे। अगर जीसस को तुम गुरु मान बैठे हो, तो जब तक किसी को सूली न लगे तब तक तुम उसे गुरु न मानोगे। लेकिन जिसे सूली लग गई, वह तुम्हारे किस काम का? तुम जा चुके गुरुओं से अपनी अपेक्षाएं पैदा कर लेते हो। तो कोई महावीर को खोज रहा है-- नहीं मिलेंगे उसे गुरु। बस महावीर एक बार होते हैं। कोई बुद्ध को खोज रहा है--नहीं मिलेंगे उसे गुरु। बुद्ध बस एक बार होते हैं। इस जगत में कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता। यह जगत प्रत्येक को अनूठा व्यक्तित्व देता है। गुरु तो सदा मौजूद है, और ऐसा भी नहीं है कि खोजने वाले नहीं है, लेकिन खोज कुछ बुनियाद से गलत हो जाती है।
बरसरे-दार खिंचे या न खिंचे वोह लेकिन
जो कहे कलमए-हक तू उसे मंसूर समझ।।
फिर चाहे फांसी पर लटकाया गया हो या न लटकाया गया हो, जो कहे निर्वाण
का शब्द, जो कहे सत्य की बात, जिसके पास सत्य की भनक हो, जिसके पास बैठ कर सत्य की सुर तुम्हारे तन-प्राण को मस्त करने लगे, मंसूर समझ।
बरसरे-दार खिंचेया न खिंचे वोह लेकिन
जो कहे कलमए-कह तू उसे मंसूर समझ।।
जहां भी यह उदघोषणा हो--अहं ब्रह्मास्मि--वहां जरा जाग कर, अपेक्षाओं
को छोड़ कर, शांत होकर, मौन होकर, विचार से रिक्त होकर संबंध जोड़ना, संबंध

बांधना, सत्संग बनाना, क्योंकि सत्संग ही सेतु है। दरिया कहै सब्द निरबाना! मगर तुम सुनोगे? सवाल तुम्हारे सुनने का है। सदगुरु कहते हैं, कहते रहे हैं, मगर अधिकतर तो वज्रबधिर कानों पर उनके शब्द पड़ते हैं और खो जाते हैं।
जीसस ने कहा है, जैसे कोई बीज फेंके, कुछ बीज रास्ते पर पड़ जाएं तो कभी पनपेंगे नहीं। दिन-रात लोग रास्तों पर चलते रहते हैं--बीजों को पनपने का मौका कब मिलेगा? कुछ बीज खेत की मेंड़ों पर पड़ जाएं, पनपेंगे तो जरूर लेकिन जल्दी ही मर जाएंगे, क्योंकि मेंड़ों से लोग निकलते हैं--कभी-कभार निकलते हैं, रास्ते जैसे नहीं, मगर फिर भी निकलते हैं। कुछ बीज पत्थरों पर पड़ जाए, वहां से कोई भी नहीं निकलता, लेकिन पत्थरों में कहीं बीज फूटे हैं? हां, कुछ बीज जो ठीक-ठीक भूमि में पड़ जाएंगे आर्द्र भूमि में पड़ जाएंगे, वे उगेंगे, वह बड़े वृक्ष बनेंगे, उनकी शाखाएं आकाशों में फैलेंगी, उनके मस्तक चांद-तारों को छुएंगे, उनमें फूल खिलेंगे, उनसे फूल झरेंगे।
सदगुरु तो फेंकते हैं वचनरूपी बीत, पर तुम कहां लोगे उन्हें? अगर तुमने अपने सिर में लिया तो वह चलता हुआ रास्ता है; वहां इतने विचारों की भीड़ चल रही हैं, वहां ऐसा ट्रैफिक है कि वहां कोई बीज पनप नहीं सकता। जब तक कि तुम अपने हृदय की गीली भूमि में बीजों को न लो, तब तक फसल में वंचित रहोगे। और जिंदगी बड़ी उदास है। और जिंदगी इसीलिए उदास है कि जिन बीजों से तुम्हारी जिंदगी हरी होती, फूल खिलते, गंध बिखरती, उन बीजों को तुमने कभी स्वीकार नहीं किया है। और अगर तुम पूजते भी हो तो तुम मुर्दों को पूजते हो। अगर तुम फूल भी चढ़ाते हो पत्थरों के सामने चढ़ाते हो। अगर तुम तीर्थयात्राओं पर भी जाते हो, बाहर की तीर्थयात्राओं पर जाते हो। तीर्थयात्रा तो बस एक है--उसका नमा अंतयार्त्रा है। और सदगुरु तो केवल जीवित हो तो ही सार्थक है।
तुम मुर्दा मांझी की नाव में तो न बैठोगे! और वह कितना ही बड़ा मांझी क्यों न रहा हो जब जिंदा था, मगर अब उसके हाथ में पतवार किसी अर्थ की नहीं है। वह नाव को खे न सकेगा।
जहां तक भी नजर जाती, धुआं ही हाथ आता है,
कहीं भी जल नहीं है, सिर्फ रेगिस्तान गाता है,
कही भी घुंघरू की गूंज का धोखा नहीं होता
मरण के खौफ से जीवन यहां खुलकर नहीं रोता,
यही से हां, यही से जिंदगी आरंभ होती है!
तुम्हें अगर स्मरण आ जाए कि तुम सावन होने को पैदा हुए थे और तुम क्या होकर रह गए हो? यह जलती दुपहरी ग्रीष्म की! कि तुम्हारे भीतर कोयल की कूक गूंजनी थी, कि पपीहे का गीत उठना था, और तुम क्या होकर रह गए हो? ये बांझ विचारों की भीड़, यह व्यर्थ विचारों की भीड़ यह कूड़ा-करकट! इससे तुमने अपने प्राणों के उस पात्र को भर लिया है जिसमें अमृत भरा जा सकता था। तुम पैदा हुए थे उपवन होने को और मरुस्थल होकर समाप्त हो रहे हो, यह स्मरण आ जाए तो-- यहीं से हां, यही से जिंदगी आरंभ होती है! इसी स्मरण के साथ जिंदगी का प्रारंभ होता है। क्योंकि इसी स्मरण के साथ सदगुरु की तलाश शुरू होती है। तो खोजें उसे, कि जिसके वचन बीज की तरह पड़ें तुम्हारे हृदय पर... दरिया कहै सब्द निरबाना... कि जिसके निर्वाण का रस तुम्हें भी बांध लो, कि जिसके निर्वाण की आवाज तुम्हें भी पुकार दे, चुनौती बन जाए, कि जिसके साथ तुम भी हो लो अनंत की यात्रा पर, अज्ञात की यात्रा पर, कि परमात्मा की खोज तुम्हारी खोज बन जाए।
जहां तक भी नजर जाती, धुआं ही हाथ आता है,
कहीं भी जल नहीं है, सिर्फ रेगिस्तान गाता है,
कहीं भी घुंघरू की गूंज का धोखा नहीं होता,
मरण के खौफ से जीवन यहां खुलकर नहीं रोता,
यहीं से हां, यही से जिंदगी आरंभ होती है!
खड़ी हैं बांह फैलाए हुए मजबूत चट्टानें, गुजरती आंधियां अपनी कमाने हाथ में ताने, गजब का एक सन्नाटा, कहीं पत्ता नहीं हिलता,

किसी कमजोर तिनके का समर्थन तक नहीं मिलता कभी उन्माद हंसता है, कभी उम्मीद रोती है। बराए नाम जीते हैं, बराए नाम मरते हैं, उनींदी आंख से टूटे हुए सपने गुजरते हैं, उजाले के हमारे बीच का पर्दा नहीं उठता, सुबह आए न आए रात से पीछा नहीं छुटता, उदासी साथ चलती है, उदासी साथ सोती है। बनाने के लिए हमने स्वयं किस्मत बनाई है, विफलता एक पूजी है, निराशा ही कमाई है,
जलन से दोस्ती है, उलझनों से आशनाई है, लड़ाई है अगर अस्तित्व से अपनी लड़ाई है, स्वयं पतवार कश्ती को किनारे पर डुबोती है। खुशी अक्सर सिमाने में हमें आवाज देती है, रुकावट दायरा बन कर हमेशा घेर लेती है, कभी मो लगा रहता पुकारों का, ख्यालों का, कभी उत्तर नहीं मिलता बड़े भोले सवालों का, हमारा हाथ खाली, आंख में ही एक मोती है। हमें जागा हुआ पाकर हमेशा रात हंसती है, शरद की चांदनी में आग अंबर से बरसती है, जिसे भी देख दें हम वह सितारा टूट जाता है, अगर धारा पकड़ते हैं किनारा छूट जाता है, कली हंस कर हमारी आंख में कांटे चुभोती है। कभी शमशान की धमकी, कभी तूफान की गाली, हमारी उम्र का प्याला कभी गम से नहीं खाली, मरुस्थल पर सुबह से शाम तक बादल बरसते हैं, समंदर में बसे हैं, हम मगर जल को तरसते हैं, हमारे ओंठ आकर मृत्यु चुंबन से भिगोती है! भंवर में डूब जाते हैं अगर तो तर गए हैं हम, जिलाने के लिए तस्वीर को खुद मर गए हैं हम, किसी बारात में शामिल हमारा दिल नहीं होता, हमारी राह का कोई सिर मंजिल नहीं होता,
समझ सिंदूर हमको मांग में पीड़ा संजोती है।
जहां तक भी नजर जाती, धुआं ही हाथ आता है,
कहीं भी जल नहीं है, सिर्फ रेगिस्तान गाता है,
कहीं भी घुंघरू की गूंज का धोखा नहीं होता,
मरण के खौंफ से जीवन यहां खुलकर नहीं रोता,
यही से हां, यहीं से जिंदगी आरंभ होती है!
जिस क्षण तुम्हें इस बात का स्मरण आता है कि तुम अकारण व्यर्थ हुए जा रहे हो, कि जीवन का यह महाअवसर ऐसे ही खोया जाता है, यहां बहुत कुछ हो सकता था, यहां सब कुछ हो सकता था और कुछ भी नहीं हो रहा है; यहां परमात्मा को सकता था, और तुम खाली हाथ आए और खाली हाथ ही चले जाओगे! यह कैसी नादानी! यह कैसा बचकानापन है! यह कैसी मूढ़ता है! इसे तोड़ो! दरिया कहै सब्द निरबाना। सुनो दरिया के शब्द, यह शब्द तुम्हारे लिए नौकाएं बन सकते हैं। यह शब्द तुम्हें चौंकाएंगे, जगाएंगे, झकझोरेंगे; यह शब्द तुम्हें पार भी लगा सकते हैं। निर्वाण की याद भी आ जाए, उस किनारे का मन में थोड़ा स्वप्न भी जग जाए, तो यह किनारा फिर ज्यादा देर तुम्हें बांधे नहीं रख सकता। इस किनारे से तुम्हारी जंजीरें टूटनी शुरू हो जाएंगी।
बेवाहा के मिलन सों, नैन भया खुसहाल।
बेवाहा दरिया के भक्तों का ओंकार को दिया गया नाम है। जैसे नानक कहते--एक ओंकार सतनाम। जैसे उन्होंने ओंकार को सतनाम कहां। जैसे हिंदू राम और मुसलमान अल्लाह और जैन नमोकार और बौद्ध बुद्ध की शरण में जाने की घोषणा को मंत्र कहते हैं; या जैसे गायत्री, या जैसे जपुजी। छोटे मंत्र हैं, बड़े मंत्र हैं, मगर सारे मंत्रों का एक ही प्रयोजन है कि तुम्हारे भीतर जो

संगीत सोया पड़ा है वह छिड़ जाए। फिर नमोकार से छिड़े, कि गायत्री से छिड़े, कि कुरान की कोई आयत उसे जगा दे, इससे भेद नहीं पड़ता।
वीणा तुम्हारे भीतर है। वीणा को छूना है, किस अंगुली से छुओगे, अंगुली में हीरे की अंगूठी होगी कि सोने की अंगूठी होगी कि अंगूठी होगी ही नहीं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अंगुली गोरी होगी कि काली होगी, लंबी होगी कि छोटी होगी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बस भीतर के तार छिड़ जाएं, झंकार आ जाए--तुम नहा जाओ उस झंकार में!
दरियापंथी अपने महामंत्र को बेवाहा करते हैं। बेवाहा सोया पड़ा है तुम्हारे भीतर, तुम उसे जन्म से लेकर आए हो, वह तुम्हारे रोम-रोम में भिदा पड़ा है, मगर जब तक जगाओगे नहीं तब तक तुम वंचित रहोगे प्रकाश से और वंचित रहोगे अर्थ से और वंचित रहोगे आनंद से। दरिया कहते हैंः बेवाहे मिलन सो... और जिसका उस पर संगीत से, उस अनाहत नाद से मिलन हो गया, उस ओंकार में जिसकी डुबकी लग गई... नैन भया खुसहाल... उसकी आंखें आनंद हो जाती। समझो--
जबां पै जिक्र तेरा उज्र-ख्वाह दीदएतर
यही वजू है, इसी को नमाज कहते हैं
नाम क्या है, इसमें फर्क नहीं पड़ता। राम है कि रहीम है, कि कृष्ण है कि बुद्ध है, कोई भी नाम तुम दे लो उसे। नाम तो बहाना है उसे याद करने का। नाम तो ऐसे है जैसे घर से तुम बाजार जाते हो कुछ खरीदने, कहीं भूल न जाओ तो कुर्ते के छोर में गांठ बांध लेते हो। गांठ का कोई मूल्य नहीं है। और गांठ ऐसी बांधी कि वैसी बांधी, इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। बाएं तरफ बांधी कि दाएं तरफ बांधी, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। गांठ का मूल्य कुछ भी नहीं अपने आप में, पर गांठ का प्रयोजन जरूर है। गांठ तुम्हें याद दिलाती रहेगी; चलोगे रास्ते पर, याद दिलाती रहेगी; तुम्हें याद भी न आए तो दूसरे याद दिला देंगे--कुर्ते में गांठ क्यों बांधी है? याद आती रहेगी कि कुछ खरीद कर घर लौटना है। बाजार कुछ खरीदने आए हैं। कोई प्रयोजन है जो पूरा करना है। फिर राम की गांठ, कि कृष्ण की गांठ, कि गायत्री, कि नमोकार, कि बेवाहा, कुछ फर्क नहीं पड़ता। कोई भी गांठ चाहिए जो स्मरण दिलाती रहे। चौबीस घंटे सतत स्मरण दिलाती रहे।
जबां पै जिक्र उज्र-ख्वाह दीदएतर
बस जबान पर तेरी याद रहे, आंखों में एक ही अभीप्सा रहे, कि तुझे देखना है! जबान आंखों को याद दिलाती रहे कि देखना है, आंखें जबान को याद दिलाती रहें कि उसका गुणगान जारी रहे।
जबां पै जिक्र तेरा उज्र-ख्वाह दीदएतर
यही वजू है, इसी को नमाज कहते हैं
यही प्रार्थना, यही आराधना, यही नमाज। और जिसकी आंखें उसके दर्शन की प्यासी हो गई और जिसकी जुबान पर उसकी याद सघन होने लगी, तो क्रांति घटती है।
भरे हुए निगाहों में हुस्न के जलवे।
यह क्या मजाल जहां मैं हूं और बहार न हो।।
जिसकी आंखों में परमात्मा को देखने की अभीप्सा जग गई, उसके चारों तरफ बहार नाचने लगती है। आ गया मधुमास! वसंत ही वसंत है फिर! प्रभु के स्मरण में डूबे व्यक्ति को एक ही ऋतु का पता होता है--वसंत। उसकी ऋतुएं नहीं बदलती। उसकी ऋतु तो फिर थिर हो जाती। उसके लिए समय के परिवर्तन शून्य हो जाते हैं। उसके लिए समय के परिवर्तन विदा हो जाते हैं। उसके भीतर तो अपरिवर्तनीय शाश्वत का नाद होने लगता है। उसकी एक ही ऋतु है--वसंत। फूल ही झरते हैं उसमें। मधु ही पीता है वह।
भरे हुए हैं निगाहों में हुस्न के जलवे...
और उसकी आंखों में उस प्यारे के सौंदर्य का प्रतिबिंब पकड़ सकते हो तुम। उसकी आंखें सौंदर्य से ही अभिभूत रहती हैं। उसकी आंखें सौंदर्य से ही डबडबाई रहती हैं।
भरे हुए हैं निगाहों में हुस्न के जलवे।
यह क्या मजाल जहां मैं हूं और बहार न हो।।

ऐसा व्यक्ति जहां बैठे मधुमास, जहां बैठे वहां मधुशाला; जहां उठे-चले, जहां उसके चरण पड़ें, वहां-वहां तीर्थ निर्मित होते हैं।
मेरी फिजाए जिस्त पर नाज से छा गया कोई।
आंखों में आंखें डाल के बंदा बना गया कोई।।
और तुम परमात्मा को देखना चाहो, बस तुम परमात्मा को देखना चाहो, बात
घट जाती--क्योंकि परमात्मा तो तुम्हें देख ही रहा है। उसकी आंख तो तुम पर गड़ी है। इसीलिए तो हम कहते हैं, उसकी हजार आंखें हैं, क्योंकि हर-एक पर उसकी आंख गड़ी है। बस तुम आंख बचा रहे। तुम यहां-वहां देखते हो। तुम उसकी याद करो तो तुम्हारी आंखों से जुड़ जाए। और जहां आंखें चार होती, वहां चमत्कार होता है।
मेरी फिजाए जिस्त पर नाज से छा गया कोई।
आंखों में आंखें डाल के बंदा बना गया कोई।।
दिल से पर्दा जो उठा हो गई रोशनी आंखें।
दिल में वह पर्दानशी था मुझे मालूम न था।।
और जिस दिन तुम उसे दुख लोगे, उस दिन चौंकोगे, हंसोगे भी, रोओगे भी।
इसलिए भक्तों को लोगों ने पागल समझा। क्योंकि हंसना और रोना साथ-साथ सिर्फ पागलों को ही होता है। समझदार आदमी अगर जरूरत हो तो हंसता है और अगर जरूरत हो तो रोता है। मगर ऐसा तो कभी नहीं होता है कि रोए भी और हमें भी साथ-साथ। कि ओंठ हंसें और आंखें रोएं। कि एक आंख हंसे और एक आंख रोए। यह तो विक्षिप्तता के लक्षण है।
इसलिए भक्तों को लोगों ने पागल कहा। मगर भक्तों को समझो। अगर भक्त पागल है तो पागलपन ही पाने जैसी चीज हैं। और अगर जो भक्त नहीं है वे समझदार हैं, तो समझदारी दो कौड़ी की है, उससे छुटकारा कर लेना। भक्तों को पागलपन तुम्हारे तथाकथित समझदारों की समझदारी से लाख गुना बहुमूल्य है।
लेकिन यह क्यों घटना है कि भक्त हंसता भी है और रोता भी है? हंसता इसलिए है कि यह भी खूब रही; यह भी खूब मजाक रही कि तुम भीतर बैठे थे और तुम्हें जन्म-जन्म न मालूम कहां-कहां खोजता फिरा! कि तुम यहां भीतर थे कि चलने की जरूरत भी न थी, एक कदम न उठाना था और तुम मिल जाते, और मैंने कितनी- कितनी यात्राएं की! कितनी धूल, कितनी गर्द-गुबार झेली! कहां चांद-तारों के किनारे तुम्हें खोजता फिरा और तुम मेरे भीतर बैठे थे! तो हंसता भी है कि यह भी खूब रही, यह भी मजाक आखिरी रहा! और रोता भी है--रोता है कि कितने दिन गंवाए तुम्हारे बिना, रोता है कि कितने दुर्दिन देखे तुम्हारे बिना, रोता है कि अब तक सारा जीवन सिर्फ दुर्घटना के और कुछ भी न रहा।
बेवाहा के मिलना सों, नैन भया खुसहाल।
यह बात समझता। यह बात कीमती है। नैन भया खुशहाल। तुमने खीझें तो देखी हैं, जो आनंद देती हैं, लेकिन तुम्हारे पास ऐसी आंख नहीं है जो आनंद बरसाए। हां, देखा कभी सुबह सूरज ऊगता और कहा--खूब सुंदर है। और कभी देखा गुलाब का फूल खिला और कहा--बहुत सुंदर है। और कभी कोई देखा सुंदर चेहरा और कहा--बहुत सुंदर है। मगर यह तो बाहर है सौंदर्य। तुम्हारी आंख अभी इतनी कुश नहीं कि चीजों को सुंदर बना दे। कि तुम जो देखो, वही सुंदर हो जाए। अभी तो कुछ सुंदर होता है तो सुंदर मालूम पड़ता है। तुम्हारी आंख कोरी है, खाली है। सिर्फ खबर देती है। तुम्हारी आंख भी सृजनात्मक नहीं है। तुम्हारी आंख केवल बिंब उतारती है। जैसा होता है, बता देती है। तुम्हारी आंख निष्क्रिय है। तुम्हारी आंख का काम अभी नकारात्मक है--जो है, बता देती हैं। लेकिन तुम्हारी आंख में अभी सृजन की क्षमता नहीं है कि जिसे देखे, वह सुंदर हो जाए। कि जहां तुम्हारी आंख पड़े, वहां गीत जन्मे। कि तुम जिसे देख लो, वह गरिमा को उपलब्ध हो जाए, महिमा को उपलब्ध हो जाए। यही संतों की आंख की खूबी है।
बायजीद ने लिखा हैः मैं अपने गुरु के पास बारह वर्ष रहा। तीन वर्ष तक
तो वे मुझसे बोले ही नहीं। मैं बैठा रहा, बैठ रहा, ऐसे जैसे मैं हूं ही नहीं। औरों से बोलते थे, बात करते थे, न मेरी तरफ देखते थे, न बोलते थे। तीन वर्ष बाद उन्होंने मेरी तरफ देखा। और उस देखने में ही मेरा जन्म हुआ। बस उनकी आंख मुझ पर पड़ी कि मैं जन्मा। सब बदल गया उसी क्षण।

फिर तीन साल बीत गए और एक दिन वह मुझसे बोले। और वह बोल, और ऐसी मधुरिमा तन-प्राण में छा गई, ऐसा स्वाद, ऐसी मस्ती, जो किन्हीं शराबों में नहीं हो सकती। फिर तीन साल बीत गए और एक दिन उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा और मेरी पीठ थपथपाई। और वह स्पर्श और जैसे लोहा सोना हो जाए! और तीन वर्ष बीत गए और एक दिन उन्होंने मुझे गले लगाया और कहा कि बायजीद, अब तू तैयार है! अब तू जा, सोयों को जगा! अब तू जा, लोगों की आंख में झांक; उनकी पीठ थपथपा, उनसे बोल, उनको गल लगा! और साधना पूरी हो गई। बस बारह वर्ष बैठे-बैठे ही पूरी हो गई।
सदगुरु जिसकी तरफ देख दे, उसके देखते ही तुम्हारे भीतर कूड़ा-करकट जल जाता है। तुम्हारा अंधेरा छंट जाता है।
एक ऐसी आंख भी है जिसका स्वभाव आनंद को पैदा करना है। और तुम दूसरी इससे विपरीत आंख से परिचित हो, इसलिए बात तुम्हें समझ में आ जाएगी, ऐसी आंखें हैं जो तुम्हारी तरफ देखे तो तुम एकदम कीड़े-मकोड़े हो जाते हो। तुम्हारे तथाकथित साधु-संत, जिनकी तुम पूजा करते हो, जिसको तुम समादर देते रहे हो, कभी उनके पास जाकर देखना! उनकी आंखें तुम्हें ऐसे देखते हैं--ऐसी आलोचना से, ऐसी निंदा से--कि उनके देखते ही तुम चाहते हो, जमीन फट जाती और हम समा जाते। उनकी आंखें तुममें नारकीय कीड़े देखती हैं। उनकी आंखों में तुम्हारा भविष्य दिखाई पड़ता है कि सड़ोगे नर्क में, कि जलाए जाओगे कड़ा हो में उबलते तेल के। उनकी आंखों में नर्क है, वही नर्क वह तुम में देखते हैं। और उनकी आंखों में निंदा है, सम्मान नहीं, सत्कार नहीं। यह बच्चे संतों का लक्षण नहीं।
सच्चे संतों की आंखों में तो स्वर्ग होता। वहां तो जादू होता। पापी
से पापी आदमी भी सच्चे संत के सामने खड़ा हो जाए तो पुण्यात्मा हो जाता है। खड़े होने से पुण्यात्मा हो जाता है। कुछ और करना नहीं पड़ता। उसकी नजर काफी है--और क्या चाहिए? उसकी नजर का जादू काफी है--और क्या चाहिए? उसकी नजर की कीमिया काफी है--और क्या चाहिए? सदगुरु तुम्हारा हाथ हाथ में ले ले, बस बहुत हो गया, अंतिम बात हो गई।
सदगुरु निंदा नहीं करता। सदगुरु की खूबी ही यही है कि तुम्हारे गलत
को भी रूपांतरित करता है शुभ में। तुम्हारा कामवासना को राम की वासना बना देता है। तुम्हारे क्रोध को करुणा बना देता है। तुम्हारे लोभ को दान में रूपांतरित कर देता है। तुम्हारी देह को, मांस-मज्जा मिट्टी की बनी देह को मंदिर का ओहदा दे देता है। बिरहिनी मंदिर दियाना बार... यारी ठीक कहते हैं कि देह तुम्हारा मंदिर है, शरीर तुम्हारा मंदिर है। क्यों रातें हो, इस मंदिर में दिए को जलाओ! आतिथेय बनो, अतिथि को पुकारी, आएगा इसी मंदिर में, इसी देह में। इस देह को मिट्टी कह कर इंकार मत करना, क्योंकि यह अमृत का वास है। अमृत ने इस अपने घर की तरह चुना है। इस चुनाव में ही मिट्टी अमृत हो गई, मिट्टी मिट्टी न रही।
संत की पहचान यही है कि तुम पापी की तरह जाओ और पुण्यात्मा की तरह लौटो, कि तुम रोते हुए जाओ और हंसते हुए लौटो; कि तुम जाओ ऐसे कि जैसे पहाड़ों का बोझ ढो रहे हो और आओ ऐसे कि तुम्हें पंख लग गए हैं। जहां ऐसी घटना घटती हो, चूकना मत फिर! फिर पकड़ लेना पैर, कि गह लेना बांह, फिर आ गई घड़ी अपने को निछावर कर देने की।
बेवाहा के मिलन सौं, नैन भया खुसहाल।
मगर यह आंखें तभी पैदा हैं जब भीतर के अंतर्नाद से मिलन हो जाए। ओंकार में जब कोई नहा जाता है, तभी यह आंखें उपलब्ध होती हैं--यह जादू भरी आंखें, जो जिसको छू दें उसको किसी दूसरे लोक का वासी बना दें। जिनका स्पर्श पारस का स्पर्श है।
ऐसी घटना घटी।
विवेकानंद राजस्थान के एक रजवाड़े में मेहमान थे। खेतरी के महाराजा के मेहमान थे। अमरीका जाने के पहले। अब महाराज तो महाराजा! अब विवेकानंद का स्वागत कैसे करें? और अमरीका जाता है संन्यासी, पहला संन्यासी, स्वागत से विदा होनी चाहिए! तो हर एक की अपनी भाषा होती है, अपने सोचने का ढंग होता है, महाराजा और क्या करता, उसने देश की सबसे बड़ी जो खयातिनाम वेश्या थी,

उसको बुलवा भेजा। बड़ा जलसा मनाया। वेश्या का नाच रखा। यह भूल ही गए कि किसके लिए यह स्वागत-समारोह हो रहा है। विवेकानंद के लिए!
और जब विवेकानंद को आखिरी घड़ी पता चला--सब साज बैठ गए, वेश्या नाचने को तत्पर है, दरबार भर गया, तब विवेकानंद को बुलाया गया कि अब आप आएं, अब उन्हें पता चला कि एक वेश्या का नृत्य हो रहा है उनके स्वागत में! विवेकानंद की दशा समझ सकते हो! बड़े मन को चोट लगी कि यह कोई बात हुई! संन्यासी के स्वागत में वेश्या! इंकार कर दिया जाने से। साधारण भारतीय संन्यासी की धारणा यही है! इंकार कर दिया जाने से। अपमानित किया अपने को अनुभव। यह तो असम्मानजनक है।
वेश्या बड़ी तैयार होकर आई थी। संन्यासी का स्वागत करना था, कभी किया नहीं था संन्यासी के स्वागत में कोई नाच-गान, बहुत तैयार होकर आई थी, बहुत पद याद करके आई थी--कबीर के, मीरा के, नरसी मेहता के। बहुत दुखी हुई कि संन्यासी नहीं आएंगे। मगर उसने एक गीत नरसी मेहता का गाया--बहुत भाव से गाया, खूब रोकर गाया, आंखों में झर-झर आंसू बहे और गाया। उस भजन की कड़ियां विवेकानंद के कमरे तक आने लगी। और विवेकानंद के हृदय पर ऐसी चोट पड़ने लगी जैसे सागर की लहरें किनारे से टकराएं, पछाड़ खाए। फिर मन में बड़ा पश्चात्ताप हुआ।
नरसी मेहता का भजन है कि एक लोहे का टुकड़ा तो पूजागृह में रखते हैं, एक लोहे का टुकड़ा बधिक के घर होता है, लेकिन पारस पत्थर को थोड़े ही कोई भेद होता है। चाहे बधिक के घर का लोहा ले आओ। जिससे काटता रहा हो जानवरों को, और चाहे पूजा-गृह का लोहा ले आओ, जिससे पूजा होती रही हो, पारस पत्थर तो दोनों को छूकर सोना कर देता है। यह बात बहुत चोट कर गई, घाव कर गई। यह विवेकानंद के जीवन में बड़ी क्रांति की घटना थी।
मेरे अपने देखे, रामकृष्ण जो नहीं कर सके थे, उस वेश्या ने किया। विवेकानंद रोक न सके, आंख से आंसू गिरने लगे--यह तो चोट भारी हो गई! अगर तुम पारस पत्थर हो, तो यह भेद कैसा? पारस पत्थर को वेश्या दिखाई पड़ेगी, सती दिखाई पड़ेगी? पारस पत्थर को क्या फर्क पड़ता है--कौन सती, कौन वेश्या! लोहा कहां से आता है, इससे क्या अंतर पड़ता है, पारस पत्थर के तो स्पर्श मात्र से सभी लोहे सोना हो जाते हैं।
रोक न सके अपने को। पहुंच गए दरबार में। सम्राट भी चौंका। लोग भी चौंके कि पहले मना किया, अब अया गए! और आए तो आंख से आंसू झर रहे थे। और उन्होंने कहा, मुझे क्षमा करना, उस वेश्या से कहा, मुझे क्षमा करना, मैं अभी कच्चा हूं, इसलिए आने से डरा। कहीं न कहीं मेरे मन में अभी भी वासना छिपी होगी, इसीलिए आने से डरा। नहीं तो डर की क्या बात थी? लेकिन तूने ठीक किया, तेरी वाणी ने मुझे चौंकाया और जगाया।
विवेकानंद उस घटना का बहुत स्मरण करते थे कि एक वेश्या ने मुझे उपदेश दिया। यह भेद! सच्चे ज्ञानी के पास अभेद है। पापी जाए तो पुण्यात्मा जाए तो, दोनों को छूता है, दोनों को स्वर्ण कर देता है। उसकी आंखों का जादू ऐसा है, उसके हृदय का जादू ऐसा है।
मगर यह संभव तभी होता है जब भीतर का अनाहत सुना गया हो। बेवाहा के मिलन सों, नैन भया खुसहाल। आंखें न केवल मस्त हो जाती है, बल्कि मस्ती देने वाली भी हो जाती हैं। और तभी जानना कि आंखें मस्त हुई, जब मस्ती देने वाली भी हो जाएं।
यह किसी आदल का आंसू है
जो ढल गया अधर पर मेरेः
बचपन से जो उदास थे वे
सोए सपने लगे महकने।
हार गया मैं खोज-खोज कर
कोई नहीं मिला अपने सा,
जाने कहां-कहां भटका हूं गुमसुम आत्ममुग्ध सपने-सा। यह किस पायल का सरगम है
जो भर गया कंठ में मेरेः

वर्षों से जो गीत मौन थे
वह कोकिल से लगे चहकने।
यह किस बादल का आंसू है
जो ढल गया अधर पर मेरे
बचपन से जो उदास थे वे
सोए सपने लगे महकने।
एक बूंद पड़ जाए अनाहत नाद की जीवन रूपांतरित हो जाता है। दुनिया वही होती है लेकिन तुम वही हनीं रह जाते। और जब तुम कही नहीं रह जाते तो दुनिया वही कैसे रह जाएगी? तुम्हारे देखने का ढंग बदला कि दिखाई पड़ने वाली सारी चीजें बदल जाती हैं। दृष्टि बदली तो सृष्टि बदली। आंख बदली तो जहान बदला। यही वृक्ष तुम देखोगे फिर अनाहत के नाद में डुबी हुई आंखों से और चकित हो जाओगे--यह वृक्ष सिर्फ वृक्ष नहीं हैं, यह पृथ्वी की आकाश को छूने की आकांक्षा हैं। यह वृक्ष भी सत्य की खोज में वैसे ही बढ़ रहे हैं आकाश की तरफ, जैसे तुम। इनका अपना ढंग है। इन वृक्षों पर भी फूल वैसे ही खिल रहे हैं, जैसे तुम्हारे भीतर प्रार्थनाएं उमग रही हैं। फूल इनकी प्रार्थनाएं हैं।
और यह पक्षी जो सुबह-सुबह गीत गा रहे हैं, यह भी उसके ही स्वागत का गान
चल रहा है। यह सब उसी के महोत्सव का हिस्सा है। यह सारा जगत तल्लीन है उसी की प्रार्थना में, उसी की पूजा यह जो पहाड़ झुके हैं, यह उसी की नमाज में झुके हैं। और यह जो सागर तड़प रहे हैं, यह उसी की अभीप्सा में तड़प रहे हैं। एक बार तुम्हें अपने भीतर के स्वर का बोध हो जाए, तुम्हें सारा जगत उसी के नाद से भरा हुआ मालूम पड़ेगा। हर वीणा पर तुम उसकी धुन सुनोगे। हर बांसुरी में तुम उसी का गीत सुनोगे। हर बांसुरी बजाने वाला कन्हैया हो जाएगा। और जब तक ऐसा न हो जाए, तब तक समझना--चूकते रहे, चूकते रहे, खोते रहे, खोते रहे।
दिल है किधर खिंचा हुआ, महब है किसकी याद में?
क्या कहें इसकी वजह हम, तर्क हुई नमाज क्यों?
छोटी-मोटी नमाजे फिर छूट जाती है। जब बड़ी नमाज घटती है, जब उसकी याद घटती है, तो फिर कौन फिकर करता है कि मंदिर गए, गुरुद्वारा गए, चर्च गए, कहां गए--कौन फिकर करता है? गए या नहीं गए, यह भी कौन फिकर करता है?
एक सूफी फकीर जिंदगी भर मस्जिद जाकर पांचों बार नमाज पढ़ता रहा। कभी नहीं चूका। गांव नहीं छोड़ा उसने कभी कि कहीं दूसरे गांव जाऊं और मस्जिद न हो। सत्तर साल! गांव आदी ही हो गया था उसको मस्जिद में देखने का। बीमार हो तो भी जाता था। एक बार तो इतना बीमार था कि लोग उसे उठा कर ले गए--चल भी नहीं सकता था। लेकिन एक दिन सुबह वह मस्जिद नहीं पहुंचा; तो निष्कर्ष स्वाभाविक था कि गांव के लोगों ने समझा कि बूढ़ा रात मर गया। और तो बात हो ही नहीं सकती, जिंदा होता तो तो आता ही। मर ही गया होगा! तो सारे उसके झोपड़े पर गए। और वह क्या कर रहा था, मालूम है? मरा नहीं था। सच तो यह है, इतनी जिंदगी कभी किसी ने उसमें देखी नहीं, इतना जिंदा था! अपनी खंजड़ी बजा रहा था--वृक्ष के नीचे बैठ कर--सूरज ऊग रहा था, पक्षी गीत गा रहे थे, वह अपनी खंजड़ी बजा रहा था। जैसे पक्षियों के गीत को ताल दे रहा हो। और ऐसा मस्त था और ऐसा डोल रहा था और आनंद के आंसू बह रहे थे। गांव के लोगों ने कहा कि अब मरते वक्त काफिर हो गए! यह क्या कुफ्र? आज मस्जिद क्यों नहीं आए, नमाज क्यों चूकी? उसने कहा, जब तक नमाज नहीं आती थी तब तक मस्जिद आता था, अब नमाज आ गई। अब अपने से क्या फायदा? जब पीठ सीख लिया तो अब पाठशाला क्यों जाऊं? तुमसे सच कहता हूं, उस बूढ़े फकीर ने कहा, कि आज नमाज पैदा हुई है! आज प्रार्थना पैदा हुई है! अब कहां जाना, कहां आना? अब जहां हूं वहीं मस्जिद है।
दिल है किधर खिंचा हुआ, महब है किसकी याद में?
क्या कहें इसकी वजह हम, तर्क हुई नमाज क्यों?
नमाज क्यों छूट गई इसकी वजह हम कैसे कहें? कौन समझेगा? इसीलिए छूट गई
कि नमाज पूरी हो गई। ध्यान जब पूर्ण होता है तो छूट जाता है। ध्यान की पूर्णता ही समाधि है। जब ध्यान की जरूरत नहीं रह जाती, तब समाधि है। प्रेम

जब पूर्ण होता है, तो मौन हो जाता है। कहने योग्य कुछ बचता नहीं। और जो है, अकथ्य है, अव्याख्य है।
बेवाहा के मिलन सौं, नैन भया सुखाहाल।
दिल मन मस्त मतवल हुआ, गूंगा गहिर रसाल।।
दरिया कहते हैं, दिल ही मस्त नहीं हुआ, मन भी मस्त हुआ। मन जरा मुश्किल
से मस्त होता है! मस्त होना मन की आदत नहीं। लेकिन मन को भी मस्त होना पड़ता है जब दिल मस्त हो जाता है। मन यानी मस्तिष्क। दिल यानी हृदय। हृदय के लिए तो मस्त होना सरल है। मस्तिष्क के लिए मस्त होना कठिन है। क्योंकि मस्तिष्क है गणित, तर्क, विचार, हिसाब-किताब की दुनिया। हृदय तो मस्त हो जाता है बड़ी आसानी से। लेकिन दरिया ठीक कहते हैं, जब तक हृदय के साथ-साथ मन भी मस्त न हो जाए तब तक समझना कि मस्ती अभी अधूरी है, खंडित है। आधा-आधा हुआ। एक हिस्सा अभी अछूता रह गया, भींगा नहीं। यह वर्षा पूरी नहीं हुई। भींगना तो पूरा होना चाहिए। और ऐसा होता है। अगर हृदय पूरा डूब जाए मस्ती में, तो हृदय की मस्ती बह-बहकर मन को भी मस्त कर देती है। यह अपूर्व क्रांति है, जब मन भी मस्त हो जाता है। जब मन भी मस्ती के गीत गाता है। जब मन का गणित और तर्क भी मस्ती की सेवा में संलग्न हो जाता है। दिल मन मस्त मतवल हुआ... मतवाला हो गया। समग्रता तुम्हारी एक मतवालापन गई।... गूंगा गहिर रसाल। और ऐसा स्वाद पाया, ऐसी शराब पी कि अब हाल गूंगे की हो गई है। कह नहीं सकते क्या पिया? कह नहीं सकते क्या चखा? कह नहीं सकते क्या हुआ? गूंगा गहिर रसाल। रस तो बहुत हुआ है, अगर बड़ी गहनता हो गई है गूंगेपन की, बोलते नहीं बनता।
प्राण, हमारी मधुर रागिनी जब-तब गमनागम में;
गाओ प्रिय, फूले न समाओ यहां अगाध-अगम में।
आज कहीं से ज्योति आ बसी इन पलकों के भीतर;
समझ गई सब भेद पुतलियां अपने में, प्रियतम में।
फूटी कनकाभा, तो उड़कर डाली पर आ बैठे;
पड़े-पड़े अब सिहरो भोले, आज निविड़तम तम में।
वन-वन फूल चुनोगे तुम, तो कांटे किसे चुभेंगे?
जान-जान यों मेरे मोहन, खोए से विभ्रम में,
जोड़-जोड़ खर के तिनके मैं बैठा सुख दुख गाने,
प्रथम-प्रथम ही चंचु खुली थी, पहुंच गई पंचम में।
एक क्षण में हो जाती है ऐसी घटना कि बूंद सागर हो जाती है। प्रथम-प्रथम ही चंचु खुली थी, पहुंच गई पंचम में।
प्राण, हमारी मधुर रागिनी जब-तब गमनागम में;
गाओ प्रिय, फूले न समाओ यहां अगाध-अगम में।
आज कहीं से ज्योति आ बसी इन पलकों के भीतर,
समझ गई सब भेद पुतलियां अपने में, प्रियतम में।
ऐसी वर्षा होती अमृत की कि कहो तो कैसा कहो? बताओ तो कैसे बताओ? जिन्होंने जाना है, उन्होंने दूसरों के हाथ पकड़े और कहा, चलो हमारे साथ, तुम भी जान लोग तुम भी पी लो, और कोई उपाय नहीं है। इस संबंध का नाम ही शिष्यत्व है। जिसने जाना है, वह तुम्हारा हाथ पकड़ ले और ले चले तुम्हें उस दिशा में जो अवक्तव्य है, अनिर्वचनीय है। इसीलिए श्रद्धा के बिना शिष्यत्व नहीं घट सकता।
श्रद्धा का अर्थ समझते हो?
किसी ने जाना है, और जिसने जाना है वह बता भी नहीं सकता कि क्या जाना
है, कह भी नहीं सकता कि क्या जाना है, प्रमाणित भी नहीं कर सकता कि क्या जाना है। ऐसे आदमी का हाथ पकड़ लेना मस्तों को ही काम हो सकता है, दीवानों का काम हो सकता है। और ऐसे आदमी के साथ ज्ञात को छोड़ कर अज्ञात की यात्रा पर निकलना, जाने-माने तट को छोड़ना और उसकी नौका में बैठना और पता नहीं दूसरा किनारा हो या न हो, साहसी का, दुस्साहसी का ही काम हो सकता है! धर्म कायरों की बात नहीं है।
और अक्सर उलटा हो रहा है। मंदिरों में, मस्जिदों में तुम कायरों को इकट्ठा देखोगे। धर्म तो साहसियों की, दुस्साहसियों की बात है। धर्म भय से

पैदा नहीं होता। और तुम्हारा तथाकथित भगवान तो सिर्फ भय का ही निर्माण है। असली भगवान भय से पैदा नहीं होता; असली भगवान तो अभय की यात्रा का अनुभव है।
श्रद्धालु से बड़ा इस जगत में कोई निर्भय व्यक्ति नहीं है। क्योंकि चल पड़ता है। अनजाने मार्गों पर, किसी पर भरोसा करके। और ऐसे व्यक्ति पर भरोसा करना है जो बिल्कुल गूंगा है। जो सैनी-सैनी तो करता है, मगर कुछ बोलता नहीं। इसके पीछे जाने की हिम्मत केवल उनमें हो सकती है जो इसकी आंखों में झांकें, जो इसके पास आएं, जो इसके आसपास की तरंगों से आंदोलित होना सीखे। इसकी तरंगें ही समझा सकती हैं। इसका अस्तित्व ही तुम्हारे भीतर पुकार दे सकता है।
चांदनी अब की नई ही, है नई ही माधुरी!
राग के दीपक जले रे, प्रेम की जगमग पुरी!
आज के यह दिन सनम घर-घर पपीहा बोलता!
दूर मधु-मुरली बजी, वन-वन वियोगी डोलता!
यह अजब संध्या हुई, शंका हुई कि प्रभात है!
अब गजब की रात है कि दिया जले तो प्रात है! गुल बनूं, बुलबुल बनूं, कोयल बनूं कि चकोर रे? यह घटा नहीं भोर रे अलि, नाचता मन-मोर रे!
यह निशा, ऐसा नशा, अपनी दिशा मीरा चले।
रंग लाई है हिना, कुछ मन चले, कुछ दिल जले! रंग ही कुछ और है वह जब फकीरा व्यस्त हो!
जग उदय या मस्त हो, धुन में कबीरा मस्त हो! माघ में फागुन लगे, रिमझिम सनम, बरसात हो! चांदनी इस पर लगी, पतझाड़ में फल-पात हो!
यह अनूठी चांदनी जो कर दे, जो कर न ले!
है छलकती गागरी, जो भर दे, जो भर न ले!
रंग क्या, अलि, राह में कब से खिले ये फूल है!
ढंग क्या, कहना किसी के पांव की ये धूल हैं!
धूल भी कुछ और ही ये, रत्न का अभिमान है!
है अभी देखा न जलवा, योगिनी नादान है!
शिष्य तो नादान है। उसे तो कुछ पता नहीं। और गुरु की वाणी अटपटी है। उलट-बांसुरी है। क्योंकि वह जो कहना चाहता है, किसी और लोक की बात है, इस लोक की भाषा में बंधती नहीं, अटती नहीं। वह किसी ऐसे लोक की बात है कि उसे इस लोक तक खींच-खींचकर लाओ, मर जाता है।
जैसे तुम हवाओं को पेटियों में बंद नहीं कर सकते। और न सूरज की किरण
को झोलियों में बंद रख सकते हो। ऐसे ही बात है। आकाश को मुट्ठी में बंद नहीं कर सकते हो, ऐसी ही बात है। और जब घटना घटती है, तो एक तरफ तो आदमी बिल्कुल गूंगा हो जाता है और एक तरफा बड़ी गुनगुन पैदा होती है। मगर गुनगुन भी बेबूझ होती है। गुल बनूं, बुलबुल बनूं, कोयल बनूं कि चकोर रे? ... समझ में नहीं आता कि क्या करूं? फूल बन कर प्रकट कर दूं, बुलबुल बन कर गा दूं, कोयल बनूं--कू-कू करके शायद खबर पहुंच जो--कि चकोर बनूं?
गुल बनूं, बुलबुल बनूं, कोयल बनूं कि चकोर रे?
यह घटा की भोर रे अलि, नाचता मन-मोर रे!
यह निशा, ऐसा नशा, अपनी दिशा मीरा चले!
रंग लाई है हिना, कुछ मन चले, कुछ दिल जले!
अदभुत घटा है। मीरा नाचे? नाचकर कहे? गाकर कहे? और मीरा नाची भी खूब
और मीरा गाई भी खूब, फिर भी जो अनकहा था, अनकहा है।
कहते है दरिया, दरिया कहै सब्द निरबाना... मगर कहां कह पाते हैं! बस गूंगे के इशारे।
रंग ही कुछ और है वह जब फकीरा व्यस्त हो!
जग उदय या मस्त हो, धुन में कबीरा मस्त हो!
माघ में फागुन लगे, रिमझिम समन, बरसात हो!
चांदनी इस पर लगी, पतझाड़ में फल-पात हो!

सब ऐसा उलटा हो जाता है। इस जगत के नियम उस जगत के विपरीत हैं। उस जगत
के नियम, उस जगत का गणित, उस जगत का तर्क इस जगत के विपरीत है। इसलिए अनुवाद नहीं हो सकता, भाषांतर नहीं हो सकता। हिंदू से अंग्रेजी करना आसान, अंग्रेजी से जापानी करना आसान, जापानी से रूसी करना आसान--अनुवाद हो सकते हैं, यद्यपि इनमें भी बड़ी कठिनाइयां होती हैं। लेकिन, उस मस्त के लोक की अनुभूति को इस दीन और दरिद्र मनुष्य के मनोविज्ञान में अनुवाद करना बहुत कठिन। उस प्रकाश के लोक को अंधों की भाषा मग अनुवादित करना बहुत कठिन। कठिन ही नहीं, असंभव।
आज के यह ये दिन सनम, घर-घर पपीहा बोलता!
दूर मधु-मुरली बजी, वन-वन वियोगी डोलता!
यह अजब संध्या हुई, शंका हुई कि प्रभात है!
अब गजब की रात है कि दिया जले तो प्रात है!
मगर जब घटती है, तो हालांकि गूंगा हो जाता है जिसे घटती है, मगर उसके गूंगेपन में भी बड़ी मुखरता है। वह नाचता है, गाता है, पुकारता है, चिल्लाता है। और जिनके पास थोड़ी भी समझ है, जिनके पास रत्ती भर भी बुद्धिमत्ता है, वह जरूर देख लेते हैं कि मिल गया इसे कुछ, कोई हीरा मिल गया है उसे जो कह नहीं पा रहा है।
यह अनूठी चांदनी जो कर न दे, जो कर न ले!
है छलकती गागरी, जो भर न दे, जो भर न ले!
रंग क्या, अलि, राह में कब से खिले ये फूल हैं!
ढंग क्या, कहना, किसी के पांव की ये धूल हैं!
और फिर भी यह जो सारी मस्ती है, यह जो सारा सागर उतर रहा है मधु का मदमाता, यह कुछ भी नहीं है; उस परमप्रिय के चरणों की धूल है। लेकिन उस जगत की धूल भी यहां के हीरे-मोतियों से ज्यादा बहुमूल्य है।
धूल भी कुछ और ही ये, रत्न का अभिमान है!
है अभी देखा न जलवा, योगिनी नादान है!
वह जो शिष्य है, उसने तो अभी देखा नहीं जलवा, जलवे की बातें कैसे समझे? इसलिए श्रद्धा। इसलिए भरोसा। जिस पर श्रद्धा आ जाए, उसके पीछे गल जाना। भटकना हो तो कोई फिकर नहीं, और भूल-चूक भी हो जाए तो घबड़ाना मत, बिना भूल-चूक के कोई सत्य के द्वार तक कभी पहुंचा भी नहीं है। बहुत होशियारी न करना। मेरे पास आकर लोग पूछते हैं, हम सदगुरु की पहचान कैसे करें? मैं उनसे कहता हूं, चलो; जिससे प्रेम लग जाए, उसके पीछे चलो! अगर सदगुरु हुआ तो ठीक है, अगर सदगुरु हुआ, तो सदगुरु को पहचानने के कुछ उपाय हाथ लगेंगे--कि असदगुरु कौन है, यह समझ में आ जाएगा। पहले से यह बैठकर सोचोगे, कौन सदगुरु, कौन असदगुरु, कभी जान न पाओगे। यह बातें जानने की हैं। जिससे प्रेम लग जाए, चल पड़ो। असदगुरु होगा, तो भी धन्यवाद देना कि चलो इतना तो समझ मग आया कि असदगुरु कौन होता है! यह भी काफी है। पचास प्रतिशत काम पूरा हो गया। अब असदगुरु की पहचान हो गई तो सदगुरु की पहचान ज्यादा दूर नहीं है। जिसने अंधेरे को अंधेरे की तरह जान लिया, रोशनी की तरफ कदम उठा गया। और जिसने असत्य को असत्य की तरह पहचान लिया, अब सत्य ज्यादा दूर नहीं है।
भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम, सोइ संत बिबेकी दास।।
यह ऐसी मस्ती की बातें हैं कि बस एक ही बात काम आ सकती हैः श्रद्धा।
भजन भरोसा एक बल। यहां तो एक ही बल है कि नाचते हुए कबीर के साथ नाचना, गाती मीरा के साथ गाना, गुनगुनाते दरिया के साथ गुनगुनाना। भजन भरोसा एक बल, यह भजन तुम्हें पकड़ता रहे, पकड़ता रहे, डूबते जाओ तुम, डूबते जाओ, डूबते जाओ, बस एक दिन यही तुम्हारा बल हो जाएगा, क्योंकि यही तुम्हारा अनुभव हो जाएगा। मीरा के साथ नाचते-नाचते एक दिन तुम भी जान लोगे कि किस बांसुरी की धुन को सुन कर मीरा नाच रही। वह बांसुरी की धुन तुम भी मीरा की तरह नाचोगे तो सुनाई पड़ेगी। कबीर के साथ मस्त होते-होते एक दिन तुम्हें समझ में आ जाएगा कि कबीर को कौन सा स्रोत मिल गया है जिसके कारण ऐसी मस्ती है। और वह स्रोत तुम्हारे भीतर भी है। सिर्फ बोध की बात है।
भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।

उस परम सत्य की खोज में तो श्रद्धा ही एकमात्र आशा है। और जिनके जीवन में श्रद्धा नहीं, उनके जीवन की कुल निष्पत्ति निराशा होगी और कुछ भी नहीं। वे व्यर्थ के ठीकरे जोड़ने में ही जिंदगी को बिता देंगे।
दहर में क्या-क्या हुई हैं इनकलाबाते-अजीम।
आस्मां बदला, जमीं बदली, न बदली खूए-दोस्त।।
इस दुनिया में सब बदलता रहा है, सिर्फ उस परम प्यारे के ढंग नहीं बदते हैं। उस प्यारे दोस्त की आदतें नहीं बदती हैं। वह अभी भी भजन से रीझ जाता है। वह अभी भी नाचने वालों के साथ नाचने लगता है।
दहर में क्या-क्या हुई हैं इनकलाबाते-अजीम...
जमीन पर कितनी क्रांतियां हो गई, कितनी चीजें बदल गई, सब बदल गया; अब न
वे लोग हैं, न वे ढंग हैं, न व्यवस्थाएं हैं; बैलगाड़ियां कहां पहुंच गई, चांद-तारों की यात्रा करने वाले अंतरिक्षयान बन गए; छोटे-मोटे पत्थर के औजार कहां पहुंच गए, एटम और हाइड्रोजन बम बन गए; आदमी ने और बदल डाला है, जिंदगी में अब कुछ भी वैसा नहीं है जैसा बुद्ध के दिनों में था, या महावीर के दिनों में, या कृष्ण के दिनों में, या जरथुस्त्र के दिनों में, या लाओत्सु के दिनों में, अब वैसा कुछ भी नहीं है। लाओत्सु ने लिखा कि मेरे गांव में पास ही नदी बहती थी, नदी के उस पर कोई गांव है, यह हमें मालूम, क्योंकि रात के सन्नाटे में जब उस गांव के कुत्ते भौंकते थे तो हमें सुनाई पड़ते थे। और कभी सांझ जब उस गांव के चूल्हे जलते थे और आकाश में धुआं उठता था तो हमें पता चलता था। मगर हमारे गांव से कोई आदमी नदी पार करके उस गांव को देखने कभी नहीं गया था। एक जमाना यह था।!
अब जमाना यह है कि जमीन छोटी पड़ गई--चौबीस घंटे में चक्कर मार लो! अब जमाना यह है कि आदमी के पैर चांद-तारों पर पहुंच रहे हैं। सब बदल गया।
दहर में क्या-क्या हुए हैं इनकलाबाते-अजीम।
आस्मां बदला, जमीन बदली, न बदली खूए-दोस्त।।
सिर्फ उस परमप्रिय मित्र का स्वभाव नहीं बदला है। तो अभी भी तुम अगर घूंघर बांध लोगे पैर में--पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे--तो तुम उसे अभी भी राजी कर सकते हो। अभी भी तुम कृष्ण की बांसुरी बजाने लगोगे तो बंधा चला आएगा। प्रेम के कच्चे धागे में अभी भी वह बंधा चला आता है।
इस जग के परिवर्तनशील प्रवाह में एक परमात्मा ही अपरिवर्तित है, शाश्वत है, जैसे का तैसा है।
शाद यूं ही अहलेशक शक में पड़े रह जाएंगे।
हम इन्हीं आंखों से इक दिन देख लेंगे रूए-दोस्त।।
और जो संदेह में पड़े, वे संदेह में ही पड़े रह जाएंगे। शाद यूं ही अहले-
शक शक में पड़े रह जाएंगे... वे जो बड़े बुद्धिमान बने बैठे हैं और बड़े संदेह में घिरे बैठे हैं और बड़े प्रश्न-चिह्न जिन्होंने अपनी आत्मा में लगा रखे हैं, वे समझदारी में ही डूब जाएंगे। उनकी मौत किनारों पर ही हो जोगी। वे मझधारों में डूबने के मजे न ले पाएंगे। और ख्याल रखना, किनारे पर जो मरता है, बुरी तरह मरता है, कुत्ते की मौत मरता है। मझधारों में जो डूबता है, वह मरता ही नहीं, वह अमृत को उपलब्ध होता है।
शाद यूं ही अहले-शक शक में पड़े रह जाएंगे।
हम इन्हीं आंखों से इक दिन देख लेंगे रूए-दोस्त।।
लेकिन जिनके पास श्रद्धा की आंखें हैं, वे एक दिन उस परमात्मा को जरूर देख लेते हैं। यह शाश्वत नियम है। श्रद्धा उसे देखने का द्वार है।
श्रद्धा को आंजो आंखों में, श्रद्धा का काजल बनाओ।
भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम पर, सोइ संत बिबेकी दास।।
दरिया कहते हैं, मैं तो उसी को विवेकवान कहता हूं, उसकी को बुद्धिमान कहता हूं, जिसके समझ में यह बात गई। प्रीति। प्रतीति इस नाम पर, जिसका प्रेम उस एक के लिए है--एक ओंकार सतनाम--और जिसकी प्रतीति बस उस एक को ही खोज रही है, जिसकी अनुभूति, उसको ही मैं कहता हूंः सोइ संत बिबेकी दास। वही संत है, वही विवेक को उपलब्ध है।
ऐ शाद! और कुछ न मिला जब बराए-नज्र।

शरमिंदगी को ले के चले बारगाह में।।
हमारे पास है भी क्या जो हम परमात्मा को भेंट करने ले जाएं?
ऐ शाद! और कुछ न मिला जब बराए-नज्र...
ईश्वर को भेंट करने के लिए जब कुछ और न मिला... है क्या? हमारे तर्क थोथे, हमारे गणित व्यर्थ के, हमारा ऊहापोह सिर्फ उलझनें बढ़ाता है। कोई चीज सुलझती नहीं।
ऐ शाद! और कुछ न मिला जब बराए-नज्र।
शरमिंदगी को ले के चले बारगाह में।।
तो फिर उसके मंदिर में, ईश्वर के मंदिर में और क्या ले कर जाएं? अपनी बेबसी, अपनी शर्मिंदगी, अपनी दीनता, अपना ना कुछ होना, अपना खाली पात्र लेकर ही चले। इतनी श्रद्धालु की ही हो सकती है कि खाली पात्र लेकर जाए। नहीं तो लोग ज्ञान लेकर जाते हैं, शास्त्र लेकर जाते हैं। श्रद्धालु खाली पात्र लेकर जाता है। और है भी क्या हमारे पास? आत्मा का खाली पात्र। और जिसने आत्मा का खाली पात्र उसके चरणों में रख दिया, वह भर गया है, भर दिया गया है। और तो सब बदल गया इस दुनिया में--
दहर में क्या-क्या हुए हैं इनकलाबाते-अजीम।
आस्मां बदला, जमी बदली, न बदली खूए-दोस्त।।
--बस उसका स्वभाव नहीं बदला है। जो शून्य होने को राजी है उसकी श्रद्धा में, वह पूर्ण हो जाता है।
हैज खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोय।
और मजा यह है, विडंबना यह है कि जिसे हम खोज रहे हैं, वह बहुत पास है; जिस सुगंध की तलाश में हम चले हैं, वह हमारे भीतर है। कस्तूरी कुंडल बसै। और पागल हो जाता है कस्तूरा, और खोजता फिरता है जंगल में, भागता फिरता है दीवाने की तरह--उस कस्तूरी को जो उसके नाफे में है और जो गंध उसके भीतर से आ रही है।
सौंदर्य तुम्हारे भीतर। सत्य तुम्हारे भीतर। सच्चिदानंद तुम्हारे भीतर। तुम उससे आए हो, तुम उसके अंश हो, वह तुम्हारे भीतर आज भी छिपा है उतना ही। जरा बीज टूटे, जरा अहंकार टूटे। मगर यह अनुभवसिद्ध बात है कि जो चीज जितनी निकट हो, उतनी ही भूल जाती है। दूर की चीजें याद आती हैं।
तुमने मनुष्य का मन समझा?
जो पास होता है, स्मरण नहीं आता। जो दूर चला जाता है, स्मरण आता है। जो तुम्हारे पास है, उसमें तुम्हें कुछ मजा नहीं आता। जो दूसरे के पास है, उसमें तुम्हीं बड़ी वासना जगती है। और ऐसा नहीं है कि तुम्हें मिल जाएगा तो तुम बड़े आनंदित होओगे। दो-चार दिन रहेगा नये-नये मिलने का, बस फिर फीका हो जाता है। सुंदर से सुंदर स्त्री तुम्हारी पत्नी होकर फीकी हो जाती है। सुंदर से सुंदर पुरुष तुम्हारा पति होकर फीका हो जाता है। बड़े से बड़ा भवन मिलते ही व्यर्थ हो जाता है।
है खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोय।
परमात्मा इतने पास है, इसीलिए समझ में नहीं आ रहा है।
इंसान की बदबख्ती अंदाज बाहर है।
कम्बख्त खुदा होकर, बंदा नजर आता है।।
भरम लगे भटकत फिरे, तिरथ बरत सब कोय।।
और एक ही भ्रम है दुनिया में कि हम जिसे खोजने चले हैं, वह हमारे भीतर है। हम सब कस्तूरे हैं। कस्तूरी मृग। सुवास भीतर और चले खोजने बाहर। एक ही भ्रम है जगत में, एक ही माया है कि जो भीतर है, उसे तुम बाहर खोजने चले हो।
जो तुम्हें मिला ही है, उसे खोने चले हो। जो तुम्हें मिला ही है, उसे कितना ही खोजो कैसे खोज पाओगे? खोजे छुटे तो मिलन हो। दौड़ बंद हो तो मिलन हो।
बैठे रहो तो मिल जाए। आंख बंद करो तो पा लो।
जंगम जोगी सेवड़ा, पड़े काल के हाथ।
कह दरिया सोइ बाचि है, सतनाम के साथ।।
और कितनी खोज चल रही है! हठयोगी हैं, शरीर को जला रहे हैं, तपा रहे हैं।
कांटों पर सोए हैं, सिर के बल खड़े हैं। कोई हैं कि खड़े ही हैं वर्षों से।
किसी ने कसम खा ली है आंख बंद न करेंगे। उन्होंने आंख की पलकें उखाड़ डाली

हैं। किसी ने मुंह में भाले छेद लिए हैं। क्या-क्या मूढ़ताएं लोग कर रहे हैं? इसके तुम योग कहते हो। इससे अहंकार और भरता है, सघन है, दूरी और बड़ी हो जाती है।
जंगम जोगी सेवड़ा...
सेवड़ा कहते हैं जैन-मुनि को। बड़े व्रत-उपवास। बड़ा शरीर को सताना- गलाना। दरिया कहते हैं, जंगम जोगी सेवड़ा, पड़े काल के हाथ, यह सब मृत्यु के साथ में पड़ जाएंगे। इनका किया हुआ कुछ काम में आने वाला नहीं है। क्योंकि हर की हुई बात अहंकार को ही मजबूत करती है। मैं करने वाला! मैं मजबूत होता है। मैं कर्ता। मैंने इतने उपवास किए। तुम्हें पता है, जैन-मुनियों की हर साल डायरी प्रकाशित होती है, उन्होंने कितने उपवास किए, किसने कितने किए? हिसाब! उपवास का भी हिसाब रख रहे हो! दुकानदारी जाती ही नहीं। यह सज्जन पहले दुकान पर खाता-बाही रखते रहे होंगे, अब मुनि हो गए हैं, अब भी खाता- बाही रखते हैं। अगर कभी परमात्मा से इनका मिलना हो जाएगा तो खाता-बही खोल कर बैठ जाएंगे कि देखो, इतना किया, इतना किया, इतना किया, इसका लाभ चाहिए-- ब्याज सहित लाभ चाहिए! यह कोई ढंग हैं परमात्मा से जुड़ने का?
यह प्रेम का रास्ता नहीं है, प्रेम खाते-बही नहीं रखता। और प्रेम अपने कृत्य पर भरोसा ही नहीं करता। प्रेम तो समर्पण जानता है। प्रेम तो कहता हैः तू जो करेगा, वह होगा; मेरे किए क्या होता है? और अगर कभी मैंने कभी उपवास किया, तो तूने करवाया था। और ध्यान रखना, प्रेम का इतना साहस है कि प्रेम कहता हैः पुण्य भी तेरे और पाप भी तेरे! तूने जो करवाया, वह किया। तेरे अतिरिक्त कोई और नहीं। मैं हूं ही नहीं। बुरा करवाना हो, बुरा करवा ले, भला करवाना हो, भला करवा ले। तू मालिक है। लेकिन लोग लगे हैं अपने-अपने कृत्यों में। ढंग-ढंग के करतब! ढंग-ढंग के यत्न! बड़ी-बड़ी साधनाएं! और परिणाम? वही छोटा अहंकार।
खुदा बुरा करे इस नींद का यह कैसी नींद?
खुली कब आंख कि, जब कारवां रवाना हुआ।।
मरते वक्त इनकी नींद खुलेगी। मगर तब देर बहुत हो चुकी होगी। जब मौत इनकी गर्दन दबोचेगी तब इनको पता चलेगा कि गए, सब उपवास, सब व्रत, सब नियम, सब योग-ध्यान-तप, सब गया! उस क्षण तो समर्पण काम आएगा; समर्पण तो जिंदगी में कभी साधा नहीं।
खुदा बुरा करे इस नींद का यह कैसी नींद?
खुली कब आंख कि, जब कारवां रवाना हुआ।।
जागो! कारवां रवाना हो, इसके पहले जागो! मौत द्वार खटखटाए, इसके पहले तैयार हो जाओ। अमृत का थोड़ा स्वाद ले लो, बस वही तैयारी है।
न पूछ हाल मेरा चोबे-खुश्के-सहरा हूं।
लगा के आग मुझे कारवां रवाना हुआ।।
नहीं तो तुम्हारी हालत वैसी ही होगी जैसे कारवां कहीं ठहरता है रास्ते में जंगल में, तो जंगल की लकड़ियां बीनकर यात्रीदल के लोग आग जला लेते, रोटी पका लेते, फिर चल देते हैं। लेकिन वहीं पड़ रह जाती हैं, राख के ढेर वही पड़े रह जाते हैं। कहीं ऐसा ही न हो कि तुम्हारी बस जंगल में जलाई गई लकड़ियों की तरह ही पड़ी रह जाए और कारवां रवाना हो जाए।
न पूछ हाल मेरा चोबे-खुश्के-सहरा हूं...
जली-जलाई जंगल की लकड़ी हूं।
न पूछा हाल मेरा चोबे-खुश्के-सहरा हूं।
लगा के आग मुझे कारवां रवाना हुआ।
यह जिंदगी का कारवां तो बढ़ता जाएगा, यह दूसरे जंगलों में ठहरेगा, दूसरे मकानों में वास करेगा, दूसरी देहों में प्रवेश करेगा, दूसरे गर्भों में जन्म लेगा और तुम्हारी यह लाश यही पड़ी रह जाएगी। और इस शरीर से तुमने जो किया था, वह भी यही पड़ा रह जाएगा--शरीर का किया हुआ शरीर के साथ ही पड़ा रह जाएगा। तुम सिर के बल खड़े रहे थे, तुमने शीर्षासन किया था, माना, लेकिन शीर्षासन करने वाले का शरीर भी यही पड़ा रह जाएगा। जो सुंदर-मुलायम बिस्तरों पर सोता था उसका शरीर भी यही पड़ा रह जाएगा और जो कांटों पर सोता था उसका शरीर भी यही पड़ा रह जाएगा। शरीर ही पड़ा रह जाएगा तो शरीर के द्वारा

किए गए कृत्य भी सब व्यर्थ गए! कुछ ऐसा करो जो आत्मा में हो। कुछ ऐसा करो जो चैतन्य को प्रज्वलित करे। क्योंकि देह तो पड़ी रह जाएगी, देह के कृत्य पड़े रह जाएंगे, चेतना का पक्षी उड़ जाएगा। वह हंस जो तुम्हारे भीतर है, कुछ उसे जगाओ, तो कुछ काम का है! और वह एक ही तरह से जगता है--परमात्मा की प्यास से, प्रार्थना से।
भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम पर, सोइ संत बिबेकी दास।।
जंगम जोगी सेवड़ा, पड़े काल के साथ।।
कह दरिया सोइ बाचिहै, सत्तनाम के साथ।।
क्या तुम व्यर्थ की बातों मग लगे हो! तुम्हारी हालत ऐसी है, जैसे--
हमेशा झाड़ते हैं गर्दे-पैरहन गाफिल!
नहीं समझते कि है जेरे-पैरहन मिट्टी।।
कुछ लोग हैं जो अपने कपड़ों की मिट्टी ही झाड़ने में लगे रहते हैं, धूल झाड़ने में लगे रहते हैं और भूल ही जाते हैं कि कपड़ों के भीतर जो देह है, वह भी मिट्टी है। कुछ, लोग इसी में लगे रहते हैं--पानी छान कर पीओ, कि भोजन ऐसा पकाओ, कि यह खाओ, कि यह न खाओ कि रात न खाओ, कि दिन खाओ, कि मांगकर खाओ। यह सब कपड़ों की धूल झाड़ रहे हो। और यह बाहर-बाहर के कृत्यों में लगे हो।
और बड़े मजे की चीजें खोज ली हैं!
जैन-मुनि खड़े होकर भोजन करता है, बैठ कर नहीं। क्या पागल हो गए हो! दिगंबर जैन-मुनि खड़े होकर भोजन लेता है। खड़े होकर भोजन लो कि बैठ कर--और मैं ऐसे सज्जनों को भी जानता हूं जो झूले पर लेट कर भोजन लेते हैं--कोई फर्क नहीं पड़ता! भोजन ही लोगे, भोजन ही है। कैसे लिया--खड़े थे, बैठे थे, लेटे थे--कुछ फर्क नहीं पड़ता।
झेन फकीरों में यह मजाक बहुत चलती है।
एक झेन फकीर मरने के करीब था, आंख खोली, उसने अपने शिष्यों से पूछा कि भाई, मैं तुमसे एक बात पूछता हूं, मरने की घड़ी करीब आ गई। तुमने कभी ऐसा सुना है कि कोई आदमी बैठे-बैठे मरा हो? शिष्यों ने कहा, बैठे-बैठे! देखा तो नहीं, मगर हमने सुना है कि कुछ फकीर बैठे-बैठे पह्मासन में मरे। तो उसने कहा, फिर जाने दो, वह बात जंचेगी नहीं कुछ। तुमने ऐसा सुना है, कोई आदमी खड़े-खड़े मरा हो? उन्होंने कहा, यह जरा दुर्गम बात हैं, कठिन बात हैः मगर सुना है हमने कि कभी-कभी ऐसे फकीर भी हुए हैं कि खड़े-खड़े मरे हैं। उसने कहा, यह भी जाने दो। तुमसे मैं यह पूछता हूं, तुमने ऐसा जाना, कभी सुना कि कोई शीर्षासन करता हुआ मरा हो? शिष्य भी भौंचक्के रह गए! सुना नहीं, सोचा भी नहीं था कभी, कोई शीर्षासन करते मरे! उन्होंने कहा कि नहीं, न तो सुना है, न कभी सोचा--कल्पना भी नहीं की। तो उसने कहा, फिर यही ठीक रहेगा। अरे, जब मरना ही है तो ढंग से मरना।
वह सिर के बल खड़ा हो गया। अब वह मर गया कि जिंदा है, यह शिष्यों को समझ में न आए। सिर के बल खड़ा आदमी। उनका ख्याल था, मर जाएगा तो गिर जाएगा; मगर वह खड़ा ही है। और से भी देखा, सांस भी कुछ चलती सी मालूम नहीं होती। मगर मुर्दा, और थोड़े डरे भी, तो कोई भूत-प्रेम तो नहीं हो गया, मामला क्या है? मर जाए आदमी और शीर्षासन में खड़ा रहे!
तो उन्होंने पास में ही उसकी ही एक बहिन थी, वह भी एक साध्वी थी, पास के
ही आश्रम में उसको खबर भेजी, उसकी बड़ी बहिन थी। वह बड़ी बहिन आई और उसने कहा--बदतमीज, जिंदगी भर भी उलटे-सीधे काम करता रहा और मरकर भी तुझे चैन नहीं? रस्ते पर आओ! उसकी बात सुन कर ही वह फकीर उतरा और उसने कहा कि यह मेरी बहिन को कौन यहां बुला लाया? यह मुझे चैन से मरने भी न देगी। तेरा क्या विचार है? कैसे मरूं? उसने कहा, सीधे लेट जाओ बिस्तर पर। मरने के ढंग से मरो! वह लेट गया और मर गया।
यह तो मजाक है झेन फकीरों का। यह वह मजाक कर रहे हैं उन सब पर जो इस तरह
की थोथी बातों में लगे हैं। यह सब हो सकता है। खड़े होकर मर जाओ, बैठ कर मर जाओ, और शीर्षासन करके मर जाओ। मगर मरना तो मरना है। बात तो कुछ ऐसी सीखो कि मरो ही न। देह मर जाए और तुम अमृत की यात्रा पर निकल जाओ।
हमेशा झाड़ते हैं गर्दे-पैरहन गाफिल

... नासमझ, बेहोश लोग बस कपड़ों की धूल झाड़ते रहते हैं और उन्हें बस बात
का ख्याल भी नहीं आता...
नहीं समझते कि है जेरे-पैरहन मिट्टी
कि कपड़ों के भीतर भी तो मिट्टी ही है।
और इस बाहर के खेल में लगे-लगे तुम कुछ कर लो, कुछ वस्तुतः होगा नहीं। करने की भ्रांति रहेगी, क्रांति नहीं होगी।
चार दीवारे-अनासिर को गिराई भी तो क्या?
वही धोका है, वही है पर्दा बाकी।।
मिट्टी की दीवारों को गिरा दोगे, ईंट की दीवालों को गिरा भी दोगे तो क्या फर्क पड़ता है?
चार दीवारे-अनासिर को गिराया भी तो क्या?
वही धोखा है, वही है अभी पर्दा बाकी।।
इस शरीर को सताओ, जलाओ, परेशान करो, कांटों में लिटाओ, कोड़े मारो, आंखें फोड़ लो, कान कटवा लो, कान फड़वा लो, जो-जो करना होकर लो, कुछ भी न होगा। यह तुम मिट्ठी के साथ खेल में लगे हो। वही धोका है, वही है अभी पर्दा बाकी। अहंकार नहीं मिटेगा, अहंकार का धोखा नहीं मिटेगा, अहंकार का पर्दा नहीं मिटेगा। वह तो मिटता है केवल एक तरह से--
कह दरिया सोइ बाचिहै,
... वही बचेगा, दरिया कहते हैं...
सत्तनाम के साथ। जो परमात्मा के साथ अपने को जोड़ ले, जो उसकी नाव में सवार हो जाए। जो यह कह दे कि मैं कर्ता नहीं हूं, कर्ता तू है, मैं केवल साक्षी हूं, बस उसका नाम जुड़ गया सतनाम से। उसका हाथ परमात्मा के हाथ में पड़ गया।
एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

बांसुरी से बिछुड़ जो गया स्वर उसे
भर लिया कंठ में शून्य आकाश ने,
डाल विधवा हुई जो कि पतझार में
मांग उसकी भरी मुग्ध मधुमास ने, हो गया कूल नाराज जिस नाव से
पा गई प्यार वह एक मझधार का,
बुझ गया जो दिया भोर में दीन-सा बन गया रात सम्राट अंधियार का, जो सुबह रंक था, शाम राजा हुआ
जो लुटा आज कल फिर बसा भी वही,
एक मैं ही जिसके चरण से धरा
रोज तिल-तिल धसकती रही उम्र भर! एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!

प्यार इतना किया जिंदगी में कि जड़-- मौन तक मरघटों का मुखर कर दिया, रूप-सौंदर्य इतना लुटाया कि हर भिक्षु के हाथ पर चंद्रमा धर दिया, भक्ति अनुरक्ति ऐसी मिली, सृष्टि की-- शक्ल हर एक मेरी तरह हो गई,
जिस जगह आंख मूंदी निशा आ गई
जिस जगह आंख खोली सुबह हो गई,
किंतु इस राग-अनुराग की राह पर
वह न जाने रतन कौन सा खो गया
खोजती सी जिसे दूर मुझसे स्वयं आयु मेरी खिसकती रही उम्र भर!

एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के! सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

भेष भाए न जाने तुझे कौन सा इसलिए रोज कपड़े बदलता रहा,
किस जगह कब कहा हाथ तू थाम ले इसलिए रोज गिरता-सम्हलता रहा, कौन सी माह ले तान तेरा हृदय इसलिए गीत गाया सभी राग का,
छेड़ दी रागिनी आंसुओं की कभी शंख फूंका कभी क्रांति का, आग का, किस तरह खेल क्या खेलता तू मिले खेल खेले इसी से सभी विश्व के कब न जाने करे याद तू इसलिए
याद कोई कसकती रही उम्र भर!
एक तेरे बिना प्राण आ प्राण के! सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!

रोज ही रात आई गई, रोज ही
आंख झपकी, मगर नींद आई नहीं,
रोज ही हर सुबह, रोज ही हर कली खिल गई तो मगर मुस्कराई नहीं, नित्य ही रास ब्रज में रचा चांद ने पर न बाजी मुरलियां कभी श्याम की, हर तरह उर-अयोध्या बसाई गई
याद भूली न लेकिन किसी राम की
हर जगह जिंदगी में लगी कुछ कमी हर हंसी आंसुओं में नहाई मिली,
हर समय, हर घड़ी, भूमि से स्वर्ग तक आग कोई दहकती रही उम्र भर
एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के! सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!! खोजता ही फिरा पर अभी तक मुझे मिल सका कुछ न तेरा ठिकाना कही, ज्ञान से बात की तो कहा बुद्धि ने सत्य है वह मगर आजमाना नहीं, धर्म के पास पहुंचा पता यह चला मंदिरों मस्जिदों में अभी बंद है, जोगियों ने जताया कि आप-जोग है, भोगियों से सुना भोग-आनंद है, किंतु पूछा गया नाम जब प्रेम से
धूल से वह लिपट फूट कर रो पड़ा,
बस तभी से व्यथा देख संसार की,
आंख मेरी छलकती रही उम्र भर!
एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!
प्राणों के प्राण से जब तक जोड़ न हो जाए तब तक बस सांस व्यर्थ ही चल रही है। तब तक हमारी सांस ऐसी ही है जैसे लुहार की धौंकनी। चल तो रही है, मगर निष्प्रयोजन। चल तो रही है, मगर व्यर्थ।
एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के!
सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर!!

और हम ऐसे ही जी रहे हैं। जीने-मात्र का हमारा जीना है। जीना हमारा वास्तविक जीना नहीं; उथला-उथला है, थोथा-थोथा है। इसमें तो श्याम की मुरलियां बजे, इसमें तो राम की अयोध्या बसे--तो कुछ हो!
ठीक कहते हैं दरिया--
जंगम जोगी सेवड़ा पड़े काल के हाथ।
कह दरिया सोइ बाचिहै, सत्तनाम के साथ।।
वही बचेगा जिसने परमात्मा को अपना हाथ दे दिया और जिसने परमात्मा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई तारनहार नहीं। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई खिवैया नहीं। मगर कहां परमात्मा को खोजें? उसके हाथ दिखाई पड़ते। उसकी नाव का कुछ पता नहीं चलता। मंदिर-मस्जिद खाल पड़े हैं। पंडित-पुरोहित थोथी बकवास कर रहे हैं, शास्त्रों के उद्वाहरण दे रहे हैं--तोते हो गए हैं। कहां उसे खोजें?
दरिया कहते हैं--
बारिधि अगम अथाह जल...
गहन सागर है, विस्तीर्ण सागर है, बारिधि अगर अथाह जल, थाह न मिले ऐसा
जल है...
बोहित बिनु किमि पार। और ठीक-ठीक नाव न मिले, जहाज न मिले, तो कैसे पार होंगे?
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त है मझधार।।
जब तक खेने वाला गुरु न मिल जाए तब तक मझधार में कहीं न कहीं डूबना पड़ेगा--डूब ही रहे हैं। परमात्मा के हाथ तो दिखाई नहीं पड़ते लेकिन किसी सदगुरु के हाथ दिखाई पड़ सकते हैं। अज्ञानी मनुष्य और परमात्मा के बीच एक पड़ाव है सदगुरु का। सदगुरु ऐसा है कि उसका एक पैर पृथ्वी पर और एक आकाश पर। सदगुरु ऐसा है। कि एक हाथ तुम्हारे हाथ में और एक परमात्मा के हाथ में। सदगुरु सेतु बन जाता है। परमात्मा को जो खोजने चलेंगे वे नास्तिक हो जाएंगे। क्योंकि न मिलेगा, कहीं, न प्रमाण पाया जाएगा कहीं। जो परमात्मा को खोजने चलेंगे बिना गुरु के, नास्तिकता उनकी नियति है।
पश्चिम नास्तिक हो गया, कारण यही है कि सदगुरु का सेतु पश्चिम में कभी बना नहीं। पूरब अब भी थोड़ा टिमटिमाता-टिमटिमाता आस्तिक है। बुझ जाएगा कब यह दिया, कहा नहीं जा सकता, हवाएं तेज हैं, आंधियां उठी हैं। चीन डूब गया नास्तिकता में, भारत के द्वार पर नास्तिकता आंधियों और बवंडरों की तरह उठ रही है। यह देश भी कभी नास्तिक हो जाएगा। अधिक लोग तो नास्तिक हो ही गए हैं--सिर्फ उनको पता नहीं है। अधिक लोग तो नास्तिक हैं ही--धर्म उनकी औपचारिकता मात्र है। मगर फिर भी एक दिया थोड़ा-थोड़ा टिमटिमा रहा है। यह भी कब बुझ जाएगा, कहा नहीं जा सकता। इसको तेल चाहिए, इसको बाती चाहिए। और यह दिया भी इसलिए टिमटिमा रहा है कि तुम चाहे मानो और तुम चाहे न मानो, कभी कोई कबीर आ जाता, कभी कोई नानक आ जाता, कभी कोई दरिया जा आता, कभी कोई मीरा आ जाती--इसलिए यह दिया थोड़ा टिमटिमा रहा है। तुम मानो, तुम न मानो, तुम गुरुओं का हाथ गहो, न गहो, लेकिन यह देश सौभाग्यशाली है, यहां सदगुरु की किरणें उतरती ही रही हैं। जो थोड़े साहसी हैं, उन किरणों का हाथ पकड़ लेते हैं और चल निकलते हैं महासूर्य की तलाश पर।
परमात्मा को सीधा नहीं पाया जा सकता। सीधा देखने के लिए आंख कहां? अदृश्य को देखने वाली आंख कहां? परमात्मा ऐसा होना चाहिए जो थोड़ा दृश्य भी हो, थोड़ा अदृश्य भी हो। सदगुरु में यह असंभव घटना घटती है। सदगुरु थोड़ा दृश्य है तुम्हारी तरफ और थोड़ा अदृश्य है। सदगुरु के साथ जुड़ो, तो जुड़ोगे पहले दृश्य से। सुनोगे उसके शब्द, प्यारे लगेंगे, जुड़ोगे। फिर जल्दी ही धीरे-धीरे शब्दों के बहाने निःशब्द को तुम्हें देगा। शब्द के बहाने निःशब्द उतार देगा। पहले तो दृश्य को देख कर जुड़ोगे, मगर जुड़ गए अगर तो अदृश्य से ज्यादा देर टूटे न रहोगे। पहले तो उसके संगीत से जुड़ोगे, फिर जल्दी ही उसके शून्य से जुड़ जाओगे। पहले तो उसकी देह के प्रेम में पड़ोगे, फिर जल्दी ही उसकी आत्मा भी तुम्हें आच्छादित कर लेगी।
बारिधि अगम अथाह जल, बोहित बिनु किमि पार।

बहुत अथाह सागर है, अगम सागर है--बिना जहाज परा न हो सकोगे। नानक नाम जहाज। कोई नानक जैसा व्यक्ति मिल जाए तो जहाज बने।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त है मंजधार।।
खोज लो, खोज लो, डूब मत जाना--बहुत बार डूबे हो, इस बार डूबना मत। बहुत बार बिन चेते आए और गए, इस बार चेतो। अजहूं चेत गंवार!
चेत सकते हो। क्षमता है। अपनी क्षमता को जरा संगठित करो।
यह प्रेम की अटपटी गली है, थोड़े डगमगाओगे भी, मगर डगमगा-डगमगा के ही तो कोई चलना सीखता है! छोटा बच्चा जब पहली दफा खड़ा होता है तो कोई एकदम से ओलंपिक में नहीं चला जाता कि दौड़ ओलम्पिक की दौड़ सम्मिलित हो जाए। कोई बड़ा धावक नहीं हो जाता एकदम से। एक कदम चलता है कि गिरता है, घुटने तोड़ लेता है, बार-बार गिरता है। मगर जितना गिरता है उतना चुनौती स्वीकार करता है--और उठता है और चलता है।
ऐसे ही तुम बहुत बार गिरोगे, बहुत बार सम्हलोगे; बहुत बार टूटोगे, बहुत बार बिखरोगे; बहुत बार अपने को संगृहीत करना होगा। लेकिन अगर चलते ही रहे, गिरने से डरे न, भूल-चूकों से भागे न, तो तुम भी चल पाओगे। यह प्रेम की डगर बड़ी अटपटी है; मगर जो प्रेम की डगर पर चलता है, वह पहुंच जाता है। और प्रेम की डगर के अतिरक्ति और कोई डगर नहीं है।
एक चोट सी लग अंतर में, जग नवीन आशंका सी;
उठ आंधी सी, फैल घटा सी, सुलग स्वर्ण की लंका सी।
आ शंका सी, छिप खंजर सी, बोल मौत सी दीवानी;
बुझा सकेगा कहां प्यास अब बंद बोतलों का पानी?
घायल मर्म, सताया प्राणी, कांटे कोई चीज नहीं;
ममता का अंकुर फूटे, अब हिय में ऐसा बीत नहीं। स्वप्न भंग, सुख का मुंह काला, मेंहदी के बदले छाले; इस अवसर पर दिल क्या चाहे, बादल ये काले-काले। नहीं दुपहरी, नहीं चांदनी, आज कत्ल की रात घनी; छेड़ न श्यामा, बुला न मोहन, प्रीति उलट आघात बनी।
कितनी मंजिल, कितनी गालियां, लेकिन अपनी राह अलग; दुनिया बड़ी दूध की धोई, दर्दे-दिल की आह अलग।
प्रेम की राह अलग, प्रेम की आह अलग। प्रेम को गहो!
भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम पर, सोइ संत बिबेकी दास।।
जंगम जोगी सेवड़ा पड़े काल के हाथ।
कह दरिया सोइ बाचि है, सत्तनाम के साथ।।
बारिधि अगम अथाह जल, बोहित बिनु किमि पार।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त है मंजधार।।

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
चौथा प्रवचन

मौन लहरें
(Note: Osho remained silent for 2 days- 24-25th January 1979)

आज भगवान मौन में बोले
... आज शब्दों के मालिक ने निःशब्द का खजाना लुटाया।
भगवान हमारे बीच शरीर नहीं आए।
... सहसा भगवान की तीव्र उपस्थिति ने हमें हर ओर से घेरना व डुबाना शुरू कर दिया।
उनकी वह उपस्थिति एक सागर,
एक दरिया बनती गई, जिसमें लहरें ही लहरें,
लहरें ही लहरें, अनंत लहरें,
... लहरें पर लहरें...
हम डूबते गए... खोते गए... मिटते गए...

दरिया कहै सब्द निरबाना
पांचवां प्रवचन
मौन लहरें

दरिया कहै सब्द निरबाना
छठवां प्रवचन

आज जी भर देख लो तुम चांद को

पहला प्रश्नः भगवान, आपके प्रेम में बंध संन्यास ले लिया है। और अब भय लगता है कि पता नहीं क्या होगा? भगवान ढाढ़स बंधाए!

प्रेम बंधन नहीं है। और जो प्रेम बंधन है, वह प्रेम नहीं। प्रेम स्वतंत्रता की घोषणा है। प्रेम कारागृह नहीं है, खुला आकाश है।
मेरे प्रेम को समझोगे तो संन्यास बंधन नहीं मालूम होगा। हां, तुमने
अब तक जितने प्रेम जाने हैं वे सभी बंधन थे। उन्होंने तुम्हें बांधा, उन्होंने पंगु किया; उन्होंने तुम्हें दीवालें दीं, जंजीरें दी; उन्होंने तुम्हें मिटाया। इसलिए स्वभावतः तुम्हारे मन में प्रेम और बंधन के बीच एक अनिवार्य संबंध जुड़ गया है। लोग अपने बेटे-बेटियां के विवाह के निमंत्रण भेजते हैं तो उनमें भी लिखते हैं कि मेरा बेटा प्रेम के बंधन में बंध रहा है। प्रेम और बंधन! तो फिर मुक्ति क्या होगी? प्रेम और बंधन! तो फिर स्वतंत्रता कहां पाओगे?
जड़-मूल से इस बात को काट डालो। जहां बंधन हो, जानना कुछ और होगा, प्रेम नहीं है। जहां मुक्ति हो, जहां मुक्ति का स्वाद आए, वही जानना कि प्रेम है। तुमने शायद संन्यास बंधने के लिए लिया हो। यह तुम्हारी तरफ की बात हुई। तुम्हारी तरफ की बात के लिए मैं जिम्मेवार नहीं। मेरी तरफ से तुम्हें संन्यास दिया गया है ताकि तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो जाओ; ताकि तुम पर कोई बंधन न रह जाएं; ताकि तुम पहली बार अपने होने की घोषणा करो; ताकि तुम पहली बार कह सको कि अब मैं वही होऊंगा जो होने को परमात्मा ने मुझे बनाया है। नहीं मानूंगा कोई शर्त, नहीं झुकूंगा किन्हीं समझौतों में, चाहे फिर जो हों परिणाम। और शायद उन परिणामों की भनक तुम्हें पड़ने लगी है। इसलिए भय भी लगता है।
और तुमने पूछा कि और अब भय लगता है कि पता नहीं क्या होगा? प्रेम भय नहीं जानता। प्रेम और भय के बीच वैसा ही संबंध है जैसे प्रकाश और अंधकार के बीच। चूंकि तुम प्रेम को नहीं समझे हो, इसलिए भय भी आएगा। प्रेम के क्षण में तो मृत्यु भी विलीन हो जाती है। भय कैसा? भयभीत तो केवल भीतर आत्मा ही नहीं। और जहां प्रेम की वीणा बजी वहां तो भय अपने आप निष्कासित हो जाता है।
नहीं, लेकिन शायद तुमने संन्यास भी भय के कारण ही लिया होगा। तुम्हारे संन्यास लेने में कहीं कोई बुनियाद चूक है। अतः ऐसा भय के दो नाम। सदियों-सदियों से धर्म के नाम पर तुम्हें प्रेम नहीं, भय सिखाया गया है। भय के दो नाम है--एक नरक, एक स्वर्ग। स्वर्ग भी भय है--लोभ की भाषा में छिपा। और नरक तो भय है ही--सीधा-स्पष्ट, नग्न। लोग नरक से डर कर पाप नहीं कर रहे हैं। और कही स्वर्ग न खो जाए, इस बात से डर कर पुण्य कर रहे हैं। स्वर्ग का लोभ पुण्य करा रहा है, नरक का भय पाप से बचा रहा है। यह भी कोई बचना हुआ? यह कोई पाप हुआ? पुण्य हुआ? यह तुम्हारी जीवन-दृष्टि सदियों-सदियों में ढाली गई है। लेकिन जिन्होंने ढाली है, वे प्रबुद्धपुरुष नहीं थे। पंडित थे, पुरोहित थे, व्यवसायी थे। और धर्म के व्यवसाय का मौलिक आधार है--भय पैदा करो, लोभ पैदा करो। क्योंकि मनुष्यों का शोषण करना हो तो भय और लोभ के आधार पर ही हो सकता है।
मैं तुमसे कहता हूं, न कोई नरक है, न कोई स्वर्ग है। नरक हो तो तुम, स्वर्ग हो तो तुम। नरक और स्वर्ग कोई भौगोलिक स्थितियां नहीं हैं, तुम्हारा मनोविज्ञान। ऐसे जीने का ढंग है कि प्रतिपल, प्रति श्वास स्वर्ग हो जाए। और ऐसे जीने का भी ढंग है कि प्रतिपल, प्रति श्वास नरक हो जाए। भय से जिओगे तो नरक में जीओगे। तुमसे कहा गया है, जो भय करेगा, नरक पड़ेगा। मैं तुमसे कहता हूं, जो भय कर रहा है, वह नरक है! तुमसे कहा गया है, जो पुण्य करेगा, स्वर्ग जाएगा। जाएगा! भविष्य की अपेक्षाएं, आश्वासन! नहीं, तुमसे मैं कहता हूं, जो प्रेम करता है, वह स्वर्ग में है! यह भविष्य का कोई

आश्वासन नहीं है। फूल अभी खिलेंगे भविष्य में गंध उड़ेगी? आग अभी जलेगी, भविष्य में तापोगे? कांटे अभी गड़ेंगे, पीड़ा भविष्य में भोगोगे? यह भविष्य की धारणाएं तुम्हारे झूठों को छिपाने के उपाय हैं। कांटा गड़ता अभी तो पीड़ा अभी होती। और फूल गंध लाता तो नासापुट अभी गंध से भर जाते, आह्लादित होते। जीवन नगद है, उधार नहीं। और तुम्हें अब तक उधार बातें सिखाई गई है। और उधार बातों का केवल ही मतलब है, ताकि कल पर टाला जा सके। और कल आता नहीं। कल पर टाला जा सके और आज तुम्हारा शोषण किया जा सके। पुरस्कार इत्यादि सब कल पर, शोषण अभी।
इस तरकीब को समझने की कोशिश करो।
तुमने उन्हीं पुरानी बंधी धारणाओं के अनुसार संन्यास ले लिया होगा--
कि मोक्ष मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा। मिलेगा, ऐसी भाषा ही मेरे साथ मत चलाना! संन्यास स्वर्ग है! तुमने सोचा होगा, संन्यास लेकर नरक से बच जाएंगे, नरक नहीं जाना पड़ेगा, पाप के दंश नहीं भोगने पड़ेंगे, कड़ाहों में नहीं जलना पड़ेगा। छोड़ो वे सब मूढ़ताएं, बच्चों की कहानियां हैं। छोटे बच्चों के डराने के उपाय। इससे ज्यादा उनका कोई मूल्य नहीं है। बचकानेपन से ऊपर उठो, प्रौढ़ बनो!
अब तम भयभीत हो रहे हो कि पता नहीं क्या होगा? यह भय भी इसीलिए आ रहा होगा कि मेरा संन्यास किन्हीं बंधी धारणाओं का संन्यास तो नहीं है। अगर हिंदू संन्यासी होते, तो सब सुनिश्चित होता। अगर जैन संन्यासी होते, सब सुनिश्चित होता। उन्होंने तो लकीर-लकीर खींच कर रख दी है। बौद्ध-शास्त्रों में तैंतीस हजार नियम हैं संन्यासी को पालन करने के लिए! आदमी मुक्त हो सकता कभी? कभी स्वतंत्रता हो सकती? तैंतीस हजार नियम! याद रखना भी मुश्किल हो जाएगा। और तैंतीस हजार नियम रत्ती-रत्ती बांध लिए हैं--कैसे उठोगे, कैसे बैठोगे, क्या खोजोगे, क्या पीओगे, कहां ठहरोगे, कितनी देर ठहरोगे--कुछ छोड़ा नहीं है।
यह नियम बुद्ध ने बनाया हैं, ऐसा नहीं। बुद्ध और ऐसी दुकानदारी में पड़ेंगे, इसकी संभावना नहीं। लेकिन बुद्ध के पीछे आने वाले पंडित-गणितज्ञों का जाल है, जिनको एकमात्र आकांक्षा है कि सारी मनुष्य-जाति को कैसे जंजीरों में बांध दिया जाएं? उन्होंने यह तैंतीस हजार जंजीरें निर्मित की। इनमें जो बंध गए हैं, उन्हें एक सुरक्षा है--भय नहीं लगेगा। अगर सब नियम पूरे कर रहे हो तो भय कैसा? और यह हो सकता है, नियम सब थोथे हों। नियम सब थोथे होते हैं। क्योंकि जो तुम्हारी आत्मा से नहीं जन्मता, वह थोथा है। जो बाहर से थोपा जाता है, वह थोथा है। जो तुम किसी और की मानकर स्वीकार कर लेते हो, उसका दो कौड़ी मूल्य है। जो तुम्हारा अंतर्भाव होता है, बस वही हीरा है, बाकी सब कंकड़ पत्थर है।
मेरे संन्यासी को यह अड़चन होगी। क्योंकि मैं तुम्हें नियमबद्ध रूपरेखा नहीं देता। मैं तुम्हें लकीर के फकीर नहीं बनाता। सिंह चलें नहिं लेहड़े। कहते हैं, सिंह की भीड़ नहीं होती। लीक छोड़ तीनों चलेंः शायर, सिंह, सपूत। जिनमें थोड़ी प्रतिभा होती है, वे लकीरों पर नहीं चलते, पटी लकड़ियों पर नहीं चलते। वे रेलगाड़ियों के डिब्बे नहीं होते कि बंधी हुई पटरियों पर दौड़ते रहें। वे हिमालय से उतरती हुई गंगा यमुना होते हो, जिनकी कोई लकीर नहीं होती बंधी हुई। वे अपना मार्ग जानते हैं। और मार्ग खोजने का मजा ऐसा है कि सिर्फ तुम्हारे दुश्मन ही तुम्हें लकीरें और नियम दे सकते हैं। तुम्हारे मित्र तुम्हें लकीरें और नियम नहीं दे सकते। तुम्हारे मित्र तो तुम्हें केवल एक बात दे सकते हैं--अभीप्सा, खोज की अभीप्सा, अन्वेषण का आनंद, चैतन्य की मस्ती। और उस चेतना के प्रकाश में फिर चाहे कितना ही धीमा प्रकाश क्यों न हो! एक छोटा सा दिया चार कदमों, तक प्रकाश डालता है, लेकिन एक छोटे से दिए को लेकर तुम जहरों मील अंधेरे में यात्रा कर सकते हो। चोर कदम एक दफा चल लिए, फिर चार कदम आगे रोशनी पड़ने लगी; चार कदम चले लिए, फिर चार कदम आगे रोशनी पड़ने लगी।
मैं तुम्हें ध्यान का दिया देता हूं, मैं तुम्हें नियम का शास्त्र नहीं देता। इसलिए भी भय गलता होगा।

अब तुम चाहते हो, ढाढ़स बंधाऊं। ढाढ़स और मैं! तुम बात ही असंभव कर रहे हो! मैं सांत्वना नहीं देता; मैं तो सांत्वनाएं छीनता हूं। मैं तुम्हें संतोष देने को नहीं हूं, सत्य देने को हूं। और संतोष सत्य को आच्छादित कर लेता है। ढाढ़स बंधाऊं! तो तुम्हारी कमजोरी मिटेगी नहीं। ढाढ़स बंधाना तो ऐसा है जैसे लूले आदमी को बैसाखी दे दी। तो बैसाखी के सहारे चलने लगा। मगर इससे लूलापन नहीं मिटता, लंगड़ापन नहीं मिटता। मैं तुम्हें सांगोपांग देखना चाहता हूं, स्वस्थ दुखना चाहता हूं। तुम्हारे हाथ में तुम बैसाखियां लेकर चल रहे हो, वे भी छीन लूंगा। क्योंकि वे बैसाखियां जब तक तुम्हारे हाथ में रहेंगी, तुम्हें याद ही न आएगा कि तुम चल सकते हो, अपने पैरों पर चल सकते हो। तुम्हें बचपन से ही बैसाखियां पकड़ा दी गई है। अभागा है वह व्यक्ति जो बचपन से ही बैसाखियां के सहारे चल रहा है, क्योंकि उसे अपने पांव का भरोसा नहीं आता। और बैसाखियों से शायद साग-सब्जी खरीद लाओ, बाजार हो आओ, दो-कौड़ी की चीजें कमा लो, लेकिन परमात्मा की यात्रा नहीं हो सकेगी।
और भी रोकर पुकारा था किसी ने,
भावना के हाथ कंगन आज फिर बंधवा लिया है,
और अब की बार क्या होकर रहेगा राम जाने!
और भी रोकर पुकारा था किसी ने,
और भी बांधा गया था मन कभी;
देवता की दृष्टि द्वारा कामना का
और भी तोड़ा गया दर्पण कभी,
स्वप्न का नाता अभय स्वीकार फिर मैंने लिया है, और अब की बार जब क्या-क्या कहेगा राम जाने!
और फिर इस बार पहले की तरह ही
भीड़ आंगन में उमंगो की लगी है,
लग रहा है आज फिर बैठे-बिठाए
जिंदगी जैसे कि सोते से जगी है,
आंख से उस आंख का सत्कार मैंने कर लिया है, और अब की बार जल कितना बहेगा राम जाने!
एक दिन पहले यही पनघट लबालब
प्यास को मेरी सहम कर पी गया था,
नींद जिसका नीर पीकर मर गई थी
गीत उसका नीर पीकर जी गया था,
दुख बिचारे को द्रवित हो आसरा फिर दे दिया है,
और अब की बार मन क्या-क्या सहेगा राम जाने!
स्वाभाविक है, मन में सवाल उठते होंगे--
भावना के हाथ कंगन आज फिर बंधवा लिया है,
और अब की बार क्या होकर रहेगा राम जाने!
संन्यास भावना का कंगन है। संन्यास अनंत के साथ भांवर है। संन्यास सत्य के साथ सात फेरे हैं।
भावना के हाथ कंगन आज फिर बंधवा लिया है,
और अब की बार क्या होकर रहेगा राम जाने!
चिंता तुम्हें पकड़ती होगी। पुरानी आदतों के कारण। अब राम पर ही छोड़ो! जिसके साथ भांवर डाल ली है, अब उस पर ही छोड़ो।
स्वप्न का नाता सभय स्वीकार फिर मैंने लिया है,
और अब की बार जग क्या-क्या कहेगा राम जाने!
समझता हूं, तुम्हारी अड़चन भी समझता हूं। सहृदयता से तुम्हारी अड़चन समझता हूं। लोग न मालूम क्या-क्या कहेंगे? लोग हंसेंगे, लोग पागल कहेंगे, लोग कहेंगे विकृत हो गए। पर परमात्मा के रास्ते पर ऐसा तो लोग सदा ही कहते रहे हैं। इतनी छोटी सी कीमत न चुका सकोगे, इतना छोटा सा समर्पण भी न कर सकोगे, तो फिर अनंत आनंद को मांगने की बात ही छोड़ दो! जीवन में हर चीज के लिए मूल्य चुकाना पड़ता है।
आंख से उस आंख का सत्कार मैंने कर दिया है,

और अब की बार जल कितना बहेगा राम जाने!
बहुत बहेगा। आंखें अब आंसुओं से गीली हो रहेंगी। क्योंकि जब हृदय गीला होता है तो आंखें बच नहीं सकती। रोओगे। मगर यह रुदन आनंद का होगा। यह रुदन दुख का नहीं। आंसू सदा ही दुख के नहीं होते, इसे स्मरण रखो। आंसू का दुख से कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। आंसू तो कभी क्रोध में भी आ जाते हैं, कभी दुख में भी आते हैं, कभी सुख में भी आते हैं, कभी मस्ती में भी आते हैं, कभी सौंदर्य के बोध में भी आते हैं। आंसुओं का कोई अनिवार्य संबंध किसी बात से नहीं है। आंसू तो तब आते हैं जब तुम्हारे हृदय में कोई भी चीज इतनी ज्यादा होती है कि तुम सम्हाल नहीं पाते। प्रेम में आंसू बहते हैं। प्रार्थना में आंसू बहते हैं। जब भी तुम्हारे ऊपर से कुछ बह चलती है बाढ़, तो आंसू आते हैं।
दुख बिचारे को द्रवित हो आसरा फिर दे दिया है,
और अब की बार मन क्या-क्या सहेगा राम जाने!
मन बहुत कुछ सहेगा। लेकिन जो आत्मा के हित में सहते हैं, उनका सहना सार्थक है। मन तो कटेगा, मन तो गिरेगा, मन तो मरेगा, मन की मृत्यु के लिए तैयार हो जाओ। संन्यास उसी का आमंत्रण है। और एक बात ध्यान रखो, जब तक परमात्मा नहीं है तब तक कुछ भी नहीं है। तुम कितने ही रहो, तुम नरक रहोगे। जिस क्षण परमात्मा तुम्हारे भीतर होना शुरू होता है, उसी दिन स्वर्ग का सुप्रभात।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
दीप को रात भर जल सुबह मिल गई
चिर कुमारी ऊषा की किरन-पालकी,
सूर्य ने चल दिवस भर अग्नि-पंथ पर
रात, लट चूमली चांद के गाल की, जिंदगी में सभी को सदा मिल गया प्राण का मीत और सारथी राह का,
एक मैं ही अकेला जिसे आज तक
मिल न पाया सहारा किसी बांह का, बेसहारे हुई अब कि जब जिंदगी
साथ संसार सारा चले--व्यर्थ है!
जब न तम ही मिले राह पर तो मुझे स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है! एक ही कील पर घूमती है धरा,
एक ही डोर से बध बंधा है गगन,
एक ही सांस में जिंदगी कैद है
एक ही तार से बुन गया है कफन,
इस तरफ हर किसी के नयन में यहां
एक ऐसी बसी शक्ल खामोश है,
प्यार संसार भर का मिले क्यों न, पर आदमी को न उसके बिना होश है,
होश ही आज अपना नहीं जब मुझे
फूल बन उर्वशी भी खिले--व्यर्थ है! जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे स्वर्ग भी गर धरा पर मिले व्यर्थ है! नाश के इस नगर में तुम्हीं एक थे खोजता मैं जिसे आ गया था यहां,
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता तन भटकता कहां, मन भटकता कहां,
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक मैं सिसकता रहा शब्द में, गान में, वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शव बना मैं भटकता रहा रोज शमशान में,

पर तुम्हीं अब न मेरी पियो प्यास तो ओंठ पर हिमालय गले--व्यर्थ है!
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है! फूल से भी बहुत दिन किया प्यार पर दर्द दिल का कभी मुस्कराया नहीं चांद से भी बहुत मन लगाया, मगर प्राण को चैन मेरे न आया कहीं, किंतु उस रोज तुमने पुकारा कि जब मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा,
एक जादू न जाने किया कौन सा
आग की गोद में अश्रु मुस्का उठा, पास सारे सितारे जलें--व्यर्थ है! जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे स्वर्ग भी गर धरा पर मिल--व्यर्थ है! खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में मंदिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया, खैर पर यह हुई, उम्र की दौड़ में ख्याल मैंने न कुछ पत्थरों का किया, पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बांह डाली कली ने गले में मचल,
एक तस्वीर तेरी लिए किंतु मैं
साफ दामन बचा कर गया ही निकल,
और फिर भी न यदि तुम मिलो तो कहो
जन्म किस अर्थ है, मृत्यु किस अर्थ है!
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
संन्यास उसकी तलाश है जिसे पाते ही जीवन में अर्थ की वर्षा हो जाती है। अमृत के घट तुम्हारे हृदय में उंड़लने लगते हैं। पर साहस तो चाहिए ही चाहिए। जितनी बड़ी खोज पर निकलोगे उतना बड़ा साहस तो चाहिए ही चाहिए। जितनी बड़ी खोज पर निकलोगे उतना बड़ा साहस चाहिए। पैर कंपेंगे--उनकी आदत नहीं है-- राह अनजानी, अपरिचित--मन भय भीतर होगा--पुरानी धारणाएं जंजीरों की तरह पीछे खींचेंगी, यह सब स्वीकार, मगर इस सब को तोड़ कर भी जाना है। क्योंकि जब तक परमात्मा न मिले, याद रखना--
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है!
इतनी स्मृति जगती रहे, बस पर्याप्त है। और इस स्मृति के लिए जो भी देना पड़े--प्राण भी देना पड़े, तो भी सार्थक है। क्योंकि यूं भी तो प्राण मौत एक दिन छीन लेगी। जो छीन ही जाना है, उसे बचाने का भी क्या सार? उसका उपयोग ही कर लो। उसे प्रभु के चरणों में समर्पण करके अमृत को क्यों न पा लें हम? मृत्यु जिसे छीन ही लेगी। वही प्रभु के चरणों में समर्पित होकर अमृत बन जाता है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, क्या आपकी धारणा के भारत पर कुछ कहने की मेहरबानी करेंगे?

अयूब सैयद,
संपादक, "करंट"
प्रिय अयूब सैयद, मैं राष्ट्रवादी नहीं हूं। भारत, पाकिस्तान, चीन, जापान मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखते हैं। मैं इस पृथ्वी को खंडों में बंटा हुआ नहीं देखता हूं। इस पृथ्वी का दुर्भाग्य यही है कि पृथ्वी खंडों में बंटी है। और जब तक खंडों में बंटी रहेगी, तब तक यह दुर्भाग्य कायम रहेगा। विज्ञान ने पृथ्वी को एक कर दिया है, बस राजनीति बीच से हट जाए तो मनुष्य

का दुर्भाग्य मिट जाए। आज पृथ्वी पर वे सब साधन उपलब्ध हैं, जो मनुष्य को सुखी करें, समृद्ध करें। आज पहली बार पृथ्वी स्वर्ग के देवताओं को ईर्ष्या से भर सकती है।
लेकिन राजनीति को मरना होगा, तो ही विज्ञान जीत सकता है। विज्ञान तो सौभाग्य के द्वार खोलता है, राजनीति उन द्वारों को दुर्भाग्य में बदल देती है। अलबर्ट आइंस्टीन, लार्ड रदरफोर्ड जैसे वैज्ञानिकों ने अणुबम की खोज की। अणुबम पृथ्वी के लिए सौभाग्य सिद्ध हो सकता था, क्योंकि इतनी ऊर्जा हमारे हाथ में आ गई कि हम जो चाहते कर लेते। मगर जो हुआ, उलटा ही हुआ। हिरोशिया और नागासाकी में लाखों लोग राख किए गए। शक्ति खोजता है, राजनीति उस शक्ति का उपयोग करती है। आइंस्टीन तो इससे इतना विक्षुब्ध हुआ था अपने अंतिम दिनों में, कि जब किसी ने उससे पूछा कि अगले जन्म में भी क्या तुम पुनः वैज्ञानिक होना चाहोगे? उसने कहा कि नहीं। प्लंबर हो जाऊंगा, वह बेहतर, लेकिन अब वैज्ञानिक नहीं होना है। क्योंकि हमने जो खोजा, सब व्यर्थ गया। व्यर्थ ही नहीं गया, घातक हुआ, विषाक्त हुआ।
अणु-ऊर्जा की खोज, इस पृथ्वी पर एक भी व्यक्ति को भूखा रहने की अब कोई जरूरत नहीं है। न ही इतने लोगों को इतनी हजारों बीमारियों में सड़ने की जरूरत है। न ही मनुष्य को पुरानी बंधी-बंधाई सत्तर वर्ष ही जीने की कोई आवश्यकता है। वैज्ञानिक कहते हैं, आदमी सरलता से अब दो सौ वर्ष जी सकता है--बिल्कुल सरलता से! और वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि मनुष्य के शरीर में स्वयं पुनरुज्जीवित कर लेने की इतनी क्षमता है कि मृत्यु घटनी ही चाहिए, यह कोई आवश्यक नहीं है। इसे टाला जा सकता है, बहुत टाला जा सकता है। विज्ञान ने तो पृथ्वी को एकदम छोटा कर दिया है। एक छोटा गांव हो गई पृथ्वी। चौबीस घंटे में सारी पृथ्वी का चक्कर लगा ले सकते हो। लेकिन राजनीति भयंकर सिद्ध हो रही है।
तो पहली बात, अयूब सैयद, जो मैं कहना चाहूंगा, वह यह कि अगर भारत चाहता
है कि इसके सौभाग्य का उदय हो, तो भारत को पहला देश होना चाहिए पृथ्वी पर जो अपने को अंतर्राष्ट्रीय घोषित करे। जो कहे कि हम संयुक्त-राष्ट्रसंघ की भूमि बनते हैं। पूरा देश! हम इसको पृथक नहीं रखना चाहते। और भारत अकेला ऐसा देश है जो सबसे पहले यह कदम उठा सकता है, इसकी परंपरा ऐसी है! वसुधैव कुटुम्बकम! सदियों से हमने दोहराया है कि सारी वसुधा हमारा कुटुंब है। अब तक वैज्ञानिक आधार न थे इस बात के, इसलिए यह बात केवल ऋषि-वाणी होकर रह गई। अब इसको यथार्थ में बदला जा सकता है। अब तुम अपने ऋषियों को वास्तविक प्रयोगों में रूपांतरित कर सकते हो। जिन्होंने कहा था वसुधैव कुटुम्बकम्, उनकी आत्माओं को इससे बड़ा अर्ध्य और कुछ भी न होगा कि यह भारत पहला देश हो पृथ्वी पर, यह सम्मान चूके न भारत, और कह दे कि हम अंतर्राष्ट्रीय हैं। हम छोड़ते हैं क्षुद्र सीमाएं। हम छोड़ते हैं क्षुद्र राष्ट्रीय आग्रह। हम अपने को अंतर्राष्ट्रीय घोषित करते हैं।
यह तो मेरी पहली धारणा है भविष्य के बाबत। और ध्यान रखना, कोई न कोई यह करेगा। फिर चूक जाओगे, फिर पछताओगे। यह ऐतिहासिक घड़ी और यह महान अवसर चूकने जैसा नहीं है। कोई न कोई यह करेगा ही, देर-अबेर कोई करेगा। स्विटजरलैंड करेगा... या कोई करेगा! मगर जो करेगा, वह इतिहास का निर्माता होगा। वह एक नया सूत्रपात होगा, एक नई मनुष्यता की आधारशिला रखी जाएगी। लेकिन मैं राष्ट्रवादी नहीं हूं। राष्ट्रवाद जहर है! मनुष्य बहुत तड़प लिया राष्ट्रवाद के कारण। और राष्ट्रवाद के अनुसंग है धर्मवाद, संप्रदायवाद--जाति के, रंग के, वर्ण के। वे सब राजनीति के छोटे-छोटे खेल हैं। यह भी मैं चाहता हूं कि मनुष्य अब अपने को किन्हीं भी सीमाओं में आबद्ध न रखे--न हिंदू, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। मनुष्य होना पर्याप्त है। इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी को बाइबिल से रस मिलता हो तो न ले। लेकिन मनुष्य होकर बाइबिलें से रस लिया जा सकता है, ईसाई होना अपरिहार्य नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी को गीता से मस्ती आती हो तो न ले। पर इसके लिए हिंदू होना कहां जरूरी है? अगर हवाई जहाज में बैठने के लिए हिंदू होना जरूरी नहीं है, ईसाई होना जरूरी नहीं है; अगर चिकित्सक से दवा लेने के लिए हिंदू होना जरूरी नहीं है, ईसाई होना जरूरी हनीं है, तो यह महाचिकित्सक

हैं--कृष्ण, नानक, कबीर, दिया, मोहम्मद, जीसस, बुद्ध--इस महाचिकित्सकों से जीवन के रोग की औषधि लेने के लिए हिंदू, मुसलमान, ईसाई होने की जरूरत कहां है? यह छोटे-छोटे आग्रह अपने ऊपर थोपना अनिवार्य है। सचाई तो यह है कि जितने यह आग्रह मजबूत हो जाते हैं, उतने ही हमारे संबंध उन महाचिकित्सकों से टूट जाते हैं।
सब सीमाएं अतिक्रमण होनी चाहिए। मनुष्य मनुष्य है मात्र, ऐसी घोषणा होनी चाहिए। चंडीदास ने कहा हैः साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं! सबसे ऊपर मनुष्य है, उसके ऊपर कोई और सत्य नहीं है। इस उदघोषणा को दोहराओ, इस उदघोषणा को घर-घर हृदय-हृदय में गुंजाओ--साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं! मनुष्य परम सत्य है, उसके ऊपर कोई सत्य नहीं है। परमात्मा भी मनुष्य के भीतर छिपा हुआ है। परमात्मा मनुष्य के अंतरतम का ही दूसरा नाम है; उसकी अंतरगुहा में विराजमान है। भगवान भक्त से दूर नहीं है। जिस दिन भक्त अपनी भक्ति में परिपूर्ण लीन होता है, उसी क्षण भगवान हो जाता है। छोड़ो सारे छोटे आग्रह! ताकि हम सारी मनुष्यता की वसीयत को अपनी वसीयत
कह सकें। यह कैसी दरिद्रता है कि तुम हिंदू हो, इसलिए कुरान तुम्हारी वसीयत नहीं! और कुरान इतना प्यारा है! तुम नाहक दरिद्र हो, कुरान तुम्हारी संपदा हो सकता है।
थोड़ा सोचो, शेक्सपीयर को पढ़ते वक्त तुमको ईसाई तो नहीं होना पड़ता! और
न कालिदास को पढ़ने के लिए तुम्हें हिंदू होना पड़ता है! और न उमर खय्याम को पढ़ने के लिए तुम्हें मुसलमान होना पड़ता है। तो तुम साहित्य के जगत में शेक्सपीयर हो कि उमर खय्याम हो कि कालिदास हो, सबको अपना मानते हो। धर्म का जगत तो उससे भी बड़ा है। उसमें कुरान, गुरुग्रंथ, बाइबिल, धम्मपद, गीता, सब तुम्हारे अपने होने चाहिए। सच्चा धार्मिक व्यक्ति तो वही है जो सारे जगत के धर्म-अनुभव को अपना कहेगा। तुम सिर्फ राम-कृष्ण के बेटे ही तो नहीं हो, बुद्ध-महावीर का खून भी तुम में बहता है। तुम सिर्फ मोहम्मद और क्राइस्ट से ही तो नहीं जुड़े हो, जरथुस्त्र और लाओत्सु का खून भी तुममें बता है। यह सारी मनुष्य-चेतना एक ही महासागर है। घाटों के नाम अनेक हैं, सागर तो एक है। तुम घाटों से बंध गए हो और सागर को भूल गए हो!
मैं राष्ट्रवाद-विरोधी हूं, धर्मवाद-विरोधी हूं, संप्रदायवाद-विरोधी हूं, पंथवाद विरोधी हूं। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने पूरे अतीत को आत्मसात कर ले। और जो मनुष्य अपने पूरे अतीत को आत्मसात कर लेगा, वह पूरे भविष्य का मालिक हो सकता है--स्मरण रखना। और हमें पूरे भविष्य का मालिक होना है। तो मैं धर्म के संबंध में ही नहीं कहता, धर्म और विज्ञान दोनों के हमें मालिक होना है।
पुराना आदमी अधूरा था। पुराने आदमी में दो ढंग के लोग थे--एक थे भौतिकवादी, एक थे अध्यात्मवादी; दोनों अधूरे थे। भौतिकवादी सोचता था, सिर्फ शरीर हूं--मैं खाओ, पीओ, मौज करो; सड़ो, कांटों पर लेटो, उपवास करो, सिर के बल खड़े रहो; अपने शरीर को गलाओ, क्योंकि आत्मा शरीर की दुश्मन है। यह दोनों बातें मूढ़तापूर्ण हैं। और इन दोनों बातों ने मनुष्य-जाति को विक्षिप्त किया है।
मेरी जो भविष्य के मनुष्य की धारणा है, उसमें मनुष्य न तो भौतिकवादी होगा, न अध्यात्मवादी होगा। मनुष्य समग्रतावादी होगा; वह कहेगा, आत्मा भी मैं हूं, शरीर भी मैं हूं। शरीर मेरा घर है, आत्मा का उसमें वास है।
अपने घर को सजाते हो या नहीं? अपने घर को साफ-सुथरा रखते हो या नहीं?
और जहां आत्मा का बास हो, वह शरीर घर ही नहीं रह जाता, मंदिर हो जाता है। देह का सम्मान तुम्हारे भीतर छिपी आत्मा का ही सम्मान है, प्रकारांतर से। तो देह का सताना नहीं है, मिटाना नहीं है, गलाना नहीं है, देह को सीढ़ी बनाना है।
यह पुराना मनुष्य खंडित था। इस खंडित मनुष्य ने एक दुनिया बनाई थी जिसने बहुत दुख पाया। क्योंकि जिसने सोचा है खाओ, पीओ, मौज करो--बस वह खोने, पीने, मौज करने में समाप्त हो गया, उसने कभी भीतर की संपदाओं की तरफ दृष्टि ही न डाली। माना ही नहीं, तो दृष्टि क्यों डालता? वह बहिर्मुखी होकर जीओ, बहिमुखीं होकर मरा--भीतर दरिद्र का दरिद्र रहा। और भीतर बैठा था सम्राटों

का सम्राट। और जिसने सोचा कि भीतर ही सब कुछ है, वह अंतर्मुखी हो गया, उसने आंख बंद कर ली। उसने भीतर के रस तो पाए, लेकिन बाहर बड़ी दरिद्रता फैल गई, दीनता फैल गई।

यह जो आज भारत दरिद्र है, इसमें तुम्हारे अध्यात्मवादियों का हाथ है। इसे तुम्हारा मन माने या न माने, तुम्हारे अहंकार को चोप लगे या न लगे, मुझे चिंता नहीं है! तुम्हारा जो भारत दरिद्र है आज, भूखा मर रहा है--आधे लोग भूखे हैं भारत में, कोई ठीक स्वस्थ नहीं मालूम होता--उसके पीछे कारण तुम्हारे अध्यात्मवादियों का है। उन्होंने कहा, बाहर कुछ है ही नहीं, बस आंख बंद करो और बैठ जाओ गुफाओं में।
पश्चिम बाहर तो समृद्ध हो गया, लेकिन भीतर दरिद्र है। पूरब भीतर तो समृद्ध हुआ, बाहर दरिद्र हो गया। यह तो बड़ा अधूरा-अधूरा हुआ। यह तो ऐसा हुआ कि पक्षी का एक पंख कांट दिया और कहा--उड़ो! फिर पंख बायां काटा कि दायां काटा, इससे क्या फर्क पड़ता है, पक्षी उड़ नहीं सकता। यह किसी आदमी का एक पैर काट दिया और कहा--दौड़ो! फिर तुमने बायां काटा कि दायां काटा, क्या फर्क पड़ता है।
पूरब की मनुष्यता भी एक पंखवाली, पश्चिम की मनुष्यता भी एक पंखवाली है। मैं चाहता हूं मनुष्य जिसके दोनों पंख हों। मेरे भविष्य की धारणा में एक ऐसा मनुष्य है जो देह में भी आनंदित होगा और आत्मा में भी आनंदित होगा; जो न तो अंतर्मुखी होगा, न बहिर्मुखी होगा; जो कुशल होगा भीतर जाने में, बाहर आने में; जिसकी कुशलता अंतर्मुखता और बहिर्मुखता के बीच सेतु बनने की होगी।
जैसे तुम अपने घर के बाहर जाते हो। सुबह हो गई, धूप निकली, प्यारे पक्षी गीत गाने लगे, तुम बाहर आ गए। इसमें कुछ बड़ी अड़चन करनी पड़ती है बाहर आने में? कुछ बड़ा योग-साधन करना पड़ता है? कुछ शीर्षासन वगैरह करना पड़ता है पहले? तुम चुपचाप बाहर आ जाते! फिर धूप घनी हो गई, शरीर तपने लगा, तुम भीतर चले आते हो छाया की तलाश में। जैसे तुम धूप होती है ज्यादा तो भीतर आ जाते, शीत होती है ज्यादा तो बाहर आ जाते, ऐसा ही मनुष्य होना चाहिए कुशल--बाहर और भीतर जाने में। भीतर भी अपना, बाहर भी अपना है, सारा, सब कुछ अपना है। इसमें कुछ भी त्याज्य नहीं है।
मैं तुम्हें ऐसी कुशलता देना चाहता हूं, कि तुम बाहर और भीतर आ सको सहजता से। इतनी सहजता से जैसे श्वास बाहर आती है, भीतर जाती है। पूरब ने तय किया कि हम भीतर ही श्वास को रोक कर रखेंगे--मर गए! पश्चिम ने तय किया कि हम बाहर ही श्वास को रोक कर रखेंगे--मर गए! दोनों प्रयोग असफल हो गए हैं। मनुष्य-जाति का पूरा इतिहास अब तक का असफलता का इतिहास है। एक नया मनुष्य मैं चाहता हूं। वह भारत में भी पैदा हो, भारत के बाहर भी पैदा हो, क्योंकि भारत भर से कोई उसका संबंध नहीं है। पृथ्वी के कोने-कोने में एक नये मनुष्य का आविर्भाव होना चाहिए। वह मनुष्य श्वास लेने वाला मनुष्य होगा-- बाहर भी लेगा, भीतर भी लेगा।
और एक मजे की बात ख्याल रखना, जितनी गहरी श्वास तुम बाहर लोगे, उतनी ही गहरी श्वास भीतर जाएगी। और जितनी गहरी भीतर लोगे, उतनी ही गहरी बाहर जाएगी। दोनों में एक संतुलन होता है। और तब तक तुम्हें सिखाया गया है कि श्वास लेने से डरो, जीने से डरो; जीना पाप है, जीना दंड है। तुम जी रहे हो इसलिए कि तुम्हें पाप के लिए भेजा गया है दंड देकर इस पृथ्वी पर।
यह भ्रांत धारणाएं टूटनी चाहिए और इन भ्रांत धारणाओं के कारण ही विज्ञान और धर्म में विरोध हो गया है। जैसे ही यह धारणा टूट गई और हमने मनुष्य को उसकी समग्रता में स्वीकार किया--बाहर भी सुंदर, भीतर भी सुंदर-- वैसे ही विज्ञान और धर्म करीब आ जाएंगे। और इस पृथ्वी पर सबसे बड़ी सौभाग्य की घड़ी होगी जब विज्ञान और धर्म एक साथ होंगे, हाथ में हाथ लेकर नाचेंगे! उस दिन धन भी खूब होगा और ध्यान भी खूब होगा! उस दिन शरीर भी स्वस्थ होगा और आत्मा भी मस्त होगी।
यह मेरी धारणा है सारे मनुष्य के लिए--स्वभावतः भारत भी उसमें सम्मिलित है।

पुराना मनुष्य या तो परलोकवादी था या इहलोकवादी था। या तो नास्तिक था
या आस्तिक। और अब भी कोई मनुष्य इस तरह के भेद कर लेता है--आस्तिक-नास्तिक, इहलोक-परलोक--खंडों में टूट जाता है। खंडों में टूटा हुआ आदमी विक्षिप्त हो जाता है। यह लेकर भी हमारा है, परलोक भी हमारा है। और परलोक इस लोक से भिन्न नहीं, इस लोक का विस्तार है और नास्तिकता-आस्तिकता शत्रु नहीं हैं। नास्तिकता आस्तिक होने की सीढ़ी है। समझ लेना इस बात को ठीक से, क्योंकि तुम्हें इतनी बार यह बात उलटे ढंग से समझाई गई है कि जड़ भूत हो गई है कि-- नास्तिकता और आस्तिकता की सीढ़ी! लेकिन मैं फिर दोहराता हूंः नास्तिकता आस्तिकता की सीढ़ी है। जिस आदमी को नहीं कहना नहीं आया, उस आदमी को हां कहना कभी आता ही नहीं। जो आदमी नहीं कहने में नपुंसक है, उसका हां भी नपुंसक होता है। जो आदमी कह सकता है, नहीं, अगर वह कभी हां कहे, तो तुम उसकी हां का भरोसा कर सकते हो। और जो आदमी हमेशा कहता है, जी हजूर, हां हजूर, उसकी बात का कोई भरोसा मत करना। उसके हां में कोई बल नहीं है। उसका हां बिल्कुल निर्बल है। उसका हां बिल्कुल निस्तेज है। इसलिए तुम्हारे आस्तिक बिल्कुल निस्तेज मालूम होते हैं।
आस्तिकों से पृथ्वी भरी है--कोई मंदिर जा रहा है, कोई गुरुद्वार जा रहा है, कोई मस्जिद जा रहा है, कोई चर्च जा रहा है तुम्हारी पृथ्वी आस्तिकों से भरी है--लेकिन तुम्हारी इतनी आस्तिकों की भीड़ और आस्तिकता की गंध तो कहीं दिखाई पड़ती नहीं! बात क्या है? कहां चूक हुई जाती है? चूक इसलिए हो रही है कि तुम्हारे आस्तिक थोथे हैं। उनको जबरदस्ती आस्तिक बना दिया गया। आस्तिकता उनका अपना निज का चुनाव नहीं है, उनका अपना संकल्प नहीं है
बचपन से बच्चों पर थोप दी आस्तिकता, कि झुको परमात्मा के सामने, कि ईश्वर है; कि नहीं झुकोगे तो नरक में सड़ोगे, कि झुकोगे तो स्वर्ग में पुरस्कार पाओगे। डरा दिया, घबड़ा दिया, भयभीत कर दिया। छोटे-छोटे असहाय बच्चे! असहाय बच्चों के साथ जितना अनाचार पृथ्वी पर हुआ है, उतना किसी और के साथ नहीं हुआ। किसी और के साथ करोगे तो वह थोड़ा संघर्ष भी करेगा, असहाय बच्चे क्या संघर्ष करें! तुम पर निर्भर हैं, तुम जो कहोगे उसमें हां भर देते हैं। तुम रात को रात कहो तो ठीक, दिन कहो तो ठीक। बच्चा इतना असहाय है, इतना निर्भर है--रोटी पर, रोजी पर, कपड़े पर, लत्ते पर, हर चीज पर--कि तुम उससे जो चाहो, कहेगा। हिंदू-घर में पैदा होता है तो हिंदू हो जाता है बेचारा, मुसलमान-घर में पैदा होता है तो मुसलमान हो जाता है। मुसलमान-घर में पैदा हुए बच्चे को हिंदू-घर में बड़ा करो, हिंदू हो जाएगा। उसे याद ही नहीं आएगी कि कभी मुसलमान था। यह मुसलमान, यह हिंदुत्व, सब थोपे हुए हैं। मैं चाहता हूं कि यह थोपना बंद हो। बच्चों को मुक्त छोड़ा जाए। हां, जरूर उन्हें खोज की अभीप्सा दी जाए, उनसे कहा जाए, जीवन में खोजना। जीवन जितना ऊपर दिखाई पड़ता है, उतना ही नहीं है, भीतर बहुत छिपा है, खोजना। हमने भी खोजते हैं, तुम भी खोजना। खोजने की अभीप्सा तो दो, लेकिन क्या मिलेगा खोजने पर, इसके सिद्धांत मत दो। तो स्वभावतः प्रत्येक बच्चा नकार से चलेगा। नकार तलवार पर धार रखने का उपाय है। पहले तो नहीं कहेगा, क्योंकि जो बात उसकी समझ में नहीं आएगी, उसमें हां नहीं भरेगा। तुम कहोगे ईश्वर है; वह कहेगा, नहीं, कहां है, दिखाओ!
प्रत्येक व्यक्ति, अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि है तो पहले नास्तिक होगा। और नास्तिकता की तलाश ही धीरे-धीरे उसे उस जगह ले आएगी... ऐसी चीजों का अनुभव उसके जीवन में शुरू हो जाएगा जिनमें इनकार करना मुश्किल है। किसी दिन प्रेम में पड़ेगा, प्रेम को जानेगा और पाएगा कि नहीं, शब्दों में, सिद्धांतों में आता है, उतने पर जीवन समाप्त नहीं है, कुछ और भी है। किसी दिन गुलाब के फूल को खिला देखेगा और पाएगा कि सुंदर है। लेकिन सौंदर्य को सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि सौंदर्य कोई, पदार्थ नहीं है। किसी दिन तारों-भरी रात देखेगा और चकित, विस्मय-विमुग्ध रह जाएगा। एक क्षण को सन्नाटा छा जाएगा। यह तारों-भरी रात का सौंदर्य, यह शांति, यह शालीनता, यह महिमा... उसके जीवन में पहली दफे हां की पहली सरसराहट होगी। ऐसे धीरे-धीरे नकार करते करते, करते-करते एक दिन वह हां के मंदिर पर पहुंच जाएगा--

अनिवार्यरूप से पहुंच जाएगा। और तब हां में एक मजा है। तब आस्तिकता में एक विस्फोट है।
मैं पृथ्वी को आस्तिक देखना चाहता हूं, लेकिन नास्तिक के विपरीत नहीं। मैं ऐसे आस्तिक चाहता हूं, जो नास्तिकता को पीकर आस्तिक हैं। मैं ऐसे आस्तिक चाहता हूं, जिन्होंने नास्तिकता की सीढ़ी बना ली और आस्तिक हैं। मैं आस्तिक चाहता हूं, जो नहीं सुनने से डरते नहीं और कानों में अंगुलियां नहीं डाल लेते। मैं ऐसे आस्तिक चाहता हूं जिन्होंने नहीं का उपयोग कर लिया है और नहीं की ही धार से हां की तलाश कर ली हैं।
यह जो परलोकवादी आस्तिक थे, वे अनिवार्यरूपेण इस जीवन के विरोध में थे। भारत में हमने उनको खूब मौका दिया! उन्होंने हमारा सारा जीवन नष्ट कर दिया! हर चीज गलत है। भोजन गलत है, कपड़े पहनने लगता हैं, अच्छे मकान बनाने लगता हैं, आराम की जिंदगी गलत है--हर चीज गलत है! उन्होंने हमको रुग्ण कर दिया। हमारा पूरा का पूरा मनसशास्त्र रुग्णता की एक लंबी कहानी हो गई! उन्होंने दो उपद्रव किए। एक उपद्रव तो यह किया कि यह जीवन गलत है; यह संसार पाप है, माया है। इसके परिणाम दो हुए। एक तो यह परिणाम हुआ कि जिन्होंने उनकी नहीं सुनी और किसी तरह इस संसार में जीते रहे, उनके भीतर अपराध-भाव पैदा हो गया कि हम जो भी कर रहे हैं, गलत कर रहे हैं। अगर एक स्त्री से प्रेम किया, तो पाप! अगर दो पैसे कमाए, तो पाप! अगर एक अच्छा मकान बना लिया, तो पाप! अगर अच्छे कपड़े पहने, तो पाप! उनके भीतर एक अपराध-भाव पैदा हो गया। और उनके अपराध-भाव के कारण वे जो भी कर लेंगे उसको भोग न पाएंगे, क्योंकि अपराध-भाव भीतर भरा है। डर रहे हैं, कंप रहे हैं कि अब नरक में सड़ना पड़ेगा-- स्त्री के प्रेम में पड़ गए!
और दूसरे वे लोग, जिन्होंने इनकी बात मान ली, वे पाखंडी हो गए। क्योंकि जीवन इतनी प्राकृतिक है कि तुम कहो कि झूठ और लाख कहो कि सपना, फिर-भी खींचता है, आकर्षित करता है। खींचेगा ही, क्योंकि इसके भीतर छिपा हुआ परमात्मा का आकर्षण है। तुम्हारे महात्मा लाख चिल्लाते रहें!
तो दो तरह के लोग पैदा किए। एक तो पाखंडी, जो ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ। और दूसरी तरह के लोग पैदा किए, अपराध-भाव से भरे हुए, जो बेचारे सदा एक छाती पर पत्थर लिए चल रहे हैं। हमने मनुष्यता को बुरी तरह मार डाला।
मेरे भविष्य की धारणा में ऐसा मनुष्य होगा जो न अपराध-भाव से भरेगा, न पाखंडी होगा; जो जीवन को उसकी समग्रता में, परिपूर्णता में जीएगा और अपने जीवन को परमात्मा के चरणों में समर्पित करेगा; जो प्रेम भी करेगा, जो नाचेगा भी, जो गीत भी गाएगा; जो इस जीवन के आनंद को भी उठाएगा। और इस सारे आनंद के कारण परमात्मा के प्रति अनुगृहीत होगा कि धन्यभागी हूं कि तूने ऐसा अपूर्व अवसर दिया--मुझ अभागे को, मुझ नाकुछ को! ऐसे सुंदर वृक्ष, इनकी हरियाली, इनके फूल! ऐसे चांद-तारे, ऐसे सूरज, ऐसे लोग, ऐसा अदभुत जगत तूने मुझे दिया जिसकी मेरी कोई पात्रता नहीं है, तो मैं अनुगृहीत हूं! वह इस जगत के आनंद को भोगेगा और आनंद का भोग ही उसकी प्रार्थना बनेगी। मैं एक ऐसे मनुष्य को देखना चाहता हूं--भारत में भी, भारत के बाहर भी।
पुराना मनुष्य जो था, नीतिवादी था, धार्मिक नहीं था। धर्म और नीति में बड़ा भेद है। नीति हमेशा दूसरे जो तुम पर थोपते हैं उसके अनुसार चलने का नाम है। धर्म, तुम्हारी चेतना तुम्हें जो इशारे देती है उनके अनुसार चलने का नाम है। और जरूरी नहीं है कि धर्म और नीति हमेशा सहमत हों--अक्सर तो सहमत नहीं होते। जैसे बुद्ध के समय में नीति तो यह थी कि यज्ञ में पशुओं की बलि देना। लेकिन बुद्ध की अंतरात्मा ने गवाही न दी। पशुओं की बलि! नैतिक तो थी यह बात, लेकिन बुद्ध के मन की गवाही न हुई। मोहम्मद के समय में पत्थर की मूर्तियां की पूजा नैतिक तो थी, लेकिन मोहम्मद के हृदय में यह गवाही न बैठी, कि पत्थर की पूजा से कोई परमात्मा तक पहुंच सकता है।
नीति समाज-स्वीकृत व्यवस्था है। धर्म आत्मा में उठा हुआ भाव है। अब
तक आदमी नैतिक ढंग से जीए, इसकी व्यवस्था की गई है; क्योंकि समाज चाहता है कि तुम समाज की मान कर चलो। ठीक और गलत का सवाल नहीं है। तुम हो कौन ठीक और गलत का निर्णय करने वाले!

पांच हजार साल हो गए मनु ने स्मृति लिखी अपनी, अभी भी हिंदू उसी को मान
कर चल रहे हैं। यह नीति। यह धर्म नहीं है। मनु ने लिखा कि शूद्र त्याज्य हैं, तो शूद्र अब भी त्याज्य हैं--अभी भी जलाए जा रहे हैं। मनु ने लिखा, जैसा लिखा, वैसा आज भी माना जा रहा है। यह नीति तो हुई, धर्म न हुआ।
पुरानी जगत की जो आधारशिला थी, नीति थी, भविष्य की जो आधारशिला होगी,
वह धर्म होगी। धर्म को निजता देता है, नीति व्यक्ति की निजता छीन लेती है। और निजता छिनी कि आत्मा छिनी! धर्म है प्रत्येक व्यक्ति के भीतर वह जो धीमी सी अंतस-चेतना की आवा है, जहां से परमात्मा बोलता है।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को नैतिक होने के लिए नहीं कहता। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं कहता हूं, अनैतिक हो जाओ। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि ध्यान की गहराइयों में उतर कर और अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनो, और वह तुम से कहे, वही परम नियम है। फिर उस पर सब दांव पर लगा देना। और तुम कभी हारोगे नहीं, चूकोगे नहीं, मंजिल पर पहुंच जाओगे। भविष्य का मनुष्य नैतिक नहीं, धार्मिक होगा।
एक नई धारणा मनुष्य की--एक अति नई धारणा आवश्यक हो गई है। एक ऐसी धारणा
जो जीवन को उसकी सर्वांगीणता में स्वीकार करती हो--और अहोभाव से! एक ऐसी धारणा जो क्षुद्र से लेकर विराट तक कुछ भी अस्वीकार न करती हो। क्योंकि कीचड़ में कमल छिपे हैं। कीचड़ को स्वीकार किया तो कमल कभी पैदा नहीं होते हैं। हालांकि कीचड़ में कमल दिखाई नहीं पड़ते हैं। और जब कमल पैदा हो जाते हैं तो भरोसा नहीं आता कि कीचड़ से पैदा हुए होंगे। कीचड़ और कमल, दोनों अंगीकार होने चाहिए।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं कि घर मत छोड़ना, द्वार मत छोड़ना।
यह कीचड़ की दुनिया है, इसे छोड़कर मत भाग जाना, नहीं तो कमल न हो सकोगे। मेरे संन्यास की धारणा में, कैसा मनुष्य हो इसकी पहली रूपरेखा है, इसका पहला विधान है। लेकिन यह बातें, अयूब सैयद, मैं सिर्फ भारत के लिए नहीं कह रहा हूं। उतनी संकीर्णताओं में किन्हीं निवेदन को करने की मेरी इच्छा नहीं है। यह सारी बातें भारत के लिए लागू हैं--वैसे ही जैसे सारी मनुष्य जाति के लिए लागू हैं।
और एक बहुत निर्णायक घड़ी करीब आ रही है जब कुछ तय करना होगा। एक ऐसी निर्णायक घड़ी करीब आ रही है कि इन आने वाले पच्चीस वर्षों में या तो हम देखेंगे कि सारी मनुष्यता ने अपनी ही मूढ़ताओं के कारण अपना अंत कर लिया... क्योंकि इतने उदजन बम और हाइड्रोजन बम इकट्ठे हो गए हैं कि एक-एक आदमी का सात-सात सौ बार मारा जा सकता है। इस तरह की सात सौ पृथ्वियां नष्ट की जा सकती हैं। मालूम। मनुष्य ही नहीं मरेगा, पशु-पक्षी, पौधे, कीड़े-मकोड़े, सब मर जाएंगे। और इतने बड़े विस्फोटक साधनों के ऊपर जिन लोगों का हक है, वे करीब-करीब पागल हैं।
हमारी हालत ऐसी है कि मैंने सुना है एक हवाई जहाज आकाश में उड़ा--बड़ा जंबो जेट--कोई साढ़े सात सौ लोग हवाई जहाज में, और अचानक वह जो पायलट था, खूब खिलखिला कर हंसने लगा--ऐसे खिलखिलाकर कि इंटरकाम पर उसकी खिलखिलाहट की आवाज सारे यात्रियों को सुनाई पड़ी। और खिलखिलाहट थोड़ी घबड़ाने वाली थी, क्योंकि खिलखिलाहट ऐसी थी जैसी पागलों की होती है। और बंद ही नहीं हो रही थी। आखिर लोगों ने जाकर पूछा कि बात क्या है, किसलिए हंस रहे हो? उसने कहा कि मैं पागलखाने से निकल भागा हूं। मैं पायलट था पहले... मैं पागलखाने से निकल भागा आया हूं। ढूंढ़ रहे होंगे वे लोग अब मुझे! ... इसलिए मुझे हंसी आ रही है।
तुम सोच सकत हो उन साढ़े सात सौ आदमियों पर क्या गुजरी होगी! पागल पायलट है... अब जीवन का क्या भरोसा है?
यह जो विराट ऊर्जा इकट्ठी हो गई है सारे जगत में, यह राजनीतिज्ञों के हाथ में है--और इनसे ज्यादा पागल आदमी तुम कहां खोजोगे! इनकी कुंजियां पागलों के हाथ में हैं। हम जरूर एक गहन खतरे में गुजर रहे हैं। एक भी पागल इनमें से शुरुआत कर सकता है उस महाविनाश की! और वह महाविनाश शृंखला बद्ध होगा, एक ने शुरू किया तो दूसरे को शुरू करना ही पड़ेगा। और विनाश ऐसा होगा जिसमें न कोई जीतेगा, न कोई हारेगा--क्योंकि सभी मर जाएंगे।

इसके पहले कि यह विनाश घटित हो, मनुष्य को जीवन के कुछ नये आधार रख लेने चाहिए। ध्यान में ही वे आधार रखे जा सकते हैं; क्योंकि ध्यान ही मनुष्य को शांत करता, युद्ध से मुक्त करता, वैमनस्य से मुक्त करता, दूसरे विनाश से मुक्त करता। और ध्यान ही मनुष्य को अंतरात्मा की आवाज सुनने का अवसर देता है।
इसलिए मेरी सारी चेष्टा एक ही बात पर संलग्न है कि कैसे अधिक से अधिक मनुष्य ध्यान की गरिमा को उपलब्ध हो सकें। ध्यान में, भविष्य है मनुष्य का। और ध्यान में ही एकमात्र सुरक्षा की संभावना है। यह जो संन्यास मैं विस्तीर्ण कर रहा हूं, यह केवल ध्यान की खबरें ले जाने वाला हैं, जो दूर-दूर पृथ्वी के कोने-कोने तक ध्यान की सुवास को ले जाए। जितने अधिक लोग ध्यान में संलग्न हो जाएं, उतना अच्छा है; उतने ही मनुष्य के बचने का उपाय है।

तीसरा प्रश्नः जीवन व्यर्थ क्यों मालूम होता है? आपके पास आता हूं तो अर्थ की थोड़ी झलक मिलती है, पर वह खो-खो जाती है।

जीवन न तो अर्थ है, न सार्थकता जीवन तो कोरा कैनवास है। तुम जो चाहो,
उस पर चित्रित कर लो। जीवन तो कोरी किताब है--चाहो तो गालियां लिखो और चाहे तो गीत लोग इस भ्रांति में जीते हैं कि जीवन में कोई अर्थ है, मिल क्यों नहीं रहा? जीवन में अर्थ होता नहीं, डालना होता है। जितना डालोगे, उतना मिलेगा। उससे ज्यादा नहीं।
बांसुरी रखी है और तम बैठे हो उसके सामने और कहते हो कि बांसुरी तो है, लेकिन इसमें स्वर क्यों नहीं है? बांसुरी में स्वर होते नहीं, जन्माने होते हैं, जगाने होते हैं, डालने होते हैं, उमगने होते हैं? रखो ओंठ पर और बजाओ इसे, और अपूर्व संगीत पैदा होगा। जीवन में कोई रेडीमेड अर्थ नहीं है कि चले रेडीमेड की दुकान और तैयार कपड़े पहन कर लौट आए। जीवन तो सिर्फ एक खुला अवसर है; जो चाहो, वही बन जाएगा। इसलिए बुद्ध इसी में निर्वाण बना लेते हैं। हिटलर जैसे लोग इसी में महा नरक बना लेते हैं। इसी में कोई तुम्हारे पास बैठा स्वर्ग में जीता है और तुम नरक में जीते हो। जीवन परम स्वतंत्रता है। जीवन सृजन है।
तुम पूछते हो, जीवन व्यर्थ क्यों मालूम होता है? क्योंकि तुमने अर्थ डाला नहीं होगा। बगिया खाली क्यों मालूम होती है? तुमने बीज बोए न होंगे। फूल क्यों नहीं आते? बीज भी बोए होंगे तो पानी न खींचा होगा।
सृजनात्मक बनो तो अर्थ होगा। और जो लोग भी सृजनात्मक नहीं हैं, उनका जीवन व्यर्थ रहेगा। मगर कसूरवार वे स्वयं हैं, कोई और कसूरवार नहीं है। फिर तुमने पूछा, आपके पास आता हूं तो अर्थ की थोड़ी झलक मिलनी है। झलक
ही मिलेगी। ऐसे ही जैसे कि तुमने रास्ते पर चलते अंधेरे में और फिर एक आदमी आ जाता है जिसके हाथ में लालटेन है और तुम उसके साथ हो लेते हो। जितनी देर तक लालटेन वाला आदमी तुम्हारे साथ होता है, रास्ते पर रोशनी होती है। फिर आ गया चौराहा और उस आदमी ने कहा, नमस्कार भाई, अब मैं अपनी राह चला। फिर घनघोर अंधेरा है! अब तुम हैरान होते हो कि अभी तब थोड़ी झलक थी, अब घनघोर अंधेरा क्यों है?
मेरे दिए की रोशनी में थोड़ी देर चल सकते हो। मगर वह तुम्हारे दीए की रोशनी नहीं है। तुम्हारे दिए की रोशनी होगी तो ही सदा रोशनी तुम्हारे साथ रहेगी। नहीं तो झलकें मिलेंगी! बगीचे में गए, तो सुगंध मालूम पड़ेगी, फिर घर गए तो वहां कहां सुगंध मालूम पड़ेगा! जब तक कि तुम्हारा घर भी बगीचा न बन जाए। मेरे पास बैठोगे थोड़ी देर, तो मेरी मस्ती तुम्हें आच्छादित करेगी, मेरे गीत तुम्हारे गान बनेंगे, मेरे प्राणों के साथ तुम्हारा थोड़ा सा संबंध जुड़ेगा, थोड़ा सत्संग होगा, थोड़ा रस बहेगा, थोड़ा तुम भी चखोगे, थोड़ी बूंदाबांदी होगी, मगर इससे केवल इतना ही समझना कि बुंदा-बादी हो सकती है, रोशनी हो सकती है, रस हो सकता है। अब मैं इसे कैसे पैदा करूं? अगर मैं पैदा कर सकता हूं तो तुम भी पैदा कर सकते हो--मैं तुमसे जरा भी भिन्न नहीं हूं,

तुम मुझसे जरा भी भिन्न नहीं हो। जो मेरे भीतर संभव है, वह तुम्हारे भीतर संभव है।
इसलिए मैं इन धारणाओं के बहुत विपरीत हूं... हिंदू कहते हैं कि राम अवतार हैं, ऊपर से आए। अवतार का मतलब ही होता है--उतरे, अवतरित हुए। मैं इस बात के पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि अगर राम अवतार है और उनमें अगर सुगंध है, तो हमारे किस काम की! वे तो अवतार हैं, आकाश से आए हैं, ठीक हैं! --हम तो आकाश से आए नहीं हैं, हम तो जमीन से ही ऊगे हैं! कृष्ण अवतार हैं। नहीं अवतार की धारणा मुझे पसंद नहीं।
मुझे तो जैनों के तीर्थंकर की धारणा ज्यादा पसंद है। तीर्थंकर पसंद है। तीर्थंकर का अर्थ होता है, अवतार नहीं, हमारे बीच ही पैदा हुए, हम जैसे ही लोग, ठीक हम जैसे लोग, लेकिन फिर उनके जीवन में फूल खिले; उससे भरोसा बंधता है। अगर तुम्हारे जैसे ही व्यक्ति के जीवन में फूल खिल सकते हैं, तुम्हारे ही जैसा मांस-मज्जा का बना हुआ व्यक्ति, तुम्हारी पृथ्वी का अंग, तो तुम्हारे भीतर भी फूल खिल सकते हैं।
तीर्थंकर का अर्थ है, जो अपनी ही चेष्टा से तीर्थ बना। जो था ठीक तुम जैसा, लेकिन एक दिन कुछ उसके भीतर घटा कि वह रोशन हो उठा। महावीर, बुद्ध, पार्श्व, नेमि, यह तुम जैसे ही लोग हैं, अवतार नहीं हैं। इनका अवतरण नहीं हुआ, ऊर्ध्वगमन हुआ है। यह आकाश की तरफ उठे। पैदा हुए यह जमीन से। तुम भी जमीन से पैदा हुए हो, तुम भी आकाश की तरफ उठ सकते हो।
तुम कहते, जीवन व्यर्थ क्यों मालूम होता है? क्योंकि तुमने व्यर्थता
के बीज बोए होंगे। लोग बीज ही व्यर्थता के बो रहे हैं--कोई कमा रहा है, अब धन सक कहीं जीवन सार्थ हुआ है! सुविधापूर्ण हो जाएगा, सार्थ नहीं हो सकता। सुविधा सार्थकता नहीं है। तुम अपने एअर-कंडीशंड कमरे में बैठे रहो, व्यर्थ हो तो व्यर्थ ही हो। एअर-कंडीशनिंग सार्थकता नहीं दे सकती। कोई एयर-कंडीशनिंग करने वाली कंपनी इसका दावा भी नहीं करतीं। हां, ताप नहीं होगा कमरे में, शीतलता होगी। मगर तुम तो तुम ही हो। अगर तुम्हारे भीतर गालियां ही घूमती हैं, तो एयर-कंडीशन क्या करेगा? और सुविधा से घूमेगी-- ठंडक पा कर! धूप-धाप में थोड़ी देर शायद भूल भी जाते होगे।
तुम कितनी ही सुंदर व्यवस्था कर लो बाहर, लेकिन जब तक तुम्हारे भीतर गीत पैदा नहीं हो रहा है, बाहर की व्यवस्था क्या करेगी? और ख्याल रखना, फिर दोहरा दूं, मैं बाहर की व्यवस्था के विपरीत नहीं हूं। बाहर तुम जो भी व्यवस्था करते हो, ठीक है, लेकिन उतने पर रुक मत जाना, उतने से अर्थ पैदा हनीं होता। अर्थ के लिए कुछ और करना होगा।
बाहर की व्यवस्था पैदा होती है विज्ञान से; अर्थ भीतर की घटना है, पैदा होता है धर्म से। व्यवस्था पैदा होती है विज्ञान से, अर्थ पैदा होता है ज्ञान से। सुविधा पैदा होती है बाहर के आयोजन से, शांति और आनंद पैदा होता है भीतर के आयोजन से। तुमने भीतर के लिए किया क्या है? धन कमाया, मकान बनाया, बच्चे हैं, परिवार है, सब ठीक--और मैं इनमें से किसी का विरोधी नहीं हूं--मगर भीतर के लिए तुमने क्या किया? भीतर भांवर डाली? भीतर बजी शहनाई? भीतर प्यारे को तलाशा? भीतर मारे सात फेरे?
तुम देखते हो, सात फेरे मारने पड़ते हैं जब विवाह होता है। यह भीतर के सात फेरो के बाहर प्रतिबिंब मात्र हैं। क्योंकि भीतर सात चक्र हैं मनुष्य के जीवन में, और प्रत्येक चक्र का फेरा लग जाए तो तुम सहस्रार तक पहुंचते हो। भीतर के साथ चक्र ही बाहर के साथ फेरे बन गए हैं। और सात फेरे बांधने पड़ते हैं अग्नि के चारों तरफ। भीतर के सात फेरे भी भीतर की अग्नि को जगा कर डालने पड़ते हैं। और भीतर की अग्नि जगती है प्रभु की प्यास से, प्रज्वलित प्यास से! जैसे कोई मरुस्थल में भटका हो और प्यास लगे तो उसकी प्यास साधारण प्यास नहीं है--ओ है! ऐसे ही जब तुम्हारे जीवन में परमात्मा की प्यास साधारण है कि उसके बिना एक क्षण जीना संभव नहीं है, तो तुम्हारे भीतर अग्नि पैदा होती है, अग्नि प्रज्वलित होती है। वही असली यज्ञ है। और उस यज्ञ के चारों तरफ जब तुम सात फेरे पूरे कर लेते हो, तो सहस्रार में अर्थ का कमल खिलता है।
तुम पूछते होः "जीवन में अर्थ क्यों नहीं है?"

क्योंकि तुमने पैदा नहीं किया है। और आपके पास आता हूं तो अर्थ की थोड़ी झलक मिलती है। झलक ही मिलेगी। यह भी कुछ कम नहीं है। इसलिए मिलती है तो भरोसा आता है कि अर्थ हो सकता है। फिर अर्थ पैदा करना पड़ेगा, झलक पर ही निर्भर मत रह जाना। वह तो तुम किसी बड़े वीणावादक को सुनोगे तो मस्त हो जाओगे। फिर घर जाकर तुम यह मत सोच लेना कि तुम वीणावादक हो गए। फिर वीणावादक सीखना होगा। उस मस्ती ने तुम्हें एक याद दिला दी, सच, और उस मस्ती ने तुमसे यह कहा कि वीणा से ऐसा चमत्कार हो सकता है, और वीणा तुम्हारे घर में भी रखी है, और तुम्हारे पास भी अंगुलियां हैं वैसी ही जैसी वीणावादक के पास हैं, लेकिन अंगुलियां और वीणा के तार में थोड़ा संबंध जोड़ने का अभ्यास करना होगा। वही अभ्यास साधना है।
तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ मंदिर थरथराता रह गया।

स्वप्न की डोली उठा आंसू चले
धूल फूलों की जवानी हो गई,
शाम की स्याही बनी दिन की खुशी
देह की मीनार पानी हो गई,
तू गया क्या--हाय बेमौसम यहां एक बादल डबडबाता रह गया!
तू उठा तो उठ गई सारी सभा सिर्फ मंदिर थरथराता रह गया!

हाथ जब थामे खड़ा था पास तू पांव पर मेरे झुका संसार था, हर नजर मेरे लिए बेचैन थी
हर कुसुम मेरे गले काहार था,
तू नहीं, तो कुछ खिलौने के लिए एक बचपन छटपटाता रह गया!
तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ मंदिर थरथराता रह गया!

प्यार दुनिया ने बहुत मुझको किया, पर लगन तुझसे लगी टूटी नहीं, लाल-हीरे भी बहुत पहने मगर मूर्ति तेरी हाथ से छूटी नहीं क्या कहूं? हर आइने को किसलिए शक्ल मैं तेरी दिखाता रह गया!
तू उठा तो उठ गई सारी सभा सिर्फ मंदिर थरथराता रह गया!

कल विदा जो ले गया था घाट से खिल गया है वह कमल फिर ताल में, नीम से कल जो निबौरी थी छुटी
है लगी वह झूलने फिर डाल में
एक मैं ही जो यहां तुझसे बिछुड़
रोज आता, रोज जाता रह गया!
तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ मंदिर थरथराता रह गया!!
एक परमात्मा तुम्हारे भीतर हो तो मंदिर भरा हुआ है। और एक परमात्मा तुम्हारे भीतर न हो, तो कुछ भी नहीं है, सूनी अंधेरी रात है--अर्थहीन, पुष्प हीन, ज्योतिहीनः तमसो मा ज्योतिर्गमयः हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल; असतो मा सद्गमयः हे प्रभु, मुझे असत से सत की ओर ले चल; मृत्योर्माऽमृतम्गमयः हे प्रभु, मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।

प्रभु के बिना मृत्यु हो तुम। प्रभु के बिना असत्य हो तुम। प्रभु के बिना अंधकार हो तुम।
तू उठा तो उठ गई सारी सभा
सिर्फ मंदिर थरथराता रह गया!
उसके बिना तो तुम केवल एक मंदिर हो कंपते हुए। बिना देवता का मंदिर, अर्थ क्या उसमें? संगीत कहां उसमें, समारोह कहां उसमें? पुकारो मदिरा के देवता भी अपने जितने पास हो, उससे भी ज्यादा पास है। बस पुकारो। उसी पुकार का नाम प्रार्थना।
प्रार्थना तुम्हें जीवन में अर्थ देगी। और झलक नहीं, अनुभव देगी। और ऐसा अनुभव जो तुम्हारी संपदा बन जाए।
सत्संग तो सिर्फ इसीलिए है ताकि भरोसा आ जाए। सत्संग तो इसीलिए है ताकि तुम्हारे भीतर तलाश शुरू हो जाए। सत्संग अंत नहीं है। सत्य हुए बिना अंत कैसे हो सकता है?

चौथा प्रश्नः आपने मेरे हृदय में प्रभु-प्रेम की आग लगा दी है। अब मैं
जल रहा हूं। भगवान, इस आग को शांत करें!

प्रभु-प्रेम की आग शांत करने को नहीं लगाई जाती है। प्रभु-प्रेम की आग
तो ऐसी आग है जिसमें तुम जल कर राख हो जाओगे, तभी शांति उपलब्ध होगी। आग के बुझाने से नहीं, तुम्हारे बुने से शांति उपलब्ध होगी। आग लग गई तो सौभाग्यशाली हो! धन्यभागी हो! नाचो! उत्सव मनाओ! यह क्या पूछते हो कि अब इसे शांत करें! शांत ही करना था तो लगाई ही क्यों? यह आग बुझने वाली आग नहीं। बुझाई जाए, ऐसी आग नहीं। यह आग तो सौभाग्य है, सदभाग्य है। इसमें तुम्हारा अहंकार जलेगा, तुम नहीं जलोगे। तुममें जो व्यर्थ कूड़ा-करकट है, वही जलेगा, तुम नहीं जलोगे। यह तो ऐसी आग है जिसमें हम सोने को डालते हैं, कचरा-कूड़ा जल जाता है और सोना निखर कर बाहर आता है--कुंदन हो जाता है।
नहीं, इतनी जल्दी न करो।
दावाए, आशिकी है तो हसरत करो निबाह।
यह क्या कि इब्तदा ही में घबरा के रह गए।।
यह तो शुरुआत है।
और जब प्रेम का दावा दिया है... दावाए आशिकी है तो हसरत करो निबाह... तो
अब जरा निबाहो... यह क्या कि इब्तदा ही में घबरा के रह गए... यह कैसी बात, यह कैसा प्रश्न? इतनी जल्दी घबड़ा जाओगे! अभी तो शुरू-शुरू है, अभी तो बहुत धुआं उठ रहा है, तो लपटें पूरी पकड़ी कहां हैं? अभी तो वह घड़ी आएगी जब धुआं रह ही न जाएगा, लपट ही लपट होगी--निर्धूम लपट होगी! और जानता हूं, पीड़ा भी होती है। क्योंकि जिसे हमने जाना था अब तक मैं हूं, उसे बिखरते हुए देख कर पीड़ा होना स्वाभाविक है। जिस अहंकार की हमने सदा पूजा की थी, सजाया-संवारा था, आज उसको खंडहर होते देख कर दिल.जार-.जार रोएगा। बीज भी रोता होगा जब टूटता है। मगर उस बेचारे बीज को क्या पता कि टूट कर ही वृक्ष का जन्म है! और बूंद भी रोती होगी जब सागर में टपकती है। मगर उस बूंद को क्या पता कि सागर में गिर कर ही सागर होने का उपाय है! तुम्हें भी पता नहीं है। मगर तुम बूंद से तो थोड़े ज्यादा सचेतन हो। और तुम बीज से तो ज्यादा होशियार हो। थोड़ी होशियारी बरतो।
चुपचाप पी जाओ इस आग को। इसे कहते भी मत फिरना। क्योंकि कहीं इसे कहते फिरते में ही नया अहंकार पैदा न हो जाए कि हम भक्त हो गए; कि आग लगी हुई है! कहीं ऐसा न हो कि बढ़ा-चढ़ा कर कहने लगो--आदमी बड़ा अजीब है, हर चीज को बढ़ा- बढ़ाकर कहने लगता है।
दर्द वह दर्द है, लब पर जिसे ला भी न सकूं।
जख्म वह जख्म है दिल का, कि दिखा भी सकूं।।
न तो जबान पर लाना और न किसी को दिखाना। इसे तो भीतर सम्हालना। यह तो पूंजी है! यह तो हीरा है! हीरा पायो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यों खोले? यह आग नहीं है, यह तो हीरे की दमक है। इसे छिपा लो अपने प्राणों में।

इसे किसी को बताना ही मत! यह जितनी गहरी अपने भीतर छिपा लोगे, उतनी ही जल्दी क्रांति घट जाएगी।
पूछने का मन होगा। समझना चाहोगे कि यह क्या हो रहा है? मगर कुछ चीजें हैं जो समझने से नष्ट हो जाती हैं। कुछ चीजें हैं, जिनका रहस्य होना ही उचित है। जैसे तुम अगर जाओ और तुम्हारा किसी से प्रेम हो गया और तुम किसी वैज्ञानिक से पूछो कि प्रेम क्या है? बस मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि वह कहेगा--प्रेम-व्रेम कुछ भी नहीं है, सिर्फ शरीर की कैमिस्ट्री! शरीर में हार्मोन की कमी ज्यादा होने से प्रेम होता है, कुछ खास मामला नहीं है। एक इंजेक्शन हार्मोन का लगा देंगे, प्रेम-व्रेम सब खत्म हो जाएगा। यह सिर्फ केवल शरीर का रसायन है।
यह तो अच्छा हुआ मजनूं को कोई वैज्ञानिक न मिला। नहीं तो मजनूं को मार देता एक इंजेक्शन हर्मोन्स का, रास्ते पर आ जाते बच्चू! भूल जाते लैला- लैला!!
अगर दुनिया वंचित रह जाती एक अपूर्व प्रेम के नाते से, एक अपूर्व प्रेम की कथा से।
मत पूछना। कुछ चीजें हैं, जिनका होना रहस्य ही उचित है। उन्हीं रहस्यों पर ही तो जीवन का गौरव और गरिमा है। मत पूछना किसी वैज्ञानिक से कि यह जो खिला है कमल झील में, इसका सौंदर्य क्या है? क्योंकि वह कहेगा, सौंदर्य वगैरह कुछ भी नहीं है, तुम्हारी भ्रांति है, तुम्हारी धारणा है, तुम्हें बचपन से सिखा दिया है तो सौंदर्य है; सौंदर्य कहां है वहां?
वह ले जाकर विज्ञान की शाला में काट-पीट करके कमल को सब निकाल कर बता देगा--इतनी मिट्टी, इतना पानी, इतना खनिज, इतना-इतना सब, मगर सौंदर्य कहीं भी न मिलेगा। और एक बार अगर उसके चक्कर में आ गए, तो फिर तुम्हें भी संदेह होने लगेगा कि सौंदर्य है भी? होता तो मिलना चाहिए था। यही तो अड़चन है विज्ञान की! तुम जिंदा आदमी को ले जाओ और कहो कि इसमें आत्मा कहां है? वह चीर-फाड़ करके सब जांच-पड़ताल करके बता देगा--आत्मा वगैरह कुछ भी नहीं है; हड्डी-मांस-मज्जा का पुतला है।
तुम कहो कि मेरे हृदय में प्रेम हो रहा है, वैज्ञानिक मुस्कुराता है;
वह कहता है, कहां कुछ भी नहीं, फुफ्हफस है; पम्पिंग का काम चल रहा है, खून को शुद्ध करने का। कहां का प्रेम-व्रेम लगा रखा है? यह तो प्लास्टिक का हृदय भी कर देगा। अब तो तो प्लास्टिक के हृदय बनने भी लगे। बड़ी मुश्किल होगी, जिस आदमी के पास प्लास्टिक का हृदय होगा, जब उसको प्रेम हो जाए तो कहां हाथ रखे? क्योंकि अगर प्लास्टिक के हृदय पर हाथ रखे तो लोग रखे तो लाग कहेंगे, क्या धोखा दे रहे, प्लास्टिक का प्रेम! बड़ी मुश्किल हो जाएगी। और आज नहीं कल, शरीर की सारी व्यवस्था बदली जा सकती है। सारा शरीर वैज्ञानिक ढंग से प्लास्टिक और सिन्थेटिक चीजों से बनाया जा सकता है। और एक तरह से सुविधापूर्ण रहेगा। हाथ खराब हो गया, चले गए गैरिज में, बदलवा आए! जरा स्क्रू खोलने और कसने की बात है। ज्यादा आसान भी हो जाएगा। मगर आदमी मर जाएगा। उसकी आत्मा मर जाएगी। इस जीवन में कुछ है जो विज्ञान की पकड़ में आ ही नहीं सकता। तो हर चीज की व्याख्या की तलाश भी मत करना।
तू बड़ा आकिल है नासेह! तू ही समझा दे मुझे।
कौन शै-रह-रहके दिल को खींचती है सूए-दोस्त।।
उस प्यारे की तरफ कौन मुझे खींच रहा है? हे बुद्धिमान, हे पंडित, हे उपदेशक, तू तो बड़ा अक्लमंद है!
तू बड़ा आकिल है नासेह! तू ही समझा दे मुझे।
कौन शै रह-रहके दिल को खींचती है सूए-दोस्त।।
उस प्यारे की गली की तरफ कौन मुझे खींच रहा है? मगर समझदारों से यह पूछना ही मत। न उन्हें प्यारे का पता है, न प्यारे की गली का कोई पता है। यह तो पूछता हो तो दीवानों से पूछना। मगर दीवाने जवाब न देंगे। दीवाने हाथ पकड़ लेंगे और कहेंगे, चलो, हम भी उसी तरफ जा रहे हैं--सूए-दोस्त--तुम भी आ जाओ!
कुछ बातें हैं जो समझदारी की नहीं। कुछ बातें हैं जो उनकी ही उपलब्ध होती हैं जो रहस्य में डुबकी मारने में समर्थ होते हैं।

मैं निसार अपने ख्याल पर कि बगैर मै के हैं मस्तियां।
न तो खुम है पेशे-नजर कोई, न सबू है पास न जाम है।।
और ऐसी भी मस्तियां हैं जहां न सुराही होती, शराब को पीने के प्याले होते, न शराब होती और फिर भी मस्ती ऐसी होती है कि क्या कोई शराब ऐसी मस्ती देगी!
मैं निसार अपने ख्याल पर कि बगैर मै के हैं मस्तियां...
शराब तो है ही नहीं और मस्तियां बरसी जा रही हैं...
मैं निसार अपने ख्याल पर कि बगैर मै के हैं मस्तियां।
न तो खुम है पेशे-नजर कोई, न सबू है पास न जाम है।।
धर्म उसी मस्ती का नाम है--न सबू है पास न जाम है। धर्म उसी मस्ती का नाम है--बगैर मैं के है मस्तियां।
तुम कहते, आपने मेरे हृदय में प्रभु-प्रेम की आग लगा दी। अब मैं जल रहा हूं। भगवान, इस आग को शांत करें!
मैं तो इस आग को और जलाऊंगा। यह आग बमुश्किल जलती है। और जल जाए, सुलग जाए, तो समझना जन्मों-जन्मों के पुण्य का फल है। तुम्हारी कठिनाई भी मैं समझता हूं; क्योंकि जब आग जलती है, तो अड़चन होती है, बेचैनी होती है, तड़फन होती है।
कफस में सैयाद बंद कर दे, नहीं तो, बेरहम छोड़ ही दे।
यहां उम्मीदोबीम में आखिर रहेंगे हम जेरे दाम कब तक? बड़ी अड़चन होती है।
कफस में सैयाद बंद कर दे...
तो या तो बंद ही कर दे। डाल दे कारागृह में।
... नहीं तो, बेरहम छोड़ ही दे।
या कारागृहों के बाहर कर दे।
यहां उम्मीदोबीम में आखिर रहेंगे हम जेरे-दाम कब तक?
आशा-निराशा में कब तक तू हमें फंसाए रखेगा? और जब आग लगती है तो ऐसी ही हालत हो जाती है। न घर के न घाट के। संसार व्यर्थ मालूम होने लगता है और परमात्मा अभी दूर और दूर आकाश में तारा पड़ता है, पहुंच भी पाएंगे या नहीं? जिसे पकड़ा था, छूटने लगा और जिसे पकड़ना है, दूर मालूम होता है।
इस बीच की घड़ी में अड़चन आती है। मगर उस अड़चन को सह जाने का नाम ही तपश्चर्या है। कांटों पर लेटने को मैं तपश्चर्या नहीं कहता। न भूखे मरने को तपश्चर्या कहता हूं। न सिर के बल खड़े होने को तपश्चर्या कहता हूं। तपश्चर्या कहता हूं इस घड़ी को, जब जो जान-माना था हाथ से खिसकने लगता और जो अनजाना है, अपरिचित है, अभी उसका कुछ ठीक-ठीक साफ-साफ हाथ में छोर नहीं आता। वह जो बीच की घटना है, वह जो बीच का शून्य है, वही तपश्चर्या है। फुरकते-यार में मुर्दा सा पड़ा रहता हूं।
रूह कालिब में नहीं, जिस्म है तनहा बाकी।।
और ऐसी घड़ी आ जाती है, उसको विरह में, फुरकते-यार में मुर्दा सा पड़ा रहता हूं, कि भक्त बिल्कुल मुर्दा जैसा हो जाता है। पुरानी जिंदगी की अभीप्सा गई, महत्वाकांक्षा गई, दौड़-धूप गई, आपाधापी गई; वह जो पागलपन था, धन पा लूं, पद पा लूं, प्रतिष्ठा पा लूं--व्यर्थ हो गया।
फूरकते-यार में मुर्दा सा पड़ा रहता हूं।
रूह कालिब में नहीं, जिस्म है तनहा बाकी।।
और आत्मा का कुछ पता नहीं चलता, अभी उससे पहचान नहीं हुई, बस केवल शरीर
रह जाता है--और वह भी धू-धू कर जलता हुआ।
पर घबड़ाओ न। उससे प्रेम महंगा सौदा है। सब गंवा कर ही उसे पाना होता है। और प्रेम तो दूर, उसने अगर दुश्मनी का भी नाता हो जाए तो भी सौभाग्यशाली हो! प्रेम के नाते का कहना ही क्या!
यार से छिड़ जाय असद
ना सही वस्ल, तो हसरत ही सही।
हमसे न की जीएगा ताल्लुक-कत,
ना सही इश्क अदावत ही सही।।

उस प्यारे से तो अगर दोस्ती छिड़ गई, कहना ही क्या! अगर दुश्मनी भी छिड़ जाए तो भी ठीक है। क्योंकि दुश्मनी में भी तो उसी की याद आएगी। दोस्त शायद भूल भी जाए, दुश्मन तो भूल ही नहीं पाता।
हमसे न की जीएगा ताल्लुक-कत,
ना सही इश्क अदावत ही सही।।
कोई फिकर नहीं, अगर हम पर इतनी नजर नहीं कि प्रेम कर सको, हमें इतना पात्र नहीं पाते, तो ठीक, मगर अदावत ही करो, दुश्मनी ही करो, मगर याद तुम्हारी आती रहे।
यार से छिड़ जाए असद
ना सही वस्ल, तो हसरत ही सही।
न हो मिलन, कोई फिकर नहीं, कफस ही छिड़ जाए मिलने की, आग ही लग जाए पाने की! वही आग लग गई है तुम्हें। नाचो-गाओ, मस्ती मनाओ!
मैं निसार अपने ख्याल पर कि बगैर मै के हैं मस्तियां।
न तो खुम है पेशे-नजर कोई, न सबू है पास न जाम है।।
सबसे मुंह मोड़ के राजी हैं तेरी याद से हम।
इसमें इक शाने-फरागत भी है राहत के सिवा।।
शाम हो गया कि सहरा याद उन्हीं की रखनी।
दिन हो या रात हमें फिकर उन्हीं का करना।।
अब यह आग लगी, अब इसको भड़काओ और! मैं इस पर पानी न फेंकूंगा, पेट्रोल
फेंकूंगा।
सबसे मुंह मोड़ के राजी हैं तेरी याद से हम।
इसमें इक शाने-फरागत भी है राहत के सिवा।।
इसमें एक शान है, एक गरिमा है! राहत तो है ही, इसमें एक महिमा है। प्रभु
के प्रेम से प्रज्वलित हो उठना इस जगत में सबसे बड़ी घटना है। कोहनूर जैसा हीरा तुम्हारे हाथ लग गया और कहते हो, वजन भारी है! हे प्रभु, छुड़ाओ इस वजन से!
शाम हो या कि सहर याद उन्हीं की रखनी।
दिन हो या रात हमें फिकर उन्हीं का करना।।
अब तो उन्हीं की याद, उन्हीं का जिक्र। श्वास भी उन्हीं की, हृदय की धड़कन भी उन्हीं की। जलो, खूब जलो, ऐसे जलो कि राख ही रह जाए और कुछ न बचे! जलो, खूब जलो, ऐसे जलो कि राख भी हवाएं उड़ा कर ले जाएं, राख भी न बचे! और तभी मिलन है! तभी वह अदभुत मिलन है! उसे निर्वाण कहो; उसी की चर्चा कर रहे हैं दरिया--दरिया कहै सब्द निरबाना।
निर्वाण शब्द का अर्थ समझते हो?
उसका ठीक वही अर्थ होता है, जो सूफियों में फना का। निर्वाण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है--दीये का बुझ जाना। जैसे फूंक मार दी और दीया बुझ गया। ऐसे बुझ जाओ, ऐसे फना हो जाओ, ऐसे मिट जाओ। इधर तम मिटे, उधर वह हुआ।
इधर मनुष्य गया, उधर परमात्मा उतरा। जगह खाली करो! सिंहासन से हटो! अल्लाह री महरूमी, अल्लाह री नाकामी।
जो शौक किया हमने सो खाम नजर आया।।
इस शुग्ल से आंखों को दम भर जो नहीं फुरसत।
रोने मग वह क्या ऐसा आराम नजर आया?
अगर बहुत ही अड़चन हो, न गा सको, न नाच सको, तो कम से कम रोओ। और ध्यान रखना, रोने से आग बुझेगी नहीं, भड़केगी।
इस शुग्ल से आंखों को दम भर जो नहीं फुरसत।
रोने में वह क्या ऐसा आराम नजर आया?
लेकिन आराम जरूर नजर आएगा। भक्तों के लिए एक ही औषधि है--रोना। जब आग बहुत भड़के, कुछ करते न बने, कुछ सूझे न--खूब रो लेना, दिल भर के रो लेना।
हल्के हो जाओगे, निर्भार हो जाओगे।

आखिरी प्रश्नः मैं संन्यास तो जरूर लेना चाहता हूं, पर अभी नहीं। सोच-विचार कर फिर आऊंगा। आपका आदेश क्या है?

कल का कोई भरोसा है? कल कभी आया है? संन्यास लेना है, फिर कभी आओगे! एक क्षण के बाद हाथ में जिंदगी होगी? इस पल है, अगल पल होगी? इतने आश्वस्त हो! पानी की तरह भागती जिंदगी पर इतना भरोसा!
महाभारत में कथा है, पांडव बनवास का समय बिता रहे हैं--गुप्तवास का समय बिता रहे हैं। एक भिखमंगा भीख मांगने आ गया है। युधिष्ठर द्वार पर बैठे हैं झोपड़े के, कुछ विचार में लीन। भिखमंगे ने कहा कि एक मुट्ठी भर आटा मिल जाए, युधिष्ठिर ने कहा कि अभी मैं उलझा हूं, कल आ जाना। भीम पास ही बैठे हैं, वे खूब खिलखिला कर हंसने लगे। हंसे ही नहीं, पास में ही पड़ा हुआ एक घंटा लेकर बजाने लगे। युधिष्ठर ने पूछा, तुझे क्या हुआ, भीम? भीम ने कहा, मैं गांव में जाकर घंटा बजा कर यह खबर कर आना चाहता हूं कि मेरे बड़े भाई ने समय पर विजय प्राप्त कर ली है। उन्होंने एक भिखमंगे को कहा है कि कल आना। इससे एक बात तय है कि उन्हें पक्का भरोसा है कि वे कल रहेंगे, भिखमंगा भी कल रहेगा और हमारे पास देने के लिए मुट्ठी भर आटा भी कल रहेगा। तो मैं जरा गांव में खबर कर आऊं कि जो कभी कोई नहीं कर पाया, मेरे बड़े भाई ने कर लिया है।
यह तो व्यंग्य गहरा हो गया। युधिष्ठर भागे, उस भिखमंगे को पकड़ा, घर लाए, जो भिक्षा देनी थी, और कहा--मुझे क्षमा करना! कल का क्या पक्का है? कल मैं न रहूं। कल तुम न रहो। कल मैं भी रहूं, तुम भी रहो, घर में आटा न रहे। कल मैं भी रहूं, तुम भी रहो, घर में आटा भी रहे, तुम भिखमंगे न रहो। कल का क्या भरोसा!
चीन की एक बड़ी पुरानी कथा है।
एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया और उसने उस मृत्युदंड दे दिया। नियम था कि मृत्यु दंड के एक दिन पहले सम्राट मिलने जाता था, जिसको मृत्युदंड दिया जाता। फिर यह तो उसका वजीर था, जिंदगी भर इसने उसकी सेवा की थी, तो वह गया। उसने अपना घोड़ा कारागृह के सामने बांधा सींकचों में से वजीर देख रहा है, भीतर आया, दरवाजा खुला वजीर की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। सम्राट ने कहा, तू और रोता है! मौत से रोता है! मैंने सदा तुझे एक बहादुर की तरह जाना, तू इतना युद्ध लड़ना, जिंदगी और मौत तुझे खेल रहे, तू रोता है! यह मेरी आंख को भरोसा नहीं आता कि तेरी आंख में और आंसू? वजीर ने कहा कि मैं अपनी मौत के लिए नहीं रो रहा हूं, मैं किसी और बात के लिए रो रहा हूं--लेकिन अब कहने से भी क्या फायदा? जाने दें? आपकी बड़ी कृपाएं, उनके लिए धन्यवाद! सम्राट ने कहा कि ऐसे नहीं जाने दूंगा, जानना चाहता हूं--किस बात के लिए रो रहा है? तूने मेरी जिज्ञासा जगा दी। तुझे मैंने कभी रोते देखा नहीं।
उस वजीर ने कहा, रोने का कभी कोई कारण नहीं था, आज कारण है। कारण यह है--
आप पूछते हैं तो कह देता हूं--कि मैंने जिंदगी भर मेहनत करके एक ऐसी कला सीखी थी कि घोड़े को आकाश में उड़ा सकता हूं, मगर जिस जाति का घोड़ा चाहिए वह जिंदगी भर न मिला। और आज आप जिस घोड़े पर बैठ कर आए हैं, यह वही घोड़ा है, उसी जाति का घोड़ा है। रोता हूं कि जिंदगी भर की मेहनत अकारथ गई, कल सुबह तो मुझे मरना है, और आज यह घोड़ा आया है सामने नजर!
सम्राट को भी लोभ जगा। घोड़ा आकाश में उड़े! तो तो सम्राट का नाम सारी दुनिया में हो जाएगा। उसके पास ऐसा घोड़ा है जो किसी के पास नहीं है। उसने कहा, कितनी देर लगेगी को उड़ने में? वजीर ने कहा, एक साल। सम्राट ने कहा, फिकर छोड़, तू बाहर आ। घोड़ा अगर उड़ गया, तो आधा राज्य भी तुझे दूंगा, मेरी बेटी से तेरा विवाह भी कर दूंगा। अगर घोड़ा पहीं उड़ा, तो कोई हर्ज नहीं, साल भर बाद तेरी फांसी लग जाएगी।
वजीर घोड़े पर बैठ कर अपने घर पहुंच गया। पत्नी बच्चे तो छाती पिट कर
रो रहे थे क्योंकि कल मौत है। उन्हें तो भरोसा नहीं आया--आंखें मल कर देखा वे कोई सपना तो नहीं देख रहे हैं--उन्होंने कहा, आप वापस? उसने कहा, मैं वापस आ गया। कैसे आए? तो उसने सारी बात बताई। उसकी बात सुन कर तो पत्नी और भी छाती पीट कर रोने लगी कि तुमने यह और एक मुसीबत कर दी! मुझे भलीभांति पता है कि तुमने ऐसी कोई कला कभी नहीं सीखी। और अगर धोखा ही देना था, तो कम से कम दस साल तो मांगते। एक साल! यह एक साल हमारी छाती पर और भारी रहेगा, कि

अब गया, अब गया; एक-एक दिन बीतेगा कि तुम्हारी मौत करीब आ रही है! घोड़ा उड़ने वाला नहीं। वजीर ने कहा, तू फिकर मत कर, पागल! साल का क्या भरोसा? मैं मर जाऊं, राजा मर जाए, घोड़ा मर जाए--साल का कोई पक्का है? दस साल मांगता तो शायद वह हिम्मत भी नहीं करता देने की। इसलिए साल भर मांगा। मगर साल भर बहुत है। कुछ भी हो सकता है!
और हैरानी की कहानी यह है कि उस साल तीनों मर गए--राजा भी, घोड़ा भी, वजीर भी।
अब तुम मुझसे पूछते हो कि मैं संन्यास तो जरूर लेना चाहता हूं। यह किस प्रकार का जरूर? जरूर प्रतीक्षा नहीं करता। यह किस प्रकार का संन्यास, जो तुम कल लोगे? राजा मर जाए, वजीर मर जाए, घोड़ा--तीनों ही मर जाएं! मैं न रहूं यहां, तुम न रहो यहां यह जो संन्यास लेने का भाव उठा है, यह घोड़ा मर जाए! क्या पता?
कल का तो कुछ पक्का पता नहीं है। कल जब तुम यहां आए थे तो संन्यास लेने
का भाव नहीं था, कल फिर नहीं हो जाए। पर अभी नहीं, तुम कहते हो। अभी नहीं तो कभी नहीं, स्मरण रखना। जो भी करना हो, अभी करना है। सोच-विचार कर फिर आऊंगा। सोच-विचार कर कभी किसी ने संन्यास लिया है? सोच-विचार ही तो बाधा है। संन्यास तो सोच-विचार के बाहर छलांग है। यह तो दीवानों का काम है! यह तो पागलों की हिम्मत है! यह तो मस्तों, पियक्कड़ों का साहस है! यह कोई सोच-विचार का नहीं है, कि बैठे हैं, सोच-विचार कर रहे हैं, खाता बही लिख रहे हैं--इतने लाभ, इतनी हानियां--जब पक्का हो जाएगा। कि लाभ ज्यादा है, हानिया कम, तब फिर कभी लेंगे। मौत उसके पहले आ जाएगी। सोच-विचार पूरा नहीं होगा। सोच-विचार कभी पूरा ही नहीं होता। एक सोच में से दूसरा सोच लगता है। जैसे पत्ते लगते है वृक्षों में, ऐसे सोच-विचार में सोच-विचार लगते जाते हैं। और मेरा आदेश पूछते हो आदेश तो मैं किसी को देता नहीं। आदेश का मतलब होता है, ऐसा करना होगा! आदेश तो सेना में होते हैं, संन्यासी में नहीं होते। राइट टर्न, लेफ्ट टर्न, वे आदेश!
मैं किसी को कोई आदेश नहीं देता। सदगुरुओं ने कभी कोई आदेश नहीं दिए-- उपदेश दिए हैं!
उपदेश और आदेश का भेद समझ लेना।
आदेश का मतलब है, करना ही होगा। मैं मालिक, तुम गुलाम, आज्ञा पालनी होगी, नहीं पाली, दंड पाओगे। उपदेश का अर्थ होता है, निवेदन। मुझे ऐसा लगता है, तुमसे कह दिया। फिर तुम्हारी मर्जी! तुम पालो तो मैं खुश हूं, तुम न पालो तो मैं खुश हूं।
सैनिक में और संन्यास में यही तो भेद है। सैनिक आज्ञाकारी होता है, संन्यासी आत्मवान होता है। उपदेश सुनता है। सुनता है, गुनता है, ध्यान करता है, फिर अंतरात्मा के अनुसार चलता है।
लेकिन कल की मत बात उठाओगे। कल बड़ा झूठ है।
आज जी भर देख लो तुम चांद को
क्या पता यह रात फिर आए न आए!

दे रहे लौ स्वप्न भीगी आंख मग
तैरती हो ज्यो दिवाली धार पर
ओंठ पर कुछ गीत की लड़ियां पड़ी
हंस पड़े जैसे सुबह पतझार पर, पर न यह मौसम रहेगा देर तक हर घड़ी मेरा बुलावा आ रहा, कुछ नहीं अचरज अगर कल ही यहां विश्व मेरी धूल तक पाए न पाए! आज जी भर देख लो तुम चांद को क्या पता यह रात फिर आए न आए!

ठीक क्या किस वक्त उठ जाए कदम काफिला कर कूंच दे इस ग्राम से

दरिया कहै सब्द निरबाना
सातवां प्रवचन

निर्वाण तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है

तीनी लोक के ऊपरे, अभय लोक बिस्तार
सत्त सुकृत परवाना पावै, पहुंचै जा करार।
जोतिहि ब्रह्मा, बिस्नु हहिं, संकर जोगी ध्यान।
सत्तपुरुष छपलोक महं, ताको सकल जहान।।
सोभा अगम अपार, हंसवंस सुख पावहीं।
कोइ ग्यानी करै विचार, प्रेमतत्तुर जा उर बसै।।

जो सत शब्द बिचारै कोई। अभय लोक सीधारै सोई।।
कहन सुनन किमिकरि बनि आवै। सत्तनाम निजु परवै पावै।।
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पारा।।
कंचल डाहै पावक जाई। ऐसे तन कै डाहहु भाई।।
जो हीरा घन सहै घनोर। होहि हिरंबर बहुरि न फैरा...
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।।
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।।
पारस सब्द कहा समुझाई। सतगुरु मिलै त देहि दिखाई।।
सतगुरु सोइ जो सत्त चलावै। हंस बोधि छपलोक पठावै।।
घर घर ग्यान कथै बिस्तारा। सो नहिं पहुंचै लोक हमारा।।

सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा। आतम देव क निर्मल पूजा।।
बादहि जनम गया साठ तोरा। अंत की बात किया तैं भौरा।।
पढ़ि पढ़ि पोथी भा अभिमानी। जुगति और सब म्रिथा बखानी।।
जौन न जान छपलोक के मरमा। हंस न पहुंचिहि एहि शटकरमा।।
सार सब्द जब दृढ़ता लावै। तब सतगुरु कछु आप लखावै।।
दरिया कहै सब्द निरबाना। अबरि कहौं नहिं बेद बखाना।।
वेदै अरुझि रहा संसारा। फिरि फिरि होहि गरभ अवतारा।।

दरिया कहै सब्द निरबाना!
दरिया तो कहेंगे, पर तुम सुनोगे या नहीं, सवाल असली वहां है। सूरज निकले, पर आंख खोलोगे या नहीं, असली सवाल वहां है। वीणा कोई बजाएं, लेकिन तुम वज्र-बधिर की तरह बैठे रह सकते हो। तुम्हारे हृदय में कोई झनकार उठेगी या नहीं, असली सवाल वहां है।
सदगुरु होते रहे। यह पृथ्वी कभी बांझ नहीं हुई। कभी कोई मीरा नाची, कभी कोई नानक गाया, कभी किसी दरिया ने पुकारा, मगर कितनों ने सुना? कितने थोड़े लोगों ने सुना! अंगुलियों पर गिने जा सकें, इतने थोड़े लोगों ने सुना? कितने थोड़े लोगों ने सुना! अंगुलियों पर गिने जा सकें, इतने थोड़े लोगों ने सुना। व्यर्थ में हमारी इतनी वासना है कि सार्थक पर नजर नहीं जाती। कोरे- थोथे शब्दों में हमारा ऐसा लगाव है, ऐसी आशिक्ति है, कि सत्य शब्द हमारे कान में पड़ते हैं तो हमारी पकड़ में नहीं आते। असत्य को तो बुद्धि से ही पकड़ा जा सकता है, अड़चन नहीं है। सत्य को हृदय से पकड़ना होता है, वहीं कठिनाई है। हृदय तो हमारे जड़ पड़े हैं। सदियां बीत गयीं, न हम उन रास्तों पर चले, न हमने उस रास्तों पर इकट्ठे हो गए कूड़े-करकट के ढेर हटाए, हमें तो भूल ही गया है कि हमारे भीतर हृदय भी है कोई। हम तो अपनी-अपनी खोपड़ियां में बंद हो गए हैं। और खोपड़ियों में बंद पंडित हो जाओ भला, ज्ञानी न हो पाओगे। और यह शब्द उनके लिए हैं, जो ज्ञान के आकाश में उड़ना चाहते हैं।
पांडित्य तो कारागृह है; ज्ञान आकाश है। पांडित्य तो जंजीरें है, बेड़ियां हैं। सोने चढ़ी होगी, हीरे-जवाहरात जड़ी होंगी, मगर बेड़ियां तो फिर भी बेड़ियां हैं। पांडित्य से कभी कोई मुक्त नहीं हुआ है, न कभी कोई हो सकेगा। मस्तिष्क से मोक्ष का कोई संबंध ही नहीं जुड़ता। और हृदय तो मोक्ष से जुड़ा ही है। तुम जरा हृदय की गुनगुन सुनो, तुम जरा हृदय के करीब आओ, तो

यह शब्द तुम्हारी बंद कलियों को खोल दें, तुम्हारे बुझे दीयों को जला दें, तुम्हारे पत्थर जैसे पड़ गए हृदय में फिर पुनः प्राण फूंक दें। तुम फिर मिट्टी ही न रह जाओ, अमृत हो सको। फिर तुम पृथ्वी पर रेंगते कीड़े-मकोड़े ही न रहो, आकाश में उड़ना तुम्हारी क्षमता है।
हंसा, उड़ चल वा देश!
तुम हंस हो, ताल-तलैयों के किनारे बैठे गए हो। कूड़ा-कर्कट, कीचड़ में जी रहे हो। मोती चुगने थे तुम्हें, मानसरोवर तुम्हारा था, तुम किन कीचड़-कबाड़ में खोए हो? और इसलिए जहां भी हो वही दुखी हो; क्योंकि स्वभाव नहीं। जहां भी हो स्वभाव के प्रतिकूल हो। और मौत रोज करीब आती जाती है; क्या इन्हीं ताल-तलैयों के किनारे, जहां सिवाय सड़ांध के और दुर्गंध के कुछ भी नहीं है, जीवन गंवा दोगे? पंख न फड़फड़ाओगे? उड़ोगे नहीं मानसरोवर की तरफ? वे स्वच्छ स्फटिक जल के झरने हिमालय के तुम्हें पुकारते नहीं? वह शांति, वह क्वांरा आनंद, तुम्हारे प्राणों में अभीप्सा नहीं जगाता? जगाता हो तो तुम सुन पाओगे...
दरिया कहै सब्द निरबाना...
दरिया तो कहेगा, दरिया कहता रहा है, दरिया आगे भी कहता रहेगा। दरिया आते रहे, दरिया आते रहेंगे।
दरिया शब्द भी बड़ा प्यारा है; उसका अर्थ होता है--सागर। सागर तो पुकारता रहा है, लेकिन तुम बूंद होने से राजी हो गए हो! तुम्हारे भीतर कब उठेगी यह अभीप्सा कि मैं भी सागर हो जाऊं? और ध्यान रहे, दिन थोड़े हैं, इन-गिने हैं, मौत किसी भी क्षण आ सकती है। जो फूल अभी खिला है, सांझ होते गिर जाएगा। जो अभी बसंत है, जल्दी ही पतझड़ हो जाएगा।
लो आ गया पतझार भी
सब पात पीले पड़ गए
कुछ बच रहे, कुछ झड़ गए
फिर वर्ष बीता एक यह, बीती वसंत-बहार भी,
लो आ गया पतझार भी।
कुछ वृष्टि, हेमंत के
कुछ ग्रीष्म और बसंत के
दिन बीतते ये जा रहे, बन-मिट रहा संसार भी, लो आ गया पतझार भी।
था कल वसंत यहां हंसा
अलि कुसुम-कलियों में फंसा
जड़ और चेतन में हुई क्षण एक आंखें चार भी, लो आ गया पतझार भी।
अब वह न सौरभ वात में
अब वह न लाली पात में
अवशेष यदि कुछ तो निशा के आंसुओं का हार ही, लो आ गया पतझार भी।
इस आह का क्या अर्थ है
दुख-सुख सुनाना व्यर्थ है
लौटा नहीं प्रिय को सकी, पिक की अशांत पुकार भी,
लो आ गया पतझार भी।
जिसमें विलीन बसंत है
उस शून्य का क्या अंत है
क्या शून्य में ही लय कभी होगा हमारा प्यार भी?
लो आ गया पतझार भी।
देर कहां? पतझड़ चल ही चुका है। पत्ते पीले पड़ने ही लगे हैं। किसी भी क्षण झर जाएगा यह जीवन--यह जवानी, यह आपाधापी, यह सपने! क्या शून्य में ही खो जाना है? क्या कब्र को ही गंतव्य मान लिया है? अगर कब्र को ही गंतव्य मान लिया है और जीवन में धन के ठीकरे इकट्ठे करने के अतिरिक्त और कोई बड़ी अभीप्सा नहीं है, तो फिर तुम न सुन पाओगे। फिर दरिया लाख सिर पटके, फिर दरिया लाख चिल्लाए, तुम बहरे के बहरे रहोगे।

मगर दरिया जैसे व्यक्ति तुम्हारे बहरेपन की चिंता नहीं करते--पुकारे जाते हैं! कौन जाने कब सुन लो! किस अनजान क्षण में, भूल-चूक से सुन लो! किस अनजान घड़ी में, तुम्हारे बावजूद सुन लो! न सुनना चाहते हो और सुन लो! इस आशा में दरिया पुकारते हैं। दरिया कहै सब्द निरबाना!
तीनि लोक के ऊपर अभय लोक बिस्तार।
तीन लोक बड़े मनोवैज्ञानिक हैं, उनका मनोविज्ञान समझना चाहिए। भूगोल
तो तुम्हें बहुत समझाया गया है तीन लोकों का, कि पाताल है जमीन के नीचे, स्वर्ग है बादलों के ऊपर और दोनों के मध्य में है यह मृत्यु लोक। यह सब तो बच्चों को समझाने की बातें हैं। जमीन के नीचे पाताल नहीं है, अमरीका है! अगर तुम खोदते ही चले जाओ, जहां बैठे हो वहीं से खुदाई शुरू करो, तो अमरीका में निकलोगे। और अमरीका के भी लोग सोचते हैं कि नर्क नीचे हैं। अगर खोदते चले आएं। तो यहां पूना में निकल आएंगे!
और ऊपर... ! यूरी गागरिन जब पहली दफा, रूस का पहला अंतरिक्ष यात्री, चांद से वापस लौटा तो पता है लोगों ने उससे क्या पूछा? पहला सवाल यह पूछाः ईश्वर मिला चांद पर? क्योंकि कहानियां हैं कि ईश्वर चांद पर रहता है। उसने कहाः कोई ईश्वर नहीं है, बिल्कुल सन्नाटा है वहां! ईश्वर की तो बात छोड़ो कोई आदमी भी नहीं है, कोई पंडित-पुजारी भी नहीं है।
उस महत्वपूर्ण घटना की स्मृति में मास्को में एक म्युजियम बनाया गया है, जिसमें यूरी गागारिन जो भी कंकड़-पत्थर चांद से लाया था वे संगृहीत किए गए हैं। उस म्युजियम के द्वार पर लिखा हैः चांद पर भी जाकर देख लिया गया, वहां भी कोई ईश्वर नहीं है।
चांद पर ईश्वर है, यह कहा किसने था? यह बच्चों को समझाने की कहानियां हैं, परी-कथाएं हैं।
यह भौगोलिक बातें नहीं हैं, मनोवैज्ञानिक बातें हैं।
मनुष्य की तीन संभावनाएं हैं--साधारण मनुष्य की। फिर एक चौथी संभावना
भी है। उस चौथी में उठना ही धर्म हैं। तीन में डूबे रहना संसार है। उस चौथी अवस्था को हमने काई नाम नहीं दिया, क्योंकि उसे क्या नाम दे? हमारे पास जितने नाम हैं, वे सब तीन अवस्थाओं के ही हैं, क्योंकि तीन का ही हमें अनुभव है। तो चौथी को हमने सिर्फ चौथी कहा है--तुरीय। तुरीय का अर्थ होता है, चौथी, दि फोर्थ। उसको नाम नहीं दिया, सिर्फ चौथा कहा है, बस।
यह तीन अवस्थाएं हैं मन की। एक तो है दुख की अवस्था, जिससे हम भली भांति परिचित हैं। उस दुख की सघनता का नाम ही नर्क है। वह जमीन के नीचे नहीं है, वह तुम्हारे ही मन की तलहटी में है, वह तुम्हारे ही मन के अचेतन में दबी पड़ी है। उसी मन के अचेतन से तुम्हारे दुख-स्वप्न, नाइटमेयर पैदा होते हैं। दूसरी अवस्था है, सुख। उसका भी तुम्हें थोड़ा-थोड़ा अनुभव है, इधर-उधर झलकें। न सही हो अनुभव, तो कम से कम आशा की झलकें, सपने में थोड़ी-थोड़ी प्रतीतियां--अब मिला, तब मिला! न भी हो अनुभव, तो इतना तो तुम सोच ही सकते हो कि दुख से जो विपरीत है, वह सुख। अगर दुख में कांटा चुनता है, तो सुख में फूलों की वर्षा होगी। न भी हुई हो वर्षा, तो भी अनुमान कर सकते हो। और दोनों के मध्य की जो अवस्था है, उससे तो सभी परिचित हैं--सुख-दुख का मिश्रण। उसका नाम है, मर्त्य लोक। जहां सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--एक हाथ सुख, एक हाथ दुख। और जितना दुख पैदा करो, उतना ही सुख और जितना सुख पैदा करो, उतना ही दुख।
इस बात को समझना थोड़ा। इसके पीछे एक गहन विश्लेषण है।
क्या तुमने देखा नहीं कि जो लोग जितने ज्यादा सुख का अर्जन करते हैं उतने ज्यादा दुखी होते चले जाते हैं? एक अनुपात है। इसलिए आज अमरीका में यदि सर्वाधिक दुख है, तो उससे तुम यह मत सोच लेना कि तुम बड़ी अच्छी स्थिति में हो। उसका कुल मतलब इतना ही है कि आज अमरीका में सर्वाधिक सुख के साधन हैं, इसलिए दुख है। दुख और सुख अनुपात में बढ़ते हैं, साथ-साथ बढ़ते हैं, एक ही साथ बढ़ते हैं। अगर दुख का अनुपात दस है, तो सुख का अनुपात दस है। अगर दुख की अनुपात सौ तो सुख का अनुपात सौ है। जैसे ही कोई समाज समृद्ध होता है, वैसे ही बड़ी आंतरिक दीनता-दरिद्रता और दुख से भर जाता है। आज अमरीका में जितने लोग पागल होते हैं, कहीं और हनीं। जितने लोग आत्मघात करते हैं, कहीं

और नहीं; और जितने लोग मानसिक शांति की तलाश करते हैं, उतने कहीं और नहीं इससे कभी-कभी भारतीय मन बड़ा चौंकता हैः दुखी तो हमें होना चाहिए, जिनके पास कुछ भी नहीं है। न खाने को है, कपड़े हैं, न छप्पर है, न दवा है, न बच्चों को स्कूल भेजने का उपाय है--जिनके पास कुछ भी नहीं है, दुखी तो हमें होना चाहिए।
मगर तुम्हें जीवन का गणित पता नहीं।
जिन्हें कुछ नहीं है जिनके पास, वे ज्यादा दुखी नहीं होते। क्योंकि ज्यादा दुखी होने के लिए ज्यादा सुखी होना पहले जरूरी है। जिसने सुख जाना है, उसे दुख का पता चलता है। ऐसा समझो कि तुम महलों में रहे और फिर एक दिन तुम्हें झोपड़े में रहना पड़े तब तुम्हें झोपड़े का दुख पता चलेगा। जो झोपड़े में ही रहा है सदा, उसे झोपड़े का कोई दुख पता नहीं चलेगा। जो सड़क पर ही सोता है, उसे सड़क पर सोने में कोई दुख पता नहीं चलता। लेकिन महलों से छीनकर लाए गए लोगों को सड़क पर सोने को कहो, तब उन्हें दुख पता चलेगा। दुख की प्रतीति के लिए सुख की पृष्ठभूमि चाहिए। और इसके विपरीत भी सच है। बिना दुख की प्रतीति के सुख की प्रतीति भी नहीं होती।
इसलिए जिन लोगों को सुख अनुभव करना है, वे कई तरह के दुख पैदा करते हैं अपने लिए, तब कहीं थोड़ा-बहुत सुख अनुभव कर पाते हैं। अब एक आदमी को कुछ नहीं है, वह पहाड़ चढ़ने लगा! अब पहाड़ पर चढ़ना दुखपूर्ण धंधा है, जीवन का खतरा है, लेकिन पहाड़ पर चढ़ेगा! उस पहाड़ की चढ़ाई में जहां जीवन प्रतिपल खतरे में है, एक पैर फिसला तो जीवन सदा के लिए खाई-खड्डों में खो जाएगा, हड्डी-मांस-मज्जा के टुकड़ों-टुकड़ों का भी पता नहीं चलेगा, बोटी-बोटी हो जाएगा, मगर उसी दुख के कारण, उसी दुख की संभावना के कारण, शिखर पर चढ़ना एक सुख की पुल बन जाती है।
चांद पर जाने का सुख क्या है? चांद पर चलने का सुख क्या है? क्योंकि पहुंचना अति खतरनाक है। जितनी बड़ी चुनौती होती है, जितना बड़ा खतरा होता है, उतनी ही सुख की आशा बंधती है। जो लोग बड़े सुख चाहते हैं, उन्हें बड़े दुख पैदा करने पड़ते हैं। सैनिकों का यह आज अनुभव है युद्धों के मैदानों में कि जहां जीवन बिल्कुल खतरे में होता है, वहां सुख की बड़ी तरंगें उठती है। जहां प्रतिपल खतरा है कि अब मरे कि तब मरे, वहां जीवन में निखार आ जाता है, सब धूल-धवांस झड़ जाती है, जीवन बड़ा सतेज हो जाता है।
सुख और मिश्रित हैं; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनमें से तुम एक को काट नहीं सकते। इसलिए नर्क और स्वर्ग तो केवल परिकल्पनाएं हैं। हमने दुख जाना है; दुख की ही जो पराकाष्ठा की कल्पना है, उसका नाम नर्क है। हमने सुख जाना है; सुख की ही जो पराकाष्ठा का नाम है, उसका नाम स्वर्ग है। सुख का अर्थ हैः हमने दुख को बिल्कुल काट दिया अपनी कल्पना में और सुख ही सुख बचा लिया। और दुख का अर्थ हैः हमने सुख बिल्कुल काट दिया और दुख ही दुख बचा लिया। इसलिए नर्क दुश्मनों के लिए, सुख अपने लिए, मित्रों के लिए, प्रियजनों के लिए। अगर तुम ईसाई हो, तो ईसाई सिर्फ स्वर्ग जाएंगे, बाकी बस नर्क। अगर तुम मुसलमान हो, तो बहिश्त मुसलमानों के लिए। किसी और के लिए हनीं। अगर तुम जैन हो या बौद्ध हो, तो बस तुम्हारे लिए स्वर्ग या नर्क, तुम्हारे लिए स्वर्ग, बाकी के लिए नर्क। अपने लिए स्वर्ग और शेष जो अपने साथ नहीं हैं, उनके लिए नर्क। यह मनुष्य की साधारण ईर्ष्या, जलन, वैमनस्य की वृत्ति है। और इन तीन को हमने तीन लोक बना दिया है।
दरिया कहते हैः तीनि लोक के ऊपरे... । अगर सच में सत्य की खोज करनी हो
तो मन के ऊपर जाना पड़ता है, मनोविज्ञान के ऊपर जाना पड़ता है। तीनि लोक के ऊपरे, अभय लोक बिस्तार। वह चौथा है--जहां मन शून्य हो जाता है; जहां न दुख है, न सुख है, न दोनों का मिश्रण है; जहां दुख भी शांत, सुख भी शांत; जहां सब तरंगें शून्य हो गयीं; जहां चेतना की झील निस्तरंग है; जहां सब स्तब्ध हो गया; जहां कोई शोरगुल नहीं--न प्रीतिकर, न अप्रीतिकर--जहां न कांटे हैं, न फूल; जहां न अपने हैं न पराए; जहां न सफलता है न विफलता है; जहां मन की सारी दौड़े शांत हो गई--जहां मन ही नहीं है--उस अ-मनी दशा को, उस उनमनी दशा को चौथी अवस्था कहा है, तुरीय कहा है।

उसको ही पतंजलि निर्विकल्प समाधि कहते हैं। जब तक विकल्प हैं, तब तक समाधि पूर्ण नहीं। जब तक कोई भी विचार है, तब तक समाधि पूर्ण नहीं। जब तक कोई भी अनुभव हो रहा है--सुख का या दुख का--तब तक समाधि पूर्ण नहीं है। जब कोई भी अनुभव नहीं होता, दर्पण तुम्हारी अनुभूति का बिल्कुल निर्मल होता है, चित्त-वृति निरोधः, जहां चित्त की सारी वृत्तियां का निरोध हो गया है-- वह दशा योग की है। वहां तुम परमात्मा से मिलते हो। उस चौथी दशा में तुम परमात्मा हो जाते हो। तीनि लोक के ऊपरे, अभय लोक विस्तार।
आर वहीं भय मिटता है, इसलिए उसे अभय लोक कहा है। जो दुखी है, वह भी भयभीत रहता है--कि कहीं और दुख न आ जाएं। जो दुखी है, वह भयभीत रहता है कि पता नहीं कब इन दुखों से छुटकारा होगा, होगा भी कि नहीं होगा। जो सुखी है, वह भी भयभीत रहता है कि यह कितनी देर टिकेंगे सुख! अतीत के अनुभव यही कहते हैं कि सुख आते हैं, चले जाते हैं, टिकते नहीं। तो जो सुखी है, भय के कारण जोर से पकड़ता है। जो दुखी है, वह हटाता है। मगर चैन दोनों को नहीं है। जो सुखी है वह भी जानता है कि आज नहीं कल हाथ से छिटक जाएगा सुख। इसलिए पकड़ लो, चूस लो! मगर जितने जोर से तुम सुख को पकड़ोगे, उतने जल्दी छिटक जाता है। सुख पारे जैसा है; मुट्ठी बांधी कि बिखर जाएगा। फिर बीनते फिरो पूरे फर्श पर और न बीन आओगे। और जिंदगी लोगों की बिखरे हुए पारों को बीनने में ही बीत जाती है। और दुख को तुम जितना हटाओ, उतना तुमसे चिपकेगा। दुख से तुम जितने भागोगे, छाया की तरह तुम्हारा पीछा करेगा। यह हमारी सामान्य अवस्था है। दोनों हालत में भय बना रहता है। दुखी आदमी तो भयभीत होता ही है कि इतना तो मिल गया, पता नहीं, हे प्रभु, और अब क्या होने को है!
मैंने सुना है, दिल्ली के एक राजनेता मरे। मरने के पहले--बड़े राजनेता थे, तो बड़ी दूर तक उनकी पहुंच थी--मरने के पहले आंखें बंद किए पड़े थे, देवदूत आ गए और कहा कि मृत्यु करीब है। राजनेता ने कहा, इतनी तो कृपा करो... कहां मुझे जाना है; जाने के पहले मैं स्वर्ग और नर्क दोनों देख लेना चाहता हूं, लेकिन चुनाव कर सकूं। बड़े नेता थे, चुनाव का हक होना ही चाहिए! देवदूतों ने कहा कि ठीक है... रिश्वत तो वहां भी चलती है। यहीं के लोग तो वहां देवदूत हो जाते हैं। यहीं की आदतें वहां पहुंच जाती हैं... नेता ने रिश्वत दी तो देवदूतों ने कहा कि ठीक है, एक झलक दिखा देते हैं।
पहले स्वर्ग ले गए। कुछ उदास-उदास सा मालूम पड़ा स्वर्ग! सुस्त-सुस्त! होगा भी, अगर तुम्हारे साधु-संत स्वर्ग जाते हैं तो होगा ही सुस्त! न वीणा बजेगी, न बांसुरी बजेगी। साधु-संत बैठे हैं अपने-अपने झाड़ के नीचे! धुलें जम गई होगी, सदियों-सदियों से बैठे अनंत काल से। और साधु-संत नहाते-धोते तो हैं ही नहीं--शरीर का क्या आवेष्टन! दतौन इत्यादि भी नहीं करते जो बहुत पहुंचे संत हैं। जैन मुनि दतौन नहीं करते। क्या दतौन करना! यह तो सांसारिक लोगों के काम हैं। यह तो जैनियों के हाथ में अगर फिल्मों का बनाया आ जाए तो चुंबन तो दूर, दतौन भी बंद हो जाए। क्योंकि दतौन इत्यादि भी आदमी इसलिए करता है कि किसी का चुंबन करे, आलिंगन करे तो बास न आए। इसलिए पश्चिम में, जहां चुंबन खूब चलता है, वहां को सुवासित करने के लिए स्प्रे होते हैं।... बैठे हैं अपनी धूनी रमाए। कुछ नेता को जंचा हनीं! यह तो ऐसे लगा जैसे कुंभ का मेला हो--तरह-तरह के सर्कस अखाड़े। कहा कि भाई, नर्क और दिखा दो।
नर्क देखा तो चकित हो गया। भरोसा न आया। जिस विश्रामालय में लें जाकर बिठाया गया, वातानुकूलितथा, एयरकंडीशन था; मधुर-मधुर संगीत बज रहा था, सुंदर कैबरे नृत्य चल रहा था। जंच नेता को! दिल्ली का ही तो नेता था आखिर! लगा यह तो बिल्कुल अशोका होटल मालूम होता है। अशोका को भी मात किया! और शैतान ने बड़े पुष्पहार पहनाए। और असली फूलों के... खादी के फूल भी नहीं, असली फूल! और ऐसी सुगंध जैसी नेता ने कभी जानी थी। चाय लेंगे, काफी लेंगे, कोकाकोला लेंगे? कहा, कोकाकोला भी मिलता है यहां? दिल्ली में तो मुश्किल हो गया है। कोकाकोला भी ठीक फ्रीज से ठंडा किया हुआ! बहुत आनंदित हुए। कहां, यहीं आना चाहता हूं। देवदूतों से कहा कि बस, मरने के बाद यहां ले आना।
छह घंटे बाद उनकी मौत हुई, देवदूत नर्क पहुंचे। जो आंख खोली तो एकदम घबड़ाहट हो गई। भयंकर लपटें जल रही थीं, कहाड़े चढ़ाए गए थे, तेल उबल रहा था!

लोग तेल में डाले जा रहे थे, सड़ाए जा रहे थे, बड़े कोड़े मारे जा रहे थे! नेता ने कहा, भाई, यह मामला क्या है भूल-चूक हो गई क्या? थोड़ी देर पहले, छह घंटे पहले मैं आया था... ! शैतान खिलखिला कर हंसने लगा। उसने कहा कि वह हमारा अतिथि-गृह है। जो ऐसे ही दर्शक की तरह आते हैं, उनके लिए है। अब यह असली नरक! वह तो टूरिस्टों के लिए है। टूरिस्टों के लिए तो सब जगह इंतजाम करना पड़ता है। विशेष इंतजाम करना पड़ता है! अच्छी-अच्छी चीजें दिखाते हैं। अब असली मजा लो!
मैंने एक और नेता के संबंध में सुना। वे मेरे, सीधे नर्क ले जाए गए। और कहीं तो नेता जा भी नहीं सकते! मगर नेता कहीं और जा सकते हैं तो फिर बाकी लोगों में से कौन नर्क जाएगा? सीधे नर्क ले जाए गए। लेकिन पुराने नेता थे, जाने-माने नेता थे, काफी प्रसिद्धि थी--नर्क के अखबारों में भी उनकी तस्वीरें छपती थीं--शैतान ने कहा, आप बड़े आदमी हैं, पहुंचे हुए हैं, जगत में आपकी बड़ी ख्याति है, इतना आपके लिए कर सकता हूं कि आप खुद ही चुन लें; नर्क में कई विभाग हैं, जहां आपको रहना हो!
नेता ने इसमें भी बड़ी राहत ली कि चलो, थोड़ा चुनाव की सुविधा है।
एक जगह गए तो लोग कड़ाहों में जलाए जा रहे हैं। एक जगह गए तो लोगों को भयंकर कोड़े मारे जा रहे हैं! एक जगह गए तो लोगों की छातियों पर बड़े-बड़े पत्थर रखे गए हैं और उनके ऊपर राक्षस कूद रहे हैं। ऐसे जगह-जगह... बड़ी घबड़ाहट होने लगती नेता को कि इनमें से चुनना, कोई भी चुनना मुसीबत में पड़ना है। यह सब एक से एक पहुंचे हुए उपद्रव हो रहे हैं! एक जगह जाकर थोड़ा अच्छा लगा। लोग खड़े हैं--यद्यपि स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है, घुटने- घुटने मलमूत्र में खड़े हैं--लेकिन चाय पी रहे हैं। उन्होंने कहा, कम से कम यह बेहतर है। मलमूत्र का तो ऐसा है कि चलेगा! और जिंदगी भर की आदत है, मलमूत्र में ही तो रहे। राजनीति मल-मूत्र के सिवा और क्या है? तो यह तो घुटने-घुटने क्या गले-गले भी इसमें डुबकी मारी है, यह तो ठीक है, यह चलेगा, मगर चाय भी पी रहे हैं लोग और गपशप भी कर रहे हैं--यह जंचा! उन्होंने कहा कि यह जगह ही मैं चुन लेता हूं। एक कप हाथ में थमा दिया गया, गरम-गरम चाय, मलमूत्र में खड़े होकर पीने लगे, घुटने-घुटने मल-मूत्र में डूबे और तभी एकदम से घंटी बजी और जोर से खबर आई कि बस, अब सब लोग शीर्षासन करें। ज्यादा देर नहीं चलती यह बातें। नर्क में चाय भी मिले तो जरा सावधान रहना, कि जल्दी ही शीर्षासन करवाएंगे। अब शीर्षासन घुटने-घुटने मल-मूत्र में।
नर्क हमारी परिकल्पनाएं हैं दुख की। जो-जो दुख आदमी सोच सकता है, वे हमने नर्क में आरोपित किए हैं। लेकिन ध्यान रखना, जो-जो आदमी सोच सकता है, वह हो सकता है--हो ही रहा है। लोग मलमूत्र में ही तो खड़े हुए हैं। मलमूत्र में ही तो चाय इत्यादि भी चल रही है। और मलमूत्र में ही शीर्षासन भी हो रहे हैं। तुम जरा अपनी जिंदगी को गौर से देखो, वहां तुम्हें सुगंध अनुभव हो रही है? और तुम्हारी जिंदगी में जो थोड़े-बहुत सुख हैं, वे भी बड़े उदास हैं। उन सुखों में भी कोई त्वरा नहीं है, कोई रंग हनीं है। वे भी ज्योतिर्मय नहीं हैं। उन पर भी बड़ी धूल जमी हैं। वे भी पुनरुक्तियां हैं। हां, कभी-कभी कोई क्षण आता है जब अच्छा लगता है, मगर वैसे क्षण बहुत बार आ चुके हैं। वे क्षण भी नये नहीं हैं। वे क्षण भी परिचित हैं। उनमें भी कोई पुलक नहीं है। उनमें भी कुछ ऐसा आनंद-उल्लास नहीं है।
मगर इन दोनों के बीच आदमी डोलता रहता है--सुख और दुख। सुख होता है तो दुख से भयभीत रहता है कि कहीं सुख न आ जाए, सुख को पकड़ लूं--हालांकि सुख में भी कुछ होता नहीं, मगर बेहतर है, कम से कम बेहतर है, कम से कम दुख तो नहीं है।
एक धनी आदमी मर रहा था तो अपने बेटे को पास बुलाकर कहाः तुझे मुझे कुछ बात कहनी है, एक खास बात कहनी है, कि बेटा, धन से सुख बात कहनी है, बेटा, धन से सुख नहीं मिलता। मैंने जिंदगी भर धन इकट्ठा करके, यह अनुभव किया--धन से सुख नहीं मिलता। बेटे ने कहा, जो भी हो, मगर धन की वसीयत मेरे ही नाम कर जाना। बाप ने कहा, क्यों तुझे मेरी बात समझ में नहीं आई? बेटे ने कहा, बात बिल्कुल ही समझ में आ गई है मुझे कि धन से सुख नहीं मिलता। लेकिन धन में एक

सुविधा है--आदमी दुख चुन सकता है। जो भी दुख चाहिए, वह ले। धन न हो तो दुख चुनने तक की स्वतंत्रता नहीं रहती। इसका तो ख्याल करो। धन हो तो आदमी महल में दुख तो स्विटजरलैंड में ले; इस स्त्री का दुख लेना चाहे इसका ले, उन स्त्री का लेना चाहे उस स्त्री का ले। धन में एक सुविधा है, आदमी कम से कम दुख तो चुन सकता है अपनी मौज से। अगर धन पास में न हो, तो दुख चुनते तक की स्वतंत्रता नहीं रह जाती।
तो बेटे ने कहा, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं पिताजी, कि धन से सुख नहीं मिलता, लेकिन एक बात मैं आपको याद दिला दूं--धन से आदमी अपने दुख अपनी मौत से चुन सकता है।
शायद इतना ही फर्क है गरीब और अमीर आदमी में। गरीब को दुख चुनने की स्वतंत्रता नहीं है, अमीर को दुख चुनने की स्वतंत्रता है। मगर स्वतंत्रता है दुख चुनने की ही। यह भी कोई बड़ा फर्क हुआ? यह भी कोई बड़ा भेद हुआ? और अक्सर तो ऐसा हो जाता है कि पुराने पिटे-पिटाए दुख धीरे-धीरे हमारे मन में राजी आ जाते हैं। रोज-रोज नये-नये दुख चुन कर आदमी और भी दुखी होता है, क्योंकि उनकी पीड़ा अपरिचित होती है। उनका संताप नया होता है, उनके कांटे नये-नये स्थानों पर चुभाते हैं।
दरिया कहते हैं। लेकिन दोनों भय की अवस्थाएं हैं। अभय कहां है? अभय तो कहां है जहां न दुख की चाह है न सुख की चाह है। जहां आदमी ने यह देख लिया कि दुख तो व्यर्थ हैं ही, सुख भी व्यर्थ है। और यह दोनों बातें अगर साथ-साथ न दिखाई पड़ें तो तुम्हारे जीवन में क्रांति न हो पाएगी। अगर तुम्हें लगे कि दुख तो व्यर्थ हैं, सुख व्यर्थ नहीं हैं, तो सुख के बचाने में दुख भी बच जाएंगे; वे एक ही साथ होते हैं, अलग-अलग किए ही नहीं जा सकते। उनको भिन्न-भिन्न करने के लिए कोई उपाय नहीं, कोई तलवार उनको दो टुकड़ों में नहीं काट सकती। वे एक ही चीज को देखने के दो ढंग हैं, एक ही चीज को कहने का दो ढंग हैं।
तुम ऐसा समझो कि तुम्हारे पास पांच लाख रुपये हैं और तुम्हें कल दस लाख मिल जाएं, तो तुम सुखी होओगे या दुखी? तुम सुखी हो जाओगे। और जिस आदमी के पास आज पंद्रह लाख रुपये हैं, कल उसके पास दस ही लाख रुपए रहे जाएं, उसकी हालत क्या होगी? वह बहुत दुखी हो जाएगा। दोनों के पास दस लाख रुपये हैं। एक के पास पांच थे, उसके दस हो गए, एक के पास पंद्रह थे, उसके भी दस हो गए। अगर दस लाख रुपये में सुख होता तो दोनों को होना चाहिए था; दस लाख में दुख होता तो दोनों को होना चाहिए था। लेकिन एक को सुख हो रहा है क्योंकि उसके पास पांच थे, और एक को दुख हो रहा है क्योंकि उसके पास पंद्रह थे। तो दस लाख में सुख और दुख नहीं हैं तुम्हारे देखने पर निर्भर हैं। तुम्हारी तुलना पर निर्भर है। तुम्हारी अपेक्षा पर निर्भर है।
इसलिए सुख-दुख को अलग नहीं किया जा सकता।
एक आदमी अपने घर आया और अपने निकटतम मित्र को ऐसी अवस्था में देखा कि उसे भरोसा न आया। उसकी पत्नी को वह गले लगा रहा था। जो पत्नी को गले लगा रहा था मित्र, वह भी थोड़ा घबड़ा गया कि अब क्या जवाब देगा। लेकिन उसके मित्र ने कहा, कोई चिंता न करो, जरा मेरे साथ बगल में कमरे में आओ। बगल के कमरे में ले जाकर कहा कि मुझे तो उसे गले लगाना पड़ता है, लेकिन मूर्ख, तू क्यों लगा रहा है? मेरी तो मजबूरी है कि विवाह कर बैठा तो मुझे तो उसे गले लगाना पड़ता है, मगर मूर्ख, मुझे क्या हुआ? तुझे कौन सी परेशानी है जो तू गले लगा रहा है?
एक के लिए जो सुख हो सकता है, दूसरे के लिए दुख हो सकता है। वही घटना जो तुम्हें आज सुख है, कल दुख हो सकती है। आज जिस पत्नी के पीछे तुम दीवाने हो, कल उसी पत्नी से बचने के लिए दीवाने हो सकते हो। आज जिसके लिए मर सकते थे, कल उसी को मार सकते हो। आज जो मित्र था, कल शत्रु हो जाए। आज जो शत्रु है, कल मित्र हो जाए।
सुख और दुख अलग-अलग नहीं हैं--देखने के ढंग हैं, दृष्टियां हैं। और जो सारी दृष्टियां के ऊपर उठ जाता है, उसे दर्शन उपलब्ध होता है। जिसके पास कोई पक्षपात नहीं रह जाता; जो कहता है, न मुझे यह चाहिए, न वह चाहिए; न यह छोड़ना है, न वह छोड़ना है; जो न भोगी है, न त्यागी है--भोगी है सुख को पकड़ने

वाला और जिसको तुम त्यागी कहते हो, वह है दुख को पकड़ने वाला, ज्ञानी दोनों नहीं करता। तुम्हारे भोगी अज्ञानी, तुम्हारे त्यागी अज्ञानी। ज्ञानी वह है जो न पकड़ता, न छोड़ता; जो आ जाता है, देखता है; जो चला जाता है, उसको जाते देखता है। ज्ञानी तो सिर्फ साक्षी होता है। एक द्रष्टा मात्र। कांटा गड़ा तो कांटे को देखता है, फूल गिरा तो फूल को देखता है। न फूल को पकड़ रखने की इच्छा है, न कांटा नहीं लगना चाहिए था ऐसी कोई आकांक्षा नहीं है। ऐसी चैतन्य की शांत अवस्था में अतिक्रमण होता है भय के और व्यक्ति उठ जाता है। तीनी लोक के ऊपरे, अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकृत परवाना पावै, पहुंचै जाय करार।।
लेकिन केवल वे ही पहुंच सकते हैं जो परवाने हैं। जो सत्य की ज्योति में जल जाने को तत्पर हैं। सत्त सुकृत परवाना पावै... जो अपने अहंकार को राख कर देने को तैयार हैं, जो अपने मन को भस्मीभूत कर देने को तैयार हैं, केवल वे ही--पहुंचै जा करार, वे ही उस अदभुत तट पर लगते हैं। उनकी नौका उस तट पर लग जाती है जहां न सुख है, न दुख है। सुख स्वर्ग, दुख नर्क--और दोनों के जो पार है, उसका नाम मोक्ष। उसी का नाम निर्वाण। दरिया कहै सब्द निरबाना।
जोतिहि ब्रह्मा बिस्नु हहिं, संकर जोगी ध्यान।
सत्तपुरुष छपलोक महं, ताको सकल जहान।।
ज्योति-स्वरूप। हैं ब्रह्मा, विष्णु, ज्योति-स्वरूप हैं शंकर, और ज्योति-स्वरूप हो जाओगे तुम भी, अगर योग को उपलब्ध हो जाओ, ध्यान को उपलब्ध हो जाओ। ध्यान का अर्थ हैः तुम्हारा तादात्म्य छूट जाए--उन सब चीजों से जो तुम्हारे आस-पास घटती हैं लेकिन तुम नहीं हो। जैसे दर्पण के सामने से कोई गुजरा, एक सुंदर स्त्री गुजरी और दर्पण ने कहा, अहह, मैं कितना सुंदर हूं! यह तादात्म्य। एक कुरूप आदमी निकला और दर्पण सिकुड़ गया और मन ही मन बेचैन हो उठा और बड़ी ग्लानि लगी कि मैं भी कैसा कुरूप! यह तादात्म्य। लेकिन सुंदर स्त्री निकली कि कुरूप पुरुष निकला, दर्पण चुपचाप देखता रहा, झलकता रहा, जो भी निकला उसको झलकाता रहा और जानता रहा कि मैं तो दर्पण हूं, जो भी मेरे सामने आता है उसका प्रतिबिंब बनता है--यह साक्षी भाव, यह ध्यान।
दुख आया, तुम दुखी हो गए--ध्यान चूक गया। सुख आया, तुम सुखी हो गए-- ध्यान चुक गया। दुख आया, आने दो, जाने दो; सुख आया, आने दो जाने दो--तुम दर्पण रहो। तुम देखो भर। तुम इतना कहो कि अभी दुख है, अभी सुख है; अभी सुबह, अभी सांझ; अभी रोशनी थी, अब अंधेरा हो गया; अभी बसंत था, अब पतझड़ आ गया; अभी जिंदगी थी, अब मौत आ गई; तुम बस देखते रहो, और जो भी तुम देखो, उसके साथ एक मत हो जाओ, एकाकार मत हो जाओ। बस इतनी सी ही कला है ध्यान की!
और जो ध्यान को उपलब्ध हो गया, वह योग को उपलब्ध हो गया। क्योंकि जिसने अपने आसपास घटती हुई घटनाओं से संबंध तोड़ लिया, उसका संबंध उस परम परमात्मा से जुड़ जाता है जो भीतर छिपा बैठा है। तुम दो में से एक से ही जुड़ कसते हो--या तो संसार से, जो तुम्हारे चारों तरफ है; या परमात्मा से, जो तुम्हारे भीतर है।
जोतिहि ब्रह्मा बिस्नु हहिं, संकर जोगी ध्यान।
सत्तपुरुष छपलोक महं, ताको सकल जहान।।
और अगर तुम सारे तादात्म्य छोड़ दो, तो तुम्हारे भीतर जो गुप्त लोक है, तुम्हारा जो रहस्यों का लोक है, तुम्हारे भीतर जो हृदय की अंतर गुहा है, जहां तुम्हारे अतिरिक्त कोई और नहीं जा सकता--इसलिए उसे गप्तलोक कहते हैं--बस तुम ही जा सकते हो वहां, दूसरा कोई तुम वहां नहीं ले जा सकते, अपने निकटतम मित्र को भी निमंत्रण नहीं दे सकते कि आओ मेरे भीतर, अपनी प्रेयसी को भी नहीं साथ ले जा सकता; प्रेयसी और मित्र तो बहुत दूर, अपने मन को भी साथ नहीं ले जा सकते, अपने तन को भी साथ नहीं ले जा सकते, अपने विचार के कण को भी साथ नहीं ले जा सकते, वहां कुछ भी नहीं ले जा सकते, सब बाहर का बाहर ही छोड़ देना पड़ता है। वहां तो बिल्कुल ही निर्भार होकर... चित्तवृत्ति निरोध... जहां सारी चित्त की वृत्तियां बाहर छोड़ दी गई हैं, वैसी निवृत्ति की दशा में, वैसी संन्यस्त दशा में तुम अपने भीतर प्रवेश करते हो। और

अकेले तुम ही प्रवेश कर सकते हो। उसी को दरिया कहते हैंः छपलोक, गुप्तलोक, छिपा हुआ लोक।
सत्तपुरुष छपलोक महं, ताको सकल जहान।
और वहां तुम उसे पाओगे जिसका यह सारा संसार है, जिसका यह सारा विस्तार है। वहां तुम मालिकों के मालिक को पा लोगे। और जिसने उसे पा लिया, सब पा लिया। जिसने उसे जान लिया, सब जानने-योग्य जान लिया।
सोभा अगम अपार...
उसकी शोभा अगम है, अपार है...
सोभा अगम अपार, हंस-वंस सुख पावही।
कोइ ग्यानी करै विचार, प्रेमतत्तु जा उर बसै।।
सोभा अगम अपार... कह न सकोगे, गूंगे हो जाओगे। बोल न सकोगे, अवाक हो जाओगे। हठात ठिठक जाओगे। जो दिखाई पड़ेगा, इतना विराट है कि उसमें तुम लीन हो जाओगे। जैसे एक छोटा सा दीया और सूरज से मिल जाए! एक छोटी बूंद सागर से मिल जाए!
सोभा अगम अपार, हंसवंस सुख पावही।
लेकिन केवल वे ही पा सकेंगे जिन्हें अपने हंस होने की याद आ गई कि हम हंसों के वंशज हैं।
तुम बुद्धों के वंशज हो--महावीर, मोहम्मद, जरथुस्त्र, लाओत्सु, बुद्ध, कबीर, नानक, दरिया, फरीद, तुम इनके वंशज हो। तुम परमहंसों के वंशज हो। मगर न मालूम किस भ्रांति में छोटे-छोटे ताल-तलैयों के पास बैठ गए हो, गंदे डबरों के पास बैठे गए हो। और वहीं घर बना लिया। वहीं गृहस्थी सजा ली!
ताल-तलैयों के पास जो बस गए हैं, उनका नाम गृहस्थ। और जिन्हें भूल ही
गई याद कि दूर हिमालय के उत्तुंग शिखरों के पीछे छिपा हुआ हमारा लोक है, हमारा मानसरोवर है; जिन्हें भूल ही गई यह बात कि हम मोतियों को चुगते थे, कंकड़-पत्थरों पर अब निर्भर हो रहे हैं--उन्हीं को याद दिला के लिए जो जाग गए हैं वे पुकारते हैं और कहते हैंः हंसो, जागो! हंसा, उड़ चला वा देश!! सारे बुद्धों की प्रक्रियाएं, सारे बुद्धों के शब्द एक छोटे से सूत्र में बांधे जा सकते हैंः हंसा, उड़ चल वा देश! तुम्हें याद दिलानी है तुम्हारा देश की! तुम परदेश में हो। तुम्हें स्वदेश भूल गया है।
सोभा अगम अपार, हंस-वंस सुख पावही।
लेकिन जो दरिया के शब्द सुनेंगे और जिन्हें जरा भी याद आ जाएगी कि अरे, मैं कौन! उन्हीं बड़ा सुख मिलेगा। हंस-वंस सुख पावहो। यह शब्द उनके कानों में पड़ते हुए अमृत धोल जाएंगे। हंस-वंस सुख पावहीं! एक क्षण में उनके भीतर क्रांति हो सकती है। जिन्होंने सुना, एक क्षण में क्रांति हो गई है।
मैंने सुना है, एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया। उसने उसे देश-निकाला दे दिया। देश निकाला देकर पछताया भी बहुत, लेकिन जिद्दी आदमी था। सोचा कि आज नहीं कल बेटा लौट आएगा, क्षमा मांगेगा तो क्षमा कर दूंगा। आखिर कब तक भटकेगा? लौटेगा। मगर बेटा भी बाप का ही बेटा था, वह भी जिद्दी था, वह भी नहीं लौटा तो नहीं लौटा। दस वर्ष बीत गए। बाप बूढ़ा होने लगा। एक ही बेटा था। वही मालिक था सारे राज्य का। अब बहुत पछताने लगा। उसने अपने वजीरों को भेजा कि खोजो, वह कहां है? अब राजपुत्र था, उसे कुछ और तो आता नहीं था; न कभी मजदूरी की थी, न कभी कोई और हस्तकला सीखी थी, नौकर-चाकर हर काम करते थे उसका। तो अगर कभी कोई राजा का बेटा चूक जाए राज्य से तो उसके पास सिवाय भिखारी होने के कोई और उपाय बचता नहीं। तो भिखारी हो गया था। भीख मांगता था। दस वर्ष में तो उसे याद ही भूल गई धीरे-धीरे कि मैं सम्राट था।
याद रखनी उचित भी नहीं। क्योंकि अगर यह याद बनी रहे तो पीड़ा बनी रहे घाव भरे ही नहीं! घाव को भरना भी चाहिए न, आखिर आदमी को जीना है! और भीख मांगनी है। अल्युमिनियम के एक पात्र में भीख मांगता फिरता है। दो-दो पैसे, चार-चार पैसे के लिए गिड़गिड़ाता है। अगर वह याद रखे कि मैं सम्राट का बेटा हूं, तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। और जब दतकारा जाएगा कि आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, आज नहीं, कल जाना, कि आज घर में रोटी नहीं है, कि आज कोई घर मग देनेवाला नहीं है--अगर सम्राट का बेटा हो तो तलवार खींच ले। अगर सम्राट का बेटा हो तो पकड़

कर इस आदमी की गर्दन दबा दे। यह तो खतरनाक हो जाए! जिसे दो-दो पैसे मांगने हैं, वह कितनी देर तक सम्राट होने की याद रखेगा! हां, कुछ दिन तक, महीने दो महीने याद आती रही होगी। फिर याद का जब जीवन से कोई तालमेल न हो, याद धीरे- धीरे विस्मृत हो गई। दस साल में तो उसे बात आई-गई भूल ही गई। सपने में भी नहीं आती थी। भिखमंगा हो गया था, बिल्कुल भिख मंगा हो गया था।
भीख मांग रहा था एक होटल के सामने, जहां लोग जुआ खेल रहे थे, चाय पी रहे थे, सिगरेट फूंक रहे थे। कह रहा था कि मेरे पैर जल रहे हैं, धूप बहुत तेज है, गर्मी आ गई, जूते मेरे पास नहीं हैं, कुछ-कुछ पैदा दे दो तो मैं जूते खरीद लूं। कुछ पैसे उसके भिक्षापात्र में थे भी, उनको खड़खड़ा रहा था, लोगों से गिड़गिड़ा रहा था! तभी आकर स्वर्ण रथ वजीरों का रुका होटल के सामने। स्वर्ण रथ का रुकना और दस साल एक--एक क्षण में पुंछ गए! स्वर्ण रथ का रुकना, वजीर को देखना और वजीर का उतर कर और भिखारी के चरणों में गिरना, और कहा कि महाराज, वापिस चलें। आपके पिता ने याद किया है, वे बूढ़े हो गए। सारा राज्य आपका है। आप यहां क्या कर रहे हैं?
एक क्षण में क्रांति हो गई। हाथ में जो ठीकरे लिए था, जिसमें कुछ पैसे थे, उसने उसे रास्तों पर फेंक दिया। अभी उन्हीं पैसों-पैसों के लिए गिड़गिड़ा रहा था। अभी जो उसे एक पैदा देने को राजी नहीं थे, वे सब होटल के सब काम बंद हो गए, जुआ बंद हो गया, होटल का मालिक, मैनेजर, सारे लोग भाग कर भीड़ लगा कर खड़े हो गए कि महाराज, याद रखना हमें, भूल मत जाना।
उस राजकुमार ने कहा, सबसे पहले तो मेरे स्नान का इंतजाम करो, सुंदर वस्त्रों का इंतजाम करो, फिर मैं वापस चलता हूं। एक क्षण में दस साल ऐसे शून्य हो गए, जैसे कि रहे ही न हों! और एक क्षण में लोगों ने देखा कि उसकी आंखें कुछ और, भिखमंगे की आंखें कुछ और, सम्राट की आंखें कुछ और! अभी कपड़े वही भिखमंगे के थे, मगर उसके भीतर से एक ज्योति, एक आभा प्रकट होने लगी। उसकी चाल बदल गई! उसके खड़े होने का ढंग बदल गया! वह जब सिंहासन पर बैठा तो आदमी ही और था। कोई सोच ही नहीं सकता था कि यह दस साल तक भीख मांग रहा था। दरिया की बात अगर सुनाई पड़ जाए तो ऐसी ही घटना तुम्हारे भीतर घट सकती है--घटनी चाहिए।
हंस-वंस सुख पावही, कोई ग्यानी करै विचार। तुम में जो थोड़े बोधपूर्ण होंगे, वे ही समझ पाएंगे, वे ही विचार कर पाएंगे। प्रेमतत्तु जा उर बसै।
तुम्हारे हृदय में ही वह तत्व बसा हुआ है, प्रेम का, जो अंततः परमात्मा को उघाड़ देता है। तुम्हारे भीतर ही प्रेम की किरण है जो परमात्मा के सूर्य से तुम्हें जोड़ देगी। सुनो! गुनो! दरिया कहै सब्द निरबाना।
जो सत सब्द बिचारै कोई। अभय लोक सीधारै सोई।।
विचार करते ही अभय लोक के द्वार खुल जाते हैं। यह आघात पड़ते ही एक क्षण में महाक्रांति हो जाती है। कोई परमात्मा को साधना थोड़े ही है, सिर्फ हमने विस्मरण किया है, याद करना है इसीलिए तो सारे संतों ने कहा हैः नाम-स्मरण। नाम-स्मरण में बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। उसका कुल अर्थ इतना ही है कि तुम्हें कुछ करना नहीं है, सिर्फ याद करनी है, सिर्फ पुकार करनी है। तुम्हें बदलना नहीं है अपने को तुम हो तो वही।
यह सम्राट के बेटे को कुछ बदलना पड़ा अपने को? यह था तो सम्राट का बेटा
ही सिर्फ भूल गया था, विस्मृति हो गई थी।
और विस्मृति हो जाती है, बड़ी आसानी से हो जाती है। क्योंकि चारों तरफ विस्मृत लोग हैं। उन्हीं से तुम जुड़े हो। सत्संग का तो कहां सौभाग्य! कभी- कभार बड़ी मुश्किल से किसी सौभाग्यशाली को सत्संग मिलता है! नहीं तो भीड़-भाड़ है उन्हीं लोगों की--तुम्हारे जैसी ही लोगों की!
मैंने सुना है, एक हंस जा रहा था उड़ा हुआ अपनी हंसनी के साथ, कि रात थक गया था, एक वृक्ष पर बसेरा किया,। कौवे का दिल आ गया उसकी हंसनी पर। स्वाभाविक। सोचा होगा कौवे नेः हेमामालिनी को कहां उड़ाए ले जा रहे हैं! बच्चू, अब बच कर निकल न सकोगे! कौओं का ही डेरा था उस वृक्ष पर। उसने बाकी कौओं को भी कहा कि इसको निकलने न देंगे! ऐसी प्यारी चीज कहां लिए जा रहा है!

सुबह हुई, जब हंस उड़ने लगा, तो कौवे ने कहा--ठहरो भाई! वह जो कौआ नेता था, कौओं का, उसने कहा--मेरी पत्नी को कहां लिए जा रहे हो? हंस ने कहा, तुम्हारी पत्नी! होश से बात करो! यह हंसनी है, तुम कौवे हो, ... कौवे ने कहा, होश से तू बात कर! क्या काले आदमी की गोरी और नहीं होती? और यह रंगभेद नहीं चलेगा। यह वर्णभेद नहीं चलेगा। किस जमाने की बातें कर रहा है? कोई मनु महाराज के जमाने की बातें कर रहा है? माना कि गोरी है, मगर पत्नी मेरी है! और न हो तो पंचायत बुला ली जाए।
तब जरा हंस डरा, क्योंकि पंचायत! तो वे ही कौवे ही थे, वहां तो कोई और हंस तो था नहीं। पंचायत तो तय कर दे। कौओं की पंचायत जुड़ी। और कौओं की पंचायत ने तय कर दिया कि पत्नी कौवे की है। हंस जार-जार रो रहा है! मगर करे क्या? भीड़-भाड़ कौओं की!
तुम्हारे चारों तरफ भी कौओं की भीड़-भाड़ है। उनका सारा उपाय तुम्हें विस्मरण करा देने का है। वे खुद भी भूले हैं, वे तुम्हें भी भूला रहे हैं। भीड़ से जागना पड़ता है। और जो भीड़ से जाग जाए, वही संन्यासी है। और भीड़ के बड़े सम्मोहन हैं। और भीड़ के पास बड़ी ताकत है। बना तो नहीं सकती भीड़ तुम्हें, लेकिन मिटा सकती है। वही उसकी ताकत है।
भीड़ बचपन से ही हर बच्चे को पकड़ लेती है और उसको कौआ बनाने में लग जाती है। लीपो, पोतो, संस्कार दे दो--कोई हिंदू कौआ, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन, कोई बौद्ध--सबको बना दो अलग-अलग ढंग के कौवे। कौन तुम्हें याद दिलाए कि तुम हंस हो! और तुम्हारे ऊपर इतना रंग पोता, इतनी कालिख पोती जाती है कि तुम अगर दर्पण के सामने भी पड़ जाओ तो भी तुम यही सोचोगे कि कौआ ही हूं, यह कोई हंस के ढंग हैं!
तुम्हारे सारे संस्कार अज्ञानियों के द्वारा दिए गए हैं। इसीलिए तो दरिया जैसे व्यक्ति जब तुम्हें पुकारते हैं तब भी तुम्हें याद नहीं आती। बुद्ध तुम्हें पुकारते हैं और याद नहीं आती। तुम्हारे द्वार पर ढोल बजाए जाते हैं और तुम्हें सुनाई नहीं पड़ते। नहीं कि सुनाई नहीं पड़ते, सुनाई भी पड़ जाते हैं तो भी भरोसा नहीं आता कि मैं और हंस, मैं और मानसरोवर का यात्री! नहीं-नहीं, यह बात किसी और के लिए कही जा रही होगी। यह मेरे लिए सच नहीं हो सकती। मैं तो अपनी कालिख जानता हूं।
मैं भी तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी कालिख झूठी है। जरा ध्यान में नहाओ, बह जाएगी। तुम्हारे भीतर का हंस निखर आएगा।
जो सत सब्द बिचारै कोई। अभय लोक सीधा सोई।।
तुम्हें सोचना ही होगा। जो जाग गए हैं, उनके बचन तुम्हें सोचने ही होंगे। और ध्यान में रखना, जो जाग गए हैं, बहुत थोड़े हैं और जो सोए हैं, वे बहुत ज्यादा है। और सत्य का कोई निर्णय लोकतंत्र से नहीं होता। सत्य का निर्णय कोई वोट से नहीं होता। अगर कहीं वोट से निर्णय होते तो बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट कभी के हार चुके होते। कौओं की भीड़ ने हंसों की सब हंसिनियां छीन ली होती।
सत्य का निर्णय वोट से नहीं होता। सत्य किसी के मत और भीड़ पर निर्भर नहीं होता। सत्य तो सत्य है; एक कहें कि अनेक कहें, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। और अक्सर तो एक ही कहेगा। अनेक नहीं कह सकते। क्योंकि एकाध ही कोई ध्यान को उपलब्ध होता है। अनेकों के विपरीत, अनेकों से मुक्त होकर, एकाध ही कोई मानसरोवर की यात्रा कर पाता है। और जिन्होंने यात्रा की है, उनके वचनों पर विवाद मत करना, उनके वचनों पर विचार करना।
विवाद और विचार का फर्क समझ लेना।
विवाद का अर्थ होता हैः पहले ही पक्षपात तय किए हुए हैं, उन्हीं के अनुसार सोचना। विचार का अर्थ हैः निष्पक्ष होकर सुनना, निष्पक्ष होकर सोचना। विचार का अर्थ हैः खुले होकर, इस बात की संभावना मान कर कि हो सकता है दरिया ठीक कहते हों!
दरिया को पूरा-का पूरा ध्यान देकर सुनना।
जो सत सद बिचारै कोई। अभय लोक सीधारै सोई।।
कहन सुनन किमिकिर बनि आवै। सत्तनाम निजु परचै पावै।।

और बड़ी कठिनाई है कहने की, दरिया कहते हैं। यद्यपि कह रहा हूं--दरिया कहै सब्द निरबाना--लेकिन कठिनाई बड़ी है, क्योंकि शब्दों में बंधता नहीं वह अनुभव। कहन सुनन किमिकरि बनि आवै। किस तरह कहू उसे? तुम्हें चेताऊं? सोए को कैसे जगाऊं? बहरे को कैसे सुनाऊं? अंधे को कैसे दिखाऊं? यह सत्तनाम तो कुछ ऐसी बात है कि स्वयं परिचय हो तो ही परिचय होता है।
इसलिए कोई अगर यह सोचता हो कि जब सदगुरु मुझे ठीक-ठीक समझा देगा, पूरा- पूरा समझा देगा, तब मैं उसके साथ चलूंगा--तो फिर हो गई यात्रा! फिर यात्रा नहीं हो सकेगी। सदगुरु के साथ पूरी-पूरी समझ का अगर किसी ने पहले से ही आग्रह रखा, तो यह आग्रह पूरा किया ही नहीं जा सकता।
फिर सदगुरुओं के साथ यात्रा कैसे होती है?
दीवाने चाहिए, परवाने चाहिए। अब परवाना कोई शमा से यह थोड़े ही पूछता
है कि पहले सिद्ध कर कि तू शमा है; कि पहले सिद्ध कर तुझमें मैं जलूंगा तो इससे मेरा पुनर्जन्म होगा; कि पहले सिद्ध कर कि क्यों आऊं तेरे पास, क्या है तेरे पास देने को, मुझे तो सिर्फ मृत्यु दिखाई पड़ती है, अमृत का तो मुझे कुछ अनुभव नहीं होता।
सदगुरु तो शमा है। शिष्य जब उसके पास आता है तो किसी बड़े चुंबकीय आकर्षण में खिंचा चला आता है। यह कोई सिर्फ चिंतन-मनन की बात नहीं है। चिंतन-मनन के पार कोई उसके हृदय को पकड़ लेता है, मथ डालता है। जैसे कोई किसी के प्रेम में गिर जाता है, ऐसे ही सदगुरु के प्रेम में गिरे, तो ही यात्रा शुरू हो सकती है। सदगुरु के साथ संबंध जोड़ना बस थोड़े से हिम्मतवर पागलों की बात है, मस्तों की बात है।
दिल ने रग-रग से छिपा रक्खा है राजे-इश्क दोस्त।
जिसको कह दे नब्ज ऐसी मेरी बीमारी नहीं।।
नब्जों से पहचानी जा सकें जो बीमारियां, प्रेम की बीमारी ऐसी बीमारी नहीं। औषधियों से निजाक इलाज हो सके, प्रेम की बीमारी ऐसी बीमारी नहीं। इसका इलाज तो सिर्फ समाधि से होता है, औषधि से नहीं। यह बीमारी तो बड़ी आंतरिक है। और बीमारी भी बीमारी नहीं, सौभाग्य है। धन्यभागी हैं वे जिन्हें किसी सदगुरु के साथ प्रेम का नाता जुड़ जाता है, जो सब छोड़-छाड़ उसके साथ हो लेते हैं, क्योंकि परमात्मा उन्हीं का है, और परमात्मा का राज्य भी उन्हीं का है।
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पार।।
सदगुरु के पास बैठ कर करना क्या होता है? साक्षीभाव। बैठना, देखना सदगुरु को--कैसे उठता, कैसे बैठता, कैसे बोलता, कैसे नहीं बोलता? उसकी आंखों में झांकना। उसके हाथ में हाथ देना। उसके पैरों मग सिर रखना। उसकी हवा को पीना। हां, उसकी हवा को श्वासें में भीतर ले जाना। क्योंकि उसकी हवा में भी कुछ पराग है, जो श्वासों के माध्यम से तुम्हारे हृदय की भी जाकर आंदोलित करेगी।
सत्संग का यही अर्थ होता है।
लीजै निरखि भेद निजु सारा। खूब निरखो, खूब पीओ! समुझि पैर तब उतरै पारा। और तब एक दिन समझ पड़ेगी कि यह आदमी उस पार जा चुका है, हम इस पार है। और जिस दिन यह समझ आ जाएगी यह आदमी उस पार जा चुका है, हम इस पार हैं--उसी क्षण छलांग लग जाती है। उसी क्षण संन्यास घटता है।
पहले आदमी आता है विद्यार्थी की भांति--जिज्ञासा से भरा हुआ। फिर शिष्य बनता है; जिज्ञासा शांत हो गई, अब अभीप्सा जगी। अब शब्दों में रस नहीं है, अब तो गुरु की निःशब्द उपस्थिति में रस है। और फिर भक्त बनता है; छलांग ले लेता है; चल पड़ता है उस अज्ञात सागर के अज्ञात तट की खोज में। पास में नाव नहीं, पतवार नहीं--बस एक भरोसा है, एक श्रद्धा है। लेकिन श्रद्धा ही तो नाव है, श्रद्धा ही तो पतवार है।
दिए से मिटेगा न मन का अंधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!
बहुत बार आई गई यह दिवाली
मगर तक जहां था वही पर खड़ा हैं,
बहुत बार लौ जल-बुझी पर अभी तक

कफन रात का हर चमन पर पड़ा है,
न फिर सूर्य रूठे, न फिर स्वप्न टूटे ऊषा को जगाओ, निशा को सुलाओ!
दिए को मिटेगा न मन का अंधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!
सृजन शांति के वास्ते है जरूरी
कि हर द्वार पर रोशनी गीत गाए
तभी मुक्ति का यज्ञ यह पूर्ण होगा, कि जब प्यार तलवार से जीत जाए, घृणा बक्ष रही है, अमा चढ़ रही है मनुज को जिलाओ, दनुज को मिटाओ! दिए से मिटेगा न मन का अंधेरा धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!
बड़े वेगमय पंख हैं रोशनी के
न वह बंद रहती किसी के भवन में, किया कैद जिसने उसे शक्ति छल से स्वयं उड़ गया वह धुआं बन पवन में, न मेरा तुम्हारा, सभी का प्रहर यह इसे भी बुलाओ, उसे भी बुलाओ!
दिए से मिटेगा न मन का अंधेरा धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!
मगर चाहते तुम कि सारा उजाला रहे दास बन कर सदा को तुम्हारा, नहीं जानते फूंस के गेह में पर बुलाता सुबह किस तरह से अंगारा, न फिर अग्नि कोई रचे रास इससे सभी रो रहे आंसुओं को हंसाओ!
दिए से मिटेगा न मन का अंधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!
बड़ा महाउपक्रम करना है!
दिए से मिटेगा न मन का अंधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!
ऐसा महा उपक्रम करना है, जैसे कोई जमीन को उठो, गगन को झुकाए! यह कोई छोटे-मोटे सूर्यों से मिटने वाला अंधेरा नहीं है। यह बाहर की दीवालियां काम नहीं आएंगी। लेकिन आदमी बड़ा बेईमान है। भीतर की दीवालियां से बचने के लिए बाहर की दीवालियां मनाता है।
जैर-शास्त्र कहते हैंः दीवाली का जन्म हुआ महावीर की महा उपलब्धि के कारण। दीवाली की अमावस की रात महावीर को परम ज्ञान हुआ, संबोधि मिली, समाधि मिली, भीतर का दीया जगा, सूरज ऊगा; अनंत-अनंत काल का अंधेरा कटा, रात कभी, प्रभात हुआ। लेकिन हमने क्या किया? हमने बाहर मिट्टी के दीये जला लिए--उत्सव में। अगर महावीर से सच में कोई लगाव हो तो भीतर का दीया जलाओ, बाहर की दीवाली से क्या होगा? महावीर ने कोई बाहर का दीया नहीं जलाया था। सुबह हो जाने पर, अमावस की दीवाली की रात के बीत जाने पर जैन-मंदिरों में निर्वाण लाडू चढ़ाए जाते हैं। निर्वाण-लाडू! निर्वाण के लडू! क्योंकि महावीर को निर्वाण उपलब्ध हो गया, बांटो लडू! महावीर को तो भीतर अमृत का स्वाद मिला और तुम बूंदी के लडू बांट कर कर तृप्त हो हरे हो! और उनका नाम दे रहे हो--निर्वाण-लाडू! थोड़ी शर्म तो खाओ! थोड़ा संकोच तो करो! थोड़ा शर्माओ! महावीर का जागा भीतर का सूरज, तुमने जला दिए बाहर दीयो। महावीर को मिला भीतर की मिठासबसा अमृत और तुम निर्वाण-लाडू बांट रहे हो! तुम कब तक अपने को धोखा दिए जाओगे? नहीं...
दिए से मिटेगा न मन का अंधेरा
धरा को उठाओ, गगन को झुकाओ!

कुछ बड़ा उपक्रम करना होगा। क्या है बड़ा से बड़ा उपक्रम इस जगत में? धरा
को उठाने और गगन को झुकाने से बड़ी बात इस दुनिया में क्या है? अपने को मिटाओ! यह मैं-भाव जाने दो! यही पर्दा है। यही ओट है। यही दीवाल है। इसे गिरा दो और रोशनी ही रोशनी हो। रोशनी तुम्हारा स्वभाव है।
लीजै निरखि भेद निजु सारा समुझि परै तब उतरै पारा।।
कंचल डाहै पावक जाई। ऐसे तन कै डाहहु भाई।।
और जैसे सोने को डालने देते हैं आग में और कंचन हो जाता है, कुंदन हो जाता है, शुद्ध हो जाता है। ऐसे ही अपने को भी आग में डालना सीखो।
कंचल डाहै पावक जाई। ऐसे तन कै डाहहु भाई।।
ऐसे ही अपने को भी जलाना होगा। परवाना बनो!
लेकिन हम ऐसे कुशल हैं, हमने मंदिर बना लिए झूठे, मस्जिदें बना लीं झूठी--वहां जाकर सिर भी पटक आते हैं, अहंकार साथ ही ले आते हैं वापिस। पूजा भी कर लेते हैं, प्रार्थना भी कर लेते हैं, नमाज भी पढ़ लेते हैं और झुकता नहीं भीतर कोई भी--जरा नहीं झुकता।
मैं राजस्थान यात्राओं पर जाता था; तो अजमेर पर काफी देर गाड़ी पड़ी रहती थी, गाड़ी बदलनी पड़ती थी। सांझ का वक्त, और अजमेर, और बहुत से मुसलमान यात्री भी होते। वे जल्दी-जल्दी अपनी मुसल्ला बिछा कर प्लेटफार्म पर नमाज में लग जाते। सांझ की नमाज। मैं भी घूमता देखता रहता। मैं बहुत हैरान हुआ? वे नमाज भी पढ़ते जाते, पीछे लौट-लौट कर भी देखते जाते कि गाड़ी कहीं छूट तो नहीं रही है। मेरे ही डिब्बे में एक सज्जन थे, उनसे थोड़ी मुलाकात भी हो गई थी, साथ ही चल रहे थे कोई दस-बारह घंटों से। वह अपना मुसल्ला बिछाए नमाज कर रहे थे। बीच-बीच में लौट-लौट कर देखते जा रहे थे। मैं उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया और उनके सिर को मैंने सीधा कर दिया! उस समय तो कुछ नहीं बोले, नाराज तो बहुत हो गए, भनभना गए--कि नमाज में किसी का सिर... ! जल्दी से नमाज पूरी की और कहा, आप आदमी कैसे हैं? आपने मेरा सिर क्यों जोर से घुमा दिया? इतनी जोर से घुमाया है कि मेरी गर्दन में दर्द हो रहा है! और नमाज में ऐसा किया जाता है?
मैंने कहाः तुम नमाज में जो कर रहे थे वह गलत था कि मैंने जो किया वह गलत था? तुम पीछे लौट-लौट कर क्या देख रहे थे? तुम नमाज पढ़ रहे थे कि गाड़ी छूट तो नहीं गई यह देख रहे थे? यह दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती। अगर गाड़ी ही छुटने का डर है तो नमाज ही किसलिए पढ़ रहे हो! और अगर नमाज में डूब गए हो तो एक गाड़ी हो तो क्या हजार गाड़ियां छूट जाएं, क्या ले जाएंगे! मगर यह कैसी नमाज!
मैंने उन सज्जन से कहा कि अकबर नमाज पढ़ने बैठा है एक जंगल में--भटक गया है, शिकार करके लौट रहा है, रास्ता नहीं मिल रहा है, सांझ हो गई, नमाज पढ़ रहा है। और एक स्त्री--अल्हड़ युवती--भागी हुई आई--उसको धक्का देती हुई कि वह धक्के में गिर भी गया, भागती ही चली गई। बड़ा नाराज हुआ अकबर। एक तो सम्राट, दूसरा नमाज पढ़ रहा हो! जब वह स्त्री वापस लौटी तो अकबर ने कहा कि सुन बदतमीज औरत! तुझे यह पता नहीं कि मैं सम्राट हूं? और सम्राट को भी जाने दे, कोई भी नमाज पढ़ रहा हो, प्रार्थना में लीन हो, उसके साथ यह दुर्व्यवहार? तूने इतने जोर से मुझे धक्का दिया कि मैं लुढ़क ही गया! तेरे पास क्या उत्तर है?
उस स्त्री ने कहाः मुझे क्षमा करें! लेकिन मुझे याद ही नहीं कि आप बीच में भी थे, कि आप लुढ़के भी! लुढ़के होंगे तो आप ठीक कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे, मगर मुझे याद नहीं है। मेरा प्रेमी आ रहा था, मैं उससे मिलने जा रही थी। मैं तो सिर्फ एक बात आपसे पूछती हूं कि मेरे प्रेमी के कारण मुझे आप दिखाई ही नहीं पड़े और आप अपने प्रेमी से मिलने चले थे और आपको मेरा धक्का अनुभव में आ गया! यह कैसी नमाज मेरा तो साधारण सा प्रेमी है, उसके लिए दीवानी हुई भागी जा रही थी, क्योंकि वर्षा भर बाद वह लौट रहा है शहर से, राह के किनारे उसका स्वागत करना है। तो मुझे तो कुछ याद नहीं, मैं बेहोश थी। मुझे पता नहीं कब आप आए, कब आप बीच में पड़े, कब आपको धक्का लगा। क्षमा करें मुझे! मगर इतना मैं याद दिलाऊं कि आप किस तरह अपने परम प्रेमी से मिलने गए थे कि मेरा धक्का लगा और आपको याद रहा!

अकबर ने लिखवाया है अपने संस्मरणों में कि स्त्री की बात मुझे फिर कभी भूली नहीं। मेरी नमाज झूठी थी।
प्यारे से मिलने चले हैं, फिर क्या याद! मगर कौन प्यारे से मिलने चला है? हमारी दीपावलियों झूठी, हमारे निर्वाण-लाडू झूठे, मंदिर-मस्जिद, पूजा के उपक्रम झूठे। हमने सब ऊपर-ऊपर के आयोजन कर लिए हैं। इतने सस्ते से नहीं होगा। स्वयं को मिटाने की कीमत चुकानी पड़ती है।
जो हीरा धन सहे घेना। होहि हिरंबर बहुरि न फेरा।।
जो हीरा बहुत काट-पीट सहता है... जो हीरा घन सहे घनेरा... जिस पर खूब घन पड़ते हैं... होहि हिरंबर बहुरि न फेरा... वही शुद्ध हीरा हो जाता है। फिर उसे वापस नहीं लौटना पड़ता।
मिटो, क्योंकि मिट कर ही तुम हो सकोगे। यह संसार अग्नि है, जलो। यह संसार घनों की चोट है, सहो। यह संसार परीक्षा है, इससे गुजरे तो फिर लौटना न पड़ेगा। फिर उस मालिक में लीन हो जाओगे।
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।।
अगर इतनी हिम्मत हो, तो मूल तुम्हारे हाथ में आ जाए। गहै मूल तब निर्मल बानी। और फिर तुम्हारे भीतर से एक झरना फूटे निर्मल वाणी का!
तुम वेद बनो, तुम कुरान बनो। तुम्हारे भीतर से आयतें उठें! और तुम्हारे भीतर से ऋचाएं जगें! गहै मूल तब निर्मल बानी। और जिसके भीतर मूल आ गया, उसके भीतर पत्ते निकलेंगे, फूल लगेंगे। उसके भीतर अपूर्व का जन्म होगा। उसके शब्द-शब्द में सत्य की भनक होगी।
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।।
और जिसको भीतर अनुभव हो गया उसे फिर कहीं और मंदिर मग किसी मूरत को नहीं खोजना पड़ता। न वह काशी जाता न काबा। दरिया दिल बीच सुरति समानी! उसके तो भीतर ही याद आ गई। उसके भीतर तो स्मरण का दीया जल गया, सुरति जग गई।
सुरति शब्द प्यारा है। जन्मा बुद्ध के साथ, पूरा हुआ नानक के साथ।
बुद्ध ने जो शब्द उपयोग किया था, वह था--सम्मासति। संस्कृत में उसका रूप है--सम्यक स्मृति। फिर सम्मासति प्रयोग होते-होते घिसते-घिसते लोकभाषा में सुरति हो गया। सुरति का अर्थ होता हैः याद, प्रभु की याद।
दरिया दिल बिच सुरति समानी।
मिटो तो तुम्हारे भीतर ऐसा अहर्निश नाद उठे। सोते-जागते उपनिषद गूंजें तुम्हारे भीतर।
परवाने की बिसात ही क्या थी फना हुआ।
देखा तो शमअ भी न रही अपने हाल में।।
और तुम मिटोगे तो तुम शह मत सोचना कि परमात्मा भी चुप रह जाता है।
परवाने की बिसात ही क्या थी फना हुआ।
वह तो ठीक था, परवाना ही था, उसकी सामर्थ्य ही क्या थी! बूंद ही थी, सागर में खो गई। परवाना लेकिन जब शमा पर जल उठता है; शमा भी फड़क उठती है, लपट उठती है।
परवाने की बिसात ही क्या थी फना हुआ।
देखा तो शमअ भी न रही अपने हाल में।।
तो शमा भी डोल जाती है, नाच जाती है। और तुम्हारे भीत रजब शमा का नाच होता है तो कृष्ण की वीणा बजती है, मीरा पैरों में घूंघर बांध कर नाचती है, बुद्ध बोलते, उपनिषद रचे जाते, कुरान गूंजता, बाइबिल जन्मती। यह अलग-अलग ढंग हैं उस शमा के, जो किसी परवाने की याद में वर्षा कर देती है जगत के ऊपर।
एक परवाना मिटता है, अनंतों के ऊपर बूंदाबांदी हो जाती है।
पारस शब्द कहा समझाई। सतगुरु मिलै त देहि दिखाई।।
पारस पत्थर को छू जाए तो सोना हो जाता है। यह कहे-सुने की बात नहीं है।
लाख कहते रहो, लाख कहते रहो, सोना नहीं होगा लोहा तो नहीं होगा। और पारस पत्थर कितनी ही समझाए कि मुझे छूने से तुम सोना हो जाओगे तो भी नहीं हो जाएगा। पारस पत्थर के पास आना हो लोहे को। इस पास सरकने का नाम ही शिष्यत्व है।
पारस सब्द कहा, समुझाई। सतगुरु मिलै त देहि दिखाई।।

और जब तक सदगुरु न मिल जाए तब तक दिखाई नहीं पड़ता। आंखें तुम्हारे पास हैं, रोशनी तुम्हारे पास है; मगर आंख और रोशनी का संबंध जोड़ने का कोई उपाय तुम्हारे पास नहीं है।
क्षणभर की पहचान
जगत में जीने का सामान दे गई।
पहले भी पथ था, पंथी थे,
पर पथ से अनुरिक्त नहीं थी।
तुम क्या मिले कि अनजाने ही मिलन-विरह का ज्ञान मिल गया, जिऊं किसी के लिए या मिटूं? गौरव मिला, गुमान मिल गया। सहसा फूट पड़ी मानास में
जो सरिताएं रुद्ध रही हैं,
और बहुत सी बातें हैं
भाषा में जिनके शब्द नहीं हैं पाने की अभिलाष
स्वयं को खोने का वरदान दे गई। भणभर की पहचान
जगत में जीने का सामान दे गई। दीपक सहज, ज्योति जन-जन में मिलना कठिन स्नेह की बाती, स्वर्ग सुलभ हो सकता है
पर पाना कठिन राह का साथी।
जो दे ऐसी शक्ति कि
पग-पग आदि-अंत की सीमा नापे, जिसकी छाया में शूलों का
भय, फूलों का मोह न व्यापे।
बिना तुम्हारे, दुर्बल मिट्टी की
महिमा उदबुद्ध न होती,
जीवन-मरण, सतत-परिवर्तन
की सार्थकता सिद्ध न होती।
पग की प्रथम रुझान, पंथ में मिटने के अरमान दे गई।
क्षण-भर की पहचान, जगत में जीने का सामान दे गई। सदगुरु से पहचान हो जाए तो सदगुरु सेतु है। तुम्हारे और तुम्हारे बीच--सदगुरु सेतु है।
तुम्हें जोड़ देता है। तुम बाहर भी हो और भीतर भी हो, मगर तुम्हारे बाहर और भीतर के बीच तालमेल टूट गया है। उसी तालमेल को बिठा देता है।
सतगुरु सोई जो सत्त चलावै। हंस बोधि छपलोक पठावै।।
वही है सदगुरु जो तुम्हारे भीतर सत्य की अभीप्सा को सक्रिय कर दे। जो तुम्हारे भीतर सत्य को पाने की प्यास जला दे। जो तुम्हारे भीतर एक ऐसी अभीप्सा बन जाए, एक ऐसा बवंडर कि फिर तुम जैसे थे वैसे ही न रह सको। हंसव बोधि छपलोक पठावै, तुम्हें याद दिला दे मानसरोवर की, कि तुम हंस हो, कि मोती चुगो, कि क्या कूड़े-करकट में पड़े हो! जो तुम्हें तुम्हारी महिमा से अवगत करा दे।
क्षण भर की पहचान
जगत में जीने का सामान दे गई।
पहले भी पथ था पंथी थे,
पर पथ से अनुरिक्त नहीं थी,
बिना तुम्हारे इस जीवन से
मोह न था, आसिक्त नहीं थी। तुम क्या मिले कि अनजाने ही मिलन-विरह का ज्ञान मिल गया, जीऊं किसी के लिए या मिटूं? गौरव मिला, गुमान मिल गया।

सहसा फूट पड़ीं मानस में
जो सरिताएं रुद्ध रही हैं,
और बहुत सी बातें हैं
भाषा में जिनके शब्द नहीं हैं।
पाने की अभिलाष
स्वयं को खोने का वरदान दे गई।
क्षण-भर की पहचान
जगत में जने का सामान दे गई।
एक क्षणभर को सदगुरु से आंखें चार हो जाएं--और क्रांति का महाक्षण आ पहुंचा!
दीपक सहज, ज्योति जन-जन में
मिलना कठिन स्नेह की बाती,
स्वर्ग सुलभ हो सकता है
पर पाना कठिन राह का साथी।
जो दे ऐसी शक्ति कि
पग-पग आदि-अंत की सीमा नापे, जिसकी छाया में शूलों का
भय, फूलों का मोह न व्यापे।
बिना तुम्हारे, दुर्बल मिट्टी की
महिमा उदबुद्ध न होती,
जीवन-मरण सतत-परिवर्तन
की सार्थकता सिद्ध न होती।
पग की प्रथम रुझान, पंथ में मिटने के अरमान दे गई।
क्षणभर की पहचान, जगत में जीने का सामान दे गई।
खोजो-खोजो सदगुरु को--कि जो तुम्हारे भीतर सत्य को गति दे दे; जो तुम्हारी बुझी-बुझी ज्योति को उकसा दे; जो तुम्हारे प्राणों को अनंत की अभीप्सा से भर दे; कि जो तुमसे कहे, पृथ्वी तुम्हारा घर नहीं, परदेश है--कि अपने देश को खोजना है; कि बिना अपने देश को खोजे न कभी कोई तृप्त होगा, न कभी कोई आनंदित होता है।
घर-घर ग्यान कथै बिस्तारा। सो नहिं पहुंचै लोक हमारा।।
ऐसे तो घर-घर कथाएं चल रही हैं... सत्यनारायण की कथा हो रही है घर-घर! घर-घर ग्यान कथै बिस्तारा, सो नहिं पहुंचै लोक हमारा। दरिया कहते हैंः याद रखना, यह घर-घर मग चलने वाली कथाएं--यह रामायण की कथा और यह सत्यनारायण की कथा--यह सुन-सुन कर तुम हमारे लोक तक न पहुंच सकोगे। हमारे लोक तक तो तुम तभी पहुंच सकते हो जब तुम्हें हमारे लोक तक पहुंचा हुआ कोई आदमी मिल जाए। यह पंडित-पुजारी जो दो कौड़ी में तुम खरीद लेते हो; यह पंडित-पुजारी जो तुम्हारी नौकर-चाकर हैं; यह पंडित-पुजारी जो तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी कर हरे हैं; : यह पंडित-पुजारी जिन्होंने केवल तुम्हें थोथा धार्मिक होने का भ्रम दे दिया है, इनसे काम नहीं होगा!
आंख अनकहनी कहानी कह गई,
सांस सूनापन सिसक कर सह गई।
बात जीवन भर तुम्हारी की मगर,
बात इतनी, बात आधी रह गई।
यह कथाएं सुनते रहो, आधी की बात आधी ही रहेगी; इससे बात पूरी होने वाला नहीं है।
हमारे बाग में गर प्यार के अंकुर नहीं फूटे, नहीं फूले,
हमारी शाख पै मनुहार के पंछी नहीं झूले, नहीं झूले,
न पोंछी डबडबाई आंख तारों की तमिस्राने,
मगर हम किरण की मुस्कान को फिर भी नहीं भूले, नहीं भूल।
किसी ऐसे आदमी से मिलों कि जिसका मुस्कान में तुम्हें परमात्मा की मुस्कान दिखाई पड़ जाए; कि जिसकी आंख में परमात्मा की थोड़ी सी झलक तुम्हारी पकड़ में आ जाए।
हमारे बाग में गर प्यार के अंकुर नहीं फूटे, नहीं फूले,

हमारी शाख पै मनुहार पंछी नहीं झूले, नहीं झूले,
न पोंछी डबडबाई आंख तारों की तमिस्रा ने,
मगर हम किरण की मुस्कान को फिर भी नहीं भूल, न भूले।
एक किरण की मुस्कान तुम्हें पकड़ ले कि तुम्हारा जीवन रूपांतरित होना शुरू हो जाएगा; फिर तुम वही नहीं हो सकते, जो रहे हो।
सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा।...
ऐसे तो वह घट-घट में समाया हुआ है, मगर कौन तुम्हें जगाए?
... आतम देव क निर्मल पूजा।।
कहीं और पूजा करने की जरूरत नहीं, अपने भीतर ही पूजा के थाल सजाओ।
मगर कौन तुम्हें चेताए?
बादहि जनम गया सठ तोरा।...
तुम तो व्यर्थ वाद-विवाद में ही जीवन गंवा रहे हो।
... अंत की बात किया तै भौरा।।
और मौत करीब आती जाती है। मौत तुम्हारी विवादों से न जीती जा सकेगी। मौत को जीतना हो तो अमृत से थोड़ी पहचान करो।
प.ढि-पढ़ि पोथी भा अभिमानी।...
और किताबें भी तुमने कम नहीं पढ़ी हैं, खूब पढ़ी हैं, लेकिन उन सबसे तुम्हारा अभिमान सघन हुआ है। पतंगे होकर तुम जल नहीं गए हो शमा पर, तुम्हारा अहंकार और मजबूत हो गया है।
पढ़ि-पढ़ि पोथी भा अभिमानी। जुगति और सब म्रिथा बखानी।।
लेकिन जब तक कोई तुम्हें कुंजी न दे-दे कोई तुम्हें युक्ति न दे-दे-- कोई जो जानता हो उस मार्ग पर और चला हो उस मार्ग पर, अपना हाथ तुम्हारे हाथ में न दे-दे, तब तक सब बातें व्यर्थ ही रहेंगी।
जौ न जानु छपलोक के मरमा। हंस पहुंचिहि एहि शटकरमा।।
जब तक तुम्हें कोई ऐसी व्यक्ति न मिल जाए तो मानसरोवर से आया है, तब तक तुम्हारे न मालूम कितने कर्म तुम करते रहो--सारे शटकर्म करते रहो--हंस न पहुंचिहि एहि शटकरमा, जौन न जानु छपलोक के मरमा।
सार सब्द जब दृढ़ता लावै।...
और जब तुम किसी की वाणी सुनोगे--जागे की, जाग्रत की--दरिया कहै सब्द निरबाना--जब कोई ऐसी चोट तुम्हारे हृदय पर कर जाएगा, तो दृढ़ता पैदा होती है, श्रद्धा पैदा होती है।
सारा सब्द जब दृढ़ता लावै। तब सतगुरु कुछ आप लखावै।।
और तभी उसी दृढ़ता से भरे हुए में सदगुरु ज्योति जगा सकता है।
दरिया कहै सब्द निरबाना। अबरि कहौं नहिं बेद बखाना।। बड़ी प्यारी बात कहते हैं, कि मैं अपनी कह रहा हूं, कोई वेद का बखान नहीं कर रहा हूं; किसी शास्त्र की टीका नहीं कर रहा हूं, स्वयं का अनुभव कह रहा हूं।
दरिया कहै सब्द निरबाना। अबरि कहौं नहिं बेद बखाना।।
वेदै अरुझि रहा संसारा। फिर-फिर होहि गरभ अवतारा।।
वेदों की तो चर्चा खूब चल रही है। बड़ी पंडित हैं, बड़े साहित्य-शोधी हैं! वेदों पर कितना लिखा जाता है! टीकाओं पर टीकाएं लिखी जाती हैं! और बस गिर-गिर पड़ते हैं वापस उसी गर्भ में। वही संसार जारी रहता है।
दरिया कहै सब्द निरबाना। अबरि कहौं नहिं बेद बखाना।
अपनी कहता हूं! वेद क्या कहते हैं, इसकी मुझे चिंता नहीं!
जानने वाले सदा अपना अनुभव कहते हैं। हालांकि मजे की बात यह हैः जो भी अपना अनुभव कहता है, सारे वेद उसके साक्षी हो जाते हैं। और जो सिर्फ वेदों की व्याख्या करते रहते हैं, वे वेदों के साथ अनाचार-व्यभिचार करते रहते हैं। क्योंकि उन्हें अनुभव नहीं है, वे जो भी अर्थ करोगे, गलत होंगे, अनर्थ होंगे।
एक ही बात, एक शास्त्र, एक ही ज्योति खोजनी है--वह तुम्हारे भीतर है।
और अब फिकरें छोड़ो! उस एक की तलाश करो।
फिक्रे राहत छोड़ कैठे हम तो राहत मिल गई।
हमने किस्मत से लिया जो काम था तदवीर का।।

प्रयास छोड़ो। अपने भीतर श्रद्धा में शांत होकर बैठ जाओ, तो जो काम तदवीर से होता है, वह सिर्फ तकदीर से हो जाता है। वह जो बड़े पुरुषार्थ से होता है, वह सिर्फ चुपचाप बैठ कर समर्पण से हो जाता है।
जीवन सर है; शास्त्रों ने जटिल कर दिया है। सत्य सुगम है; सिद्धांतों
ने बुरी तरह उलझा दिया है। वाद-विवाद में न पड़ो, ध्यान में उतरो! निर्वाण तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।
दरिया कहै सब्द निरबाना!

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
आठवां प्रवचन

मिटोः देखोः जानो

पहला प्रश्नः भगवान, क्या संतोष रख कर जीना ठीक नहीं है?

देवदास! संतोष और संतोष में बड़ा भेद है। एक तो है संतोष मरे हुए आदमी का, पराजित आदमी का, हारे हुए आदमी का। वह संतोष मालूम होता है लेकिन संतोष है नहीं। भीतर तो लपटें हैं असंतोष की, लेकिन बाहर से टीम-टाम किया, समझा लिया अपने को; जीत तो सके नहीं, हार को भी सहना कठिन मालूम होता है, तो हार को लीप-पोत लिया संतोष की भांति।
ईसप की पुरानी कहानी है कि एक लोमड़ी छलांग लगता है--बहुत छलांग लगाती है--अंगूर के गूच्छों को पाने के लिए; फिर नहीं पहुंच पाती, बहुत छोटी पड़ जाती है; हारी-थकी, उदास चित्त वापस लौटती है; पर कम से कम एक आश्वासन है कि किसी ने उसकी हार देखी नहीं; लेकिन तभी खरगोश पास की झाड़ी में छिपा बाहर आता है और कहता है, चाची, क्या हुआ? अंगूरों तक पहुंच न सकी? लोमड़ी ने कहा कि नहीं, पहुंच क्यों न सकूं, मेरी पहुंच के बाहर क्या है, चांद-तारे तोड़ लाऊं, लेकिन अंगूर खट्टे थे पहुंचने योग्य ही न थे।
एक तो यह संतोष है--जिन अंगूरों तक न पहुंच पाओ, उन्हीं खट्टा मान लेना। खट्टे मान लेने से कम से कम अहंकार को थोड़ी रक्षा मिल जाएगी। पहुंचने योग्य ही थे, तो पहुंच कर करते भी क्या?
मैं इसे संतोष नहीं कहता। और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने इसी को संतोष कहा है। यह संतोष का धोखा है, यह मिथ्या आत्मवंचना है, इससे सावधान रहना!
क्योंकि जो इस तरह के संतोष से घिर गया, उसे संतोष की परम अनुभूति कभी
भी न हो सकेगी। जो झूठे फूलों से राजी हो जाता है, उसकी बगिया में असली फूल नहीं खिलते हैं। फिर तुम समझाने की कितनी ही चेष्टाएं करो! समझाने में तुम बड़ी कुशलता भी दिखला हो, बड़ी तर्क युक्तता, बड़ी चतुराई।
मुझसे अब मेरी मोहब्बत के फसाने न कहो
मुझको कहने दो कि मैंने उन्हें चाहा ही नहीं
और वो मस्त निगाहें जो मुझे भूल गई
मैंने उन मस्त निगाहों को सराहा ही नहीं
मुझको कहने दो कि मैं आज भी जी सकता हूं
इश्क नाकाम सही जिंदगी नाकाम नहीं
उन्हें अपनाने की ख्वाहिश उन्हें पाने की तलब शौके-बेकार सही, सइ-ए-गम अंजाम नहीं
वही गेसू, वही नजरें, वही आरज वही जिस्म
मैं जो चाहूं तो मुझे और भी मिल सकते हैं
वो कंवल, जिनको कभी उनके लिए लिखना था
उनकी नजरों से बहुत दूर भी खिल सकते हैं
समझा लो, सांत्वना दे लो--
वो कंवल जिनको कभी उनके लिए खिलना था
उनकी नजरों से बहुत दूर भी खिल सकते हैं
फिर खिलते क्यों नहीं? फिर रो क्यों रहे हो? फिर यह लौट-लौट कर पीछे देखना क्या? फिर यह पश्चात्ताप क्यों?
वही गेसू, वही नजरें, वही आरज, वही जिस्म
मैं जो चाहूं तो मुझे और भी मिल सकते हैं
चाहने से तुम्हें रोकता कौन है? चाहो, पा लो! पर नहीं, यह सब तो मन को सांत्वना देने के उपाय हैं।
इस संतोष के मैं विरोध में हूं।
हां, जरूर एक और भी संतोष है। वह संतोष हारी हुई आकांक्षाओं का संतोष नहीं, समझी गई आकांक्षाओं का संतोष है। जब तुम किसी आकांक्षा को ठीक-ठीक समझ लेते हो, जब तुम देख लेते हो उसकी गहराई में और पाते हो कि उसके पूरे

होने में भी कुछ पूरा नहीं होगा, पूरी हो जाए तो भी तुम अधूरे रहोगे, मिल जाए यह संपदा तो भी तुम्हारी विपदा कम न होगी, और मिल जाए यह प्यारा तो भी तुम्हारी प्रीति की अभीप्सा पूरी न होगी, जब तुम्हारी दृष्टि ऐसी निखार पर होती है, तुम्हारा अंतर्बोध इतना स्पष्ट होता है, जब तुम्हारे चैतन्य के दर्पण में चीजें साफ-साफ जैसी है वैसी परिलक्षित होती हैं, तब एक और संतोष पैदा होता है। वह संतोष सांत्वना नहीं है, सत्य का साक्षात्कार है। जैसे कोई देख ले कि मैं रेते को निचोड़ कर तेल निकालने की कोशिश कर रहा था। एक संतोष है कि निचुड़ा नहीं तेल, तो तुम यह कहने लगे कि मुझे तेल की जरूरत न थी, इसलिए मैंने श्रम छोड़ दिया। और एक संतोष है कि तुमने गौर से देखा, पहचाना, परखा, साक्षी बने और पाया कि रेत में तेल होता ही नहीं, तुम लाख करो उपाय तो भी रेत से तेल निचुड़ेगा नहीं, ऐसी प्रतीति में, ऐसे साक्षात्कार में एक संतोष की वर्षा हो जाती है।
पहले संतोष में अभीप्सा का दमन है, दूसरे संतोष में अभीप्सा का विसर्जन है। दूसरे संतोष को साधना नहीं होता, समझना होता है। पहले संतोष को साधना होता है। पहले संतोष से आदमी साधु बन जाता है, दूसरे संतोष से आदमी प्रबुद्ध हो जाता है। साधु होने से बचना, बुद्ध होने से कम पर मत रुकना--वही तुम्हारी परम क्षमता है।
सत्य की छाया की तरह संतोष आना चाहिए। पिटे-कुटे, कपड़े झाड़-झूड़ कर किसी तरह अपने को मना लेना, समझा लेना, ऐसे नपुंसक, ऐसे लचर संतोष से सावधान रहना! इसी लचर संतोष ने इस देश के प्राणों को विषाक्त किया है। इसी लचर संतोष ने सारी दुनिया के तथाकथित धार्मिकों को एक थोथे धर्म में आबद्ध कर दिया है। न उनकी आंखों में रस है, न उनके प्राणों में गीत है, न उनके पैरों में नृत्य है--यह कैसा संतोष! यह संतोष गाता नहीं, यह संतोष नाचता नहीं, इस संतोष से फूल झरते नहीं--यह कैसा संतोष! वसंत आ गया और एक भी फूल नहीं खिलता, यह कैसा वसंत! वसंत आए तो प्रतीक भी तो हों, प्रमाण भी तो हों। हां, कोई वीणा बजे, कोई घूंघर नाचें, कोई मीरा उठा ले अपना इकतारा और हो जाए मगन, तो संतोष। मैं नाचते हुए संतोष का पक्षपाती हूं। मुर्दों की तरह, गोबर-गणेशों की तरह बैठ गए लोगों को मैं संतुष्ट नहीं मानता। सिर्फ हारे-थके लोग हैं, सिर्फ डरे हुए लोग हैं और इतना भी उनमें साहस नहीं है, इतनी भी हिम्मत नहीं है कि कह देते कि मैं हार गया, कि मैं कभी हार नहीं सकता। जी तो सुनिश्चित थी, मगर मैंने बीच से ही अपने पैर मोड़ लिए, जाने योग्य ही न माना मंजिल को।
जब तुम्हारे जीवन में साफ-साफ दिखाई पड़ने लगे कि यहां हर कामना, हर वासना, हर आकांक्षा पराजित होने को आबुद्ध है--क्योंकि हर कामना असंभव की कामना है--तब उस बोध की झलक, उस बोध का सरगम तुम्हारे भीतर बजेगा--उसका नाम संतोष। जब तुम देखोगे कि धन कितना ही पा लो, कुछ भी नहीं पाया जाता... सिकंदर भी तो खाली हाथ विदा होता है... खाली हाथ हम आते, खाली हाथ हम विदा होते, फिर यह बीच में थोड़ी देर के लिए हाथ को भर लेना और हाथ को भरने के धोखे खाने बेमानी हैं, अर्थहीन हैं। जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि कितना ही धन बाहर हो, भीतर की निर्धनता अछूती रह जाती है; एक बूंद भी भीतर की प्यास को नहीं मिलती--बाहर सागर लहराता है और भीतर प्यास लहराती है; बाहर जल का सागर, भीतर प्यास का सागर, और दोनों का कोई मिलन नहीं होता। कितने ही बड़े पदों पर चढ़ जाओ, कितनी ही ऊंची सीढ़ियों को चढ़ जाओ, लेकिन तुम जैसे हो वैसे के वैसे रहते हो। न कहीं कोई फूल खिलता, न कहीं कोई दीया जलता, न कोई रत्नों की खान हाथ आती है। जिस दिन तुम्हारे सारे जीवन के अनुभव एक बात कह जाते हैं कि यहां मिलने को कुछ भी नहीं है, दौड़ने को बहुत है; पाने को कुछ भी नहीं, दौड़-दौड़ कर जीवन रिक्त होता है, मिलता कुछ भी नहीं; जिस दिन इस बोध में तुम ठिठक जाते हो, बोध से, इस अनुभव से, इस सघन प्रतीति से तुम्हारे पैर रुक जाते हैं--नहीं कि तुम रोकते हो, नहीं कि तुम अपने को सम्हालते हो, नहीं कि तुम कसमें लेते हो कि अब धन की आकांक्षा न करूंगा, कि धन का त्याग करता हूं--यह तो मूढ़ों के काम हैं। जो कहता है, अब धन की आकांक्षा का त्याग करता हूं, वह यही कह रहा है कि संसार में कुछ था जिसका मैं त्याग कर रहा हूं। अभी बोध नहीं हुआ। जिसको बोध होता है, क्या छोड़ना,

क्या पकड़ना! जहां है, जैसा है, ठीक है। न यहां पकड़ने को कुछ है, न छोड़ने को कुछ है, तब तुम्हारे भीतर जो शांति की वर्षा होती है--उसका नाम संतोष। जिंदगी में सिर्फ मैंने की तुम्हारी कामना
और वह भी लालसा ऐसी कि जो पूरी न हो।

विश्व ने मांगी जगत की संपदा
और मैंने स्नेह के दो-चार कण,
सत्य ने मुझको कहा खोटा-खरा
मैं रहा पर जोड़ता टूटे सपने।
जिंदगी में सिर्फ मैंने की तुम्हीं से याचना। और वह लालसा ऐसी कि जो पूरी न हो।

तन मिले इतने कि जो संभले नहीं
पर न मांगे भी तुम्हारा मन मिला,
बे-कहे तो बाग सारा हंस दिया
पर जिस चाहा सुमन वह अनखिला।
मैं तुम्हें पाने बहुत से रूप धर क्या-क्या बना और वह भी लालसा ऐसी कि जो पूरी न हो।
मैं बहुत कुछ आस्तिक जैसा न था
पर तुम्हारी खोज में मंदिर गया,
कुछ पता शायद बताए इसलिए
मैं नर्क तक के चरण पर गिर गया।
यों तुम्हारे बोल सुनने के लिए क्या-क्या सुना
और वही भी लालसा ऐसी कि जो पूरी न हो।
यहां कोई लालसा पूरी होती नहीं। न हुई है, न होगीः लालसा का वह स्वभाव नहीं। इस स्वभाव का बोध जिसे हो जाता है कि मांगों कि भिखमंगे ही रहोगे, कि खोजो कि कभी नपा सकोगे, कि दौड़ो कि हार निश्चित है; जिसे यह प्रतीतियां सघन हो जाती हैं, वह ठहर जाता, रुक जाता, दौड़ गिर जाती; वासना, कामना का जाल अपने-आप हाथ से छुट जाता है। और उस ठहरे हुए क्षण में, उस विश्राम की घड़ी में जो न कभी सोचा था, जो न कभी मांगा था, जो न कभी सपना देखा था, वह सब उतर आता है। परमात्मा आता है। मोक्ष उतर आता है। मोक्ष की छाया है संतोष!

दूसरा प्रश्नः भगवान, इटली के नये वामपक्ष (न्यू लेफ्ट) के अधिकांश नौजवान आपसे संबंधित होते जा रहे हैं। आप क्या इसे वामपक्ष का विकास मानेंगे, या अपने प्रयोग के सही बोध की विकृति?

सिल्वानो! एक महत्वपूर्ण घटना मनुष्य के जीवन में घट रही हैं। वह महत्वपूर्ण घटना है कि सारी क्रांतियां जो आज तक की गई हैं, सफल हो गई हैं। क्रांति मात्र असफल हो गई है। और क्रांति के सफल होने की कोई संभावना शेष नहीं रह गई है। सब उपाय किए जा चूके, लेकिन क्रांति की मौलिक प्रक्रिया में कुछ भूल है।
रूप में क्रांति हुई, और क्षणभर को ऐसा लगा कि सूरज ऊगा कि अब मनुष्य
के जगत में फिर अंधेरा न होगा। लेकिन बस क्षण भर का आभास हुआ। झूठी सुबह थी वह, काम न आई, जल्दी ही गहन अंधकार हो गया--और इतना गहन अंधकार, जितना क्रांति के पहले भी न था। रूस और भी बड़ी गुलामी में पड़ गया। जिनसे सत्ता छीनी गई थी, वे इतने खतरनाक न थे; जिनके हाथ मग सत्ता आई, वे और भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध हुए। रूस का जार, इवान टैरिबल भी स्टैलिन के सामने ना कुछ साबित हुआ। जितने लोग स्टैलिन ने मारे... लाखों, निरीह, निहत्थे, निर्बल दीन-दरिद्र... जिनके लिए क्रांति हुई थी, वे ही क्रांति के द्वारा काटे गए। और रूस में एक सामंतवाद आया, जो जारशाही से भी ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि जारशाही के खिलाफ क्रांति हो सकती थी, इस नये सामंतवाद के सामने क्रांति भी नहीं हो सकती। आज पृथ्वी पर रूस जैसे देश बड़े कारागृह हैं, और कुछ भी नहीं।

क्रांतियां बार-बार असफल होती रही। क्या कारण था? कारण एक थाः जिनसे तुम लड़ोगे, उन जैसे ही हो जाओगे। यह उसका मूल आधार है क्रांति की असफलता का। तुम जिससे लड़ोगे, लड़ने की सारी की सारी तकनीक, ढांचा उससे ही तो सीखना पड़ेगा। दोस्ती तो किसी से भी कर लेना, इतना खतरा नहीं है, दुश्मनी सो-समझ कर करना! क्योंकि दुश्मन तुम्हें बदल देगा, तुम दुश्मन जैसे हो जाओगे। अगर दुश्मन बेईमान है, तो तुम्हें बेईमानी करनी पड़ेगी तो ही जीत सकोगे। अगर दुश्मन हत्यारा है, तो तुम्हें हत्यारा होना पड़ेगा, तभी तुम जीत सकोगे। नहीं तो दुश्मन से जीतने का कोई भी उपाय नहीं। इसलिए दुश्मन एक जैसे हो जाते हैं। जोरों से लड़-लड़ कर लेनिन और स्टैलिन की क्रांति क्रांति न रही, जोरों के ही सामंतवाद का हिस्सा हो गई।
और यह तो मैंने उदाहरण के लिए कहा, यही सारी क्रांतियों में हुआ है।
अभी इस देश में जयप्रकाश नारायण की तथाकथित थोथी क्रांति हुई। उसको
वह दूसरी क्रांति कहते हैं। लेकिन उस क्रांति का परिणाम क्या है? सत्ता उसी तरह के लोगों के हाथ में चली गई। सच तो यह है, और भी बदतर लोगों के हाथ में चली गई। कम से कम क्रांति के पहले सत्ता युवकों के हाथ में थी। क्रांति के बाद सत्ता मुर्दों के हाथ में चली गई। जयप्रकाश ने जरूर बड़ी क्रांति की--जो गड़ गए थे कभी के कब्रों में, उन सबको उखाड़ लिया। उन सबको शेरवानी इत्यादि पहना कर, अचकन इत्यादि पहना कर, गांधी टोपी लगा कर उन सबके हाथ में सत्ता दे दी।
क्रांतियां हारती रहती हैं। कारण? क्रांति को हारना ही पड़ेगा। इसलिए क्रांति शब्द में मुझे रस नहीं है। मैं एक शब्द तुम्हें देता हूंः विद्रोह। रेवलूशन, नहीं रिबेलियन।
फर्क क्या है?
क्रांति होती है सामूहिक। और जब भी तुम सामूहिक क्रांति करते हो, तुम्हें समूह की मान्यताएं, धारणाएं, अंधविश्वास स्वीकार करने होते हैं। बगावत, विद्रोह, रिबेलियन होता है व्यक्तिगत, निज का। तुम किसी से लड़ते नहीं, सिर्फ अपने को बदलते हो। इसलिए दुश्मन तुम्हें अपने ढांचे में नहीं ढाल सकता।
मेरा संन्यास विद्रोह है, रिबेलियन है, क्रांति नहीं, रिवलूशन नहीं।
मेरा संन्यासी इस बात की घोषणा है कि समाज गलत है, मैं गलत नहीं होऊंगा।
मैं अपने ढंग से जीऊंगा--फिर कोई भी परिणाम हो। जिंदगी रहे तो ठीक और जिंदगी जाए तो ठीक, मगर मुझे कोई झुका न सकेगा। यह वैयक्तिक विद्रोह है।
और जिनको भी समझ है दुनिया में उन सभी को इस व्यक्तिगत विद्रोह में आकर्षण अनुभव होता।
इसलिए सिल्वानो, इटली के नये वामपक्ष के बहुत से युवा संन्यस्त हुए हैं। इटली में वामपक्ष की क्रांति का जो जन्मदाता है, वह भी संन्यासी हो गया हैं। इटली में हवा बड़ी गर्म है। क्योंकि यह किसी को भरोसा ही नहीं आ रहा है कि यह हो क्या रहा है! जिन लोगों से आशा थी कि बम बनाएंगे, वे ध्यान कर रहे हैं! जिनसे आशा थी कि हत्याएं करेंगे, वे प्रेम के गीत गा रहे हैं! जिनसे आशा थी, अपेक्षा थी कि गुरिल्ले हो जाएंगे, उन्होंने गैरिक वस्त्र पहन लिए! वे नाच रहे हैं, गीत गुनगुना रहे हैं; आकाश तारों के रहस्य में लीन हो रहे हैं?
इसलिए मेरे प्रति नाराजगी भी है। उनके संगी-साथियों को भरोसा ही नहीं
आ रहा है कि यह क्या हुआ! लेकिन यह आग फैलेगी, क्योंकि इस आग के पीछे ऐतिहासिक आधार हैं। अब तक की सारी क्रांतियां असफल हो गई हैं, अब एक ही आशा और बची है कि देखें शायद विद्रोह सफल हो जाए! एक-एक व्यक्ति अपने ढंग से जीना शुरू कर दे, एक-एक व्यक्ति अपने भीतर से घृणा के, क्रोध के, वैमनस्य के, ईर्ष्या के, जलन के सारे बीजों को दग्ध कर दे--और यही तो ध्यान की अग्नि में घटित होता है!
इस संसार में इतनी हिंसा क्यों हैं? क्योंकि इस संसार में अधिक लोगों
के प्राण हिंसा से भरे हैं। इस संसार में इतना वैमनस्य, इतने युद्ध क्यों हैं? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति लड़ने को मरने-मारने को आतुर है। क्योंकि सदियों-सदियों से हमें जीना तो सिखाया नहीं गया, मरना सिखाया गया है। लोग

कहते हैंः मरो देश पर; मरो देश के झंडे पर; मरो जाति पर; मरो धर्म पर; मरो चर्च पर, मस्जिद पर, मंदिर पर। मगर तुमसे कोई भी नहीं कहता कि जीओ! कपड़े के टुकड़े, जो झंडे बन जाते हैं, उन पर मरो! जिंदगी जो परमात्मा की भेंट है, उसे आदमी के चीथड़ों पर बरबाद करो! देश की सीमाएं, जो विक्षिप्त राजनीतिज्ञों द्वारा खींची जाती हैं, उन पर मरो! और यह अखंड पृथ्वी, जो परमात्मा ने बिना किसी सीमा के बनाई है, इस पर जीओ मत। मंदिर और मस्जिद पर मरो, जो कि आदमी की ईजादें हैं। और परमात्मा ने यह विशाल मंदिर बनाया है--जिसमें आकाश के दीए जल रहे हैं, जिसमें चांद और सूरज हैं, जिसमें अनंत-अनंत फूलों की बहार है-- इसमें जीओ मत!
मेरा संदेश हैः मरने की भाषा छोड़ो, मरने की भाषा रुग्ण है। जीने की भाषा सीखो। जीओ, जी भर के जीओ! समग्रता से जीओ! पूरे-पूरे जीओ! क्योंकि तुम जितनी गहनता से जीओगे, उतने ही परमात्मा के निकट पहुंच जाओगे। परमात्मा जीवन का ही दूसरा नाम है। ऐसी लपट हो तुम्हारा जीवन जैसे मशाल को किसी ने दोनों ओर से एक साथ जलाया हो। चाहे क्षण भर को जीओ, मगर ऐसी त्वरा हो जीवन में कि वह एक क्षण अनंतता के बराबर हो जाए।
तुम्हें सिखाई गई है भाषा मरने की। राजनीति मरने की भाषा ही सिखानी है। वह कहती हैः मरो और मारो। क्रांति भी वही भाषा बोलती है कि मरो और मारो। मैं विद्रोह सिखा रहा हूं। मैं कहता हूं, न तो मरना है, न मारना है-- जीओ और जीने दो। खुद भी जीओ, औरों के जीने के लिए भी आयोजन दो। यह थोड़े दिन, यह चार दिन परमात्मा की बड़ी भेंट हैं, इन्हें ऐसे गंवा मत दो!
और अगर यह पृथ्वी जीने के गीत गाने लगे, यह पृथ्वी अगर जीने की बांसुरी बजाने लगे, तो हो जाएगी, क्रांति जो अब तक नहीं हुई है। और उस क्रांति को कोई विकृत न कर सकेगा, क्योंकि इस क्रांति को हम किसी की प्रतिक्रिया में नहीं कर रहे हैं। हम किसी से लड़ नहीं रहे हैं। सिर्फ अपने भीतर के अंधेरे को काट रहे हैं, सिर्फ हम अपने भीतर के पत्थरों को अलग कर रहे हैं, ताकि बह उठे झरना हमारे भीतर के जीवन का। और झरना बह उठे तो सागर दूर नहीं। झरना, न बहे, तो सागर के किनारे भी डबरा रहेगा और झरना बहे, तो दूर हिमालय से भी सागर तक पहुंच जाता है।
सिल्वानो, तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। तुम पूछते होः "भगवान, इटली के नये वामपक्ष (न्यू लेफ्ट) के अधिसंख्यक नौजवान आपसे संबंधित होते जा रहे है। आप क्या इसे वामपक्ष का विकास मानेंगे, या अपने प्रयोग के सही बोध की विकृति?"
यह वामपक्ष का विकास है, मेरे बोध की विकृति नहीं। यही तो मेरा बोध है। इसी बोध को तो मैं उकसाना चाहता हूं। इसी बोध के तो दीये जलाना चाहता हूं सारी पृथ्वी पर। यह विकृति नहीं है। उन्होंने मेरी बात को ठीक-ठीक समझा है। उन्होंने मेरी बात के सार को पकड़ा है। उन्होंने अपनी आंखें ठीक दिशा में मोड़ ली हैं। उनके पैर ठीक यात्रा पर चल पड़े हैं। मंजिल दूर नहीं है। प्रेम का गीत उन्होंने गाना शुरू किया है और ध्यान संगीत जन्माना शुरू किया है। बस प्रेम और ध्यान के दो पंख हों तुम्हारे पास, तो दुनिया की ऐसी कोई असंभावना नहीं है जो पूरी न हो सके। असंभव से असंभव परमात्मा भी उपलब्ध हो जाता है।
नहीं, स्मरण रखना, मेरे बोध की विकृति नहीं है यह। उन्होंने मुझे गलत नहीं समझा है। उन्होंने मुझे ठीक समझा है। निश्चित ही उनके संगी-साथियों को यह बात बड़ी बेबूझ लगेगी। उनके संगी-साथियों ने विरोध भी करना शुरू किया है। मेरे पास पत्र आने शुरू हुए हैं कि आप हमारे मित्रों को बिगाड़ रहे हैं; जो क्रांति के अगुआ थे, जिन पर हम आशा रखते थे कि जो इटली की सामाजिक व्यवस्था को बदलेंगे, उन सबको आप पलायनवाद सिखा रहे हैं। जिनसे हमने बड़ी अपेक्षाएं की थीं कि जो हमारे झंडों को लेकर संघर्ष करेंगे, प्रतिक्रिया के गढ़ो को तोड़ेंगे, आपने उन्हें यह क्या समझा दिया? आपने उन्हें सम्मोहित कर लिया है कि अब वे क्रांति की बातें ही नहीं करते। अब वे गीतों की बातें करते हैं। अब वे काव्य रच रहे हैं। अब वे चित्र बना रहे हैं, मूर्तियां बना रहे हैं।

मैं उनके मित्रों की कठिनाई भी समझ सकता हूं। लेकिन उनके मित्रो को कुछ, पता नहीं है। यही असली क्रांति है। जब कोई गीत रचता है, तो क्रांति घटती है। क्योंकि गीतों में तलवारों से ज्यादा धार है। तलवारें मारती हैं, गीत जिलाते हैं। तलवारें विध्वंसक हैं, गीत सृजनात्मक हैं।
वे नये मित्र जो थोथी क्रांति को छोड़ कर वास्तविक क्रांति में संलग्न
हो गए हैं, उनको समझने में इटली के युवकों को अड़चन तो आएगी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि अब न तो वे दास कैपिटल की बात करते हैं, न मार्क्स की, न एंजिल्स की, न लेनिन की, न जाओगे--तुंग की, न सार्त्र की। वे बात कर रहे हैं एक अजीब आदमी की, जिसका इटली में अभी कोई अधिक लोगों ने नाम भी न सुना होगा। और यह बात कर रहे हैं कुछ बड़ी बेबूझ, जो कि पश्चिम की क्रांति का हिस्सा कभी नहीं रही। उन्हें पता ही नहीं है कि एक क्रांति नाच कर भी होती है और एक क्रांति मूर्ति गढ़कर भी होती है। पूरब में हम परिचित है ऐसी क्रांतियों से जो क्रांति मीरा ने की, जो क्रांति चैतन्य ने की, जो क्रांति बुद्ध ने की, जो कृष्ण ने बांसुरी बजा कर की, उसके मुकाबले पश्चिम में कोई क्रांति कभी नहीं हुई है। पश्चिम उस अर्थ में अधूरा है। पश्चिम को पता ही नहीं है।
पश्चिम की हालत तो इतनी शोचनीय है कि जीसस जैसे व्यक्ति को भी क्रांति के लिए कोड़ा हाथ में उठाना पड़ा। कृष्ण ने बांसुरी उठाई, जीसस को कोड़ा उठाना पड़ा। जीसस भी चाहते तो यही कि बांसुरी उठाएं, मगर कौन समझता बांसुरी को!
यह मजबूरी है। यह दुखद है।
मगर मेरे पास सारी दुनिया से युवक आ रहे हैं, और यह आग फैलेगी, और यह चिंगारियां जाएंगी दूर-दूर। इसलिए एक हैरानी की बात घट रही है। मुझसे प्रतिक्रियावादी विरोधी हैं... मोरारजी देसाई मेरे विरोध में हो, यह समझ में आता है--दकियानूसी, पुराणपंथी, जिनकी गिनती भी मैं जिंदा लोगों में नहीं करता--वह मेरे विरोधी हों, ठीक है; नहीं, कम्युनिस्ट पार्टी भी इस बात के प्रस्ताव करती है कि मुझे भारत में न रहने दिया जाए। तब थोड़ा चौंकाने वाली बात है! तो कम से कम एक बात में तो कम्युनिस्ट पार्टी और मोरारजी देसाई राजी होते हैं--मेरे संबंध में; कि मुझे भारत में न रहने दिया जाए। कौन सी बात पर यह सहमति होती होगी? आर. एस. एस. के बीच कम से कम एक संबंध तो हो ही सकता है--मेरे विरोध में। मगर यह हैरानी की बात है कि जो किसी संबंध में राजी नहीं होते, वे मेरे संबंध में राजी क्यों हैं?
राजी होने का कारण है।
मैं अतीत का भी विरोधी हूं और भविष्य का भी। क्योंकि मैं मानता हूं, जिन्होंने अतीत में सपने मान रखे हैं, हमारे स्वर्णयुग हो चुका-- रामराज्य... मोरारजी देसाई मानते हैं, रामराज्य हो चुका। अलीगढ़ में लपटें उठ रही थीं, हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे को काट रहे थे--और मोरारजी भाई देसाई क्या कर रहे थे? इस देश का प्रधानमंत्री क्या कर रहा था? वह अहमदाबाद में बैठ कर रामायण की कथा कर रहे थे। प्रधानमंत्रियों को इसलिए चुना जाता है? तुमने नीरो, की कहानी सुनी है, कि जब रोम जल रहा था, तो नीरो बांसुरी बजा रहा था, इसमें और मोरारजी भाई के व्यवहार में क्या फर्क है? रोम जल रहा है, मोरारजी भाई रामायण की कथा पढ़ रहे हैं! पिटी-पिटाई कथा! जिसमें अब कुछ कहने को बचा भी नहीं! दस दिन तक अली गढ़ की लपटों में झुलसता रहा, मोरारजी देसाई दिल्ली में भी नहीं थे! दिल्ली में किसी को रहने की फुरसत कहां है! सब भागे रहते हैं। दिल्ली में कैसे काम चलता है, यह भी हैरानी की बात है! काम चलता ही नहीं। फाइलें इकट्ठी होती चली जाती है, क्योंकि सब नेतागण दौरों पर होते हैं। सबको फिकर आगे के चुनाव की। मोरारजी देसाई राम की कथा पढ़ रहे हैं; उनको ख्याल है कि राम के जाने में स्वर्ण युग घट चुका है। कैसा स्वर्ण-युग था यह राम के जमाने में जो घटा? शंबूक नाम के शूद्र
ने चूंकि वेद पढ़ने की कोशिश की थी या सुनने की कोशिश की थी, तो राम ने अपने हाथों से उसके कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया था। यह कैसा रामराज्य था? और अगर यह रामराज्य था तो फिर बिहार में शूद्रों को लूटा जाना, जलाया जाना, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार, उनके बच्चों की हत्या, उनको भून

देना आग में--यह सब रामराज्य है। इसके पीछे राम की गवाही है। यह कैसा रामराज्य था!
लेकिन एक है पुराणपंथी, जो देखता है कि राम-राज्य पीछे हो चुका; फिर से राम-राज्य आना चाहिए। और दूसरा है भविष्य-पंथी--कम्युनिस्ट--वह कहता है उटोपिया भविष्य में है, राम-राज्य आने वाला है। आएगा कभी--वर्ग-विहीन समाज! शोषण मुक्त समाज!
मैं दोनों कि विपरीत हूं। राम-राज्य न तो अतीत में आया है, न भविष्य में आएगा। जिनको जीने की कला आती है, वर्ग अभी और यहीं राम के साथ जीते हैं। और जब मैं राम शब्द का उपयोग करता हूं तो मेरा अर्थ शंबुक के कान में सीसा पिघलवाने वाले राम से नहीं है; जब मैं राम शब्द का उपयोग करता हूं तो मेरा अर्थ--अल्लाह से, ईश्वर से। जो अभी जीना जानता है, वह अभी राम में होता है, अभी अल्लाह में होता है। जो अभी जीता है, इसी क्षण जीता है, इसी को मैं संन्यासी कहता हूं।
इसलिए मेरे विपरीत दोनों होंगे--पुराणपंथी, भविष्य-पंथी--क्योंकि मैं वर्तमान के पक्ष में हूं। मैं कहता हूं, सिवाय वर्तमान के सब समय झूठे हैं। अतीत जा चुका, भविष्य आया नहीं है। और जो है, यही क्षण! यह जो तुम मुझे सुन रहे हो, यह जो मैं तुमसे बोल रहा हूं, इस बीच क्षण मौजूद है--यह पक्षियों की चहचाहट, यह सूरज की किरणों का हरे वृक्षों को पार करके तुम्हारे पास आना, यह सन्नाटा, यह आकाश, यह मेरे और तुम्हारे हृदय का लयबद्ध हो जाना--यह क्षण अभी और यही राम-राज्य है। यही है जिसकी बात जीसस ने कही है; प्रभु का राज्य जिसे उन्होंने कहा है।
वर्तमान के अतिरिक्त और किसी चीज का कोई अस्तित्व नहीं है।
क्रांतियां होती हैं अतीत के बगावत में, भविष्य के पक्ष में। विद्रोह होता है अतीत और भविष्य दोनों को छोड़ देने में और वर्तमान में जीने में। मंत्र-मुग्ध होकर जब कोई गीत गाता, अलगोजा बजाता, कि बांसुरी पर सुर छेड़ देता, कि वीणा के तार झनकार देता, कि नाच उठता, कि चुपचाप बैठ जाता किसी वृक्ष के नीचे, कि देखता आकाश के तारों को, कि सुबह उठते सूरज को, कि सांझ डूबते सूरज को, कि उड़ते हुए पक्षियों की पंक्ति--बस उस क्षण विद्रोह है! और उस क्षण जो आनंद का साक्षात्कार है। वही रोज-रोज गहरा होने लगता है, तुम्हारे भीतर एक कुआं खुदने लगता है, आज नहीं कल तुम्हें अपने जीवन के अमृत-स्रोत उपलब्ध हो जाते हैं।

तीसरा प्रश्नः नीति और धर्म में क्या भेद है?

नीति है थोथा धर्म और धर्म है सच्ची नीति। नीति है नकारात्मक, धर्म है विधायक। नीति कहती है, यह न करो, यह न करो, यह न करो; धर्म कहता है, यह करो, यह करो, यह करो। नीति भयभीत आदमी को पकड़ लेती है, धर्म निर्भय आदमी को उपलब्ध होता है। नीति सुरक्षा का उपाय है, धर्म असुरक्षा में अन्वेषण है। नीति कहती है, बागुड़ उठाओ ताकि तुम्हारी गुलाब की बाड़ियों की कोई जानवर न चर जाएं। नीति बागुड़ ही उठाती रहती है। और बागुड़ उठाने मग इतनी संलग्न हो जाती है कि याद ही नहीं रहता कि गुलाब के फूल अभी बोए कहां? धर्म गुलाब के फूल बोता है। धर्म गुलाब की खेती करता है।
नीति के साथ जरूरी नहीं है कि धर्म हो, लेकिन धर्म के साथ जरूरी ही नीति होती है--क्योंकि जिसके पास गुलाब के फूल हैं, वह बागुड़ तो लगाएगा। जिसे गुलाब के फूल उपलब्ध रहे हैं, वह उनकी सुरक्षा तो करेगा। लेकिन जो बागुड़ गलाने में ही व्यस्त हो गया है, उसे याद भी कैसे आएगी गुलाब के फूलों की; गुलाब के फूलों से उसका कोई संबंध ही नहीं है।
नीति है बहिआर्रोपण और धर्म है अंतर-जागरण। नीति ऐसे है जैसे अंधे आदमी के हाथ की लकड़ी--टटोल-टटोल कर रास्ता खोजती है। धर्म ऐसा है--खुली आंख वाला आदमी जिसके हाथ में दीया है। उसे टटोलना नहीं पड़ता, पूछना नहीं पड़ता, उसे रास्ता दिखाई पड़ता है।
नीति मिलती है समाज से, धर्म मिलता है, परमात्मा से। नीति सामाजिक सिखावन है। इसलिए दुनिया में जितने समाज हैं उतनी नीतियां हैं। जो

तुम्हारे लिए नीति है, वही तुम्हारे पड़ोसी के लिए अनीति हो सकती है। जो हिंदू के लिए नीति हैं, वही मुसलमान के लिए अनीति हो सकती है। जो ईसाई के लिए नीति है, वही यहूदी के लिए अनीति हो सकती है। लेकिन धर्म एक है, नीतियां अनेक हैं क्योंकि समाज अनेक हैं लेकिन मनुष्य की अंतरात्मा एक है। धर्म तो एक है, धर्म भिन्न नहीं हो सकता, धर्म के भिन्न होने का कोई उपाय नहीं है। धर्म का स्वाद एक है। बुद्ध ने कहा है, जैसे सागर को तुम कहीं से भी चखो उसका स्वाद एक है--नमकीन, खारा--वैसे ही धर्म को तुम कहीं से भी चखो, किसी घाट से, उसका स्वाद एक है।
लेकिन अक्सर नीति और धर्म के बीच भ्रांति हो जाती है। इसलिए तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। क्योंकि नीति धर्म-जैसी मालूम होती है। कागज के फूल भी गुलाब के फूल जैसे मालूम होते हैं। दूर से देखो तो धोखा हो सकता है। और अगर गुलाब के फूलों के ही जैसा गुलाब का इत्र कागज के फूलों पर भी छिड़का हो, तो शायद पास आकर भी धोखा हो जाए। और यह भी हो सकता है कि कागज के फूल इतनी कुशलता से बनाए जाएं कि उनके सामने गुलाब के फूल भी असली न मालूम पड़े। कभी- कभी नकली असली से ज्यादा असली मालूम होता है। नकल करने की कुशलता पर निर्भर होता है।
असली तो अपने असली होने पर भरोसा करता है, इसलिए आयोजन नहीं करता। नकली को तो भरोसा होता नहीं, इसलिए सारा आयोजन करता है कि कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए। सारी भूल-चूकों को निपटा लेता हैं। असली से तो भूल-चूक हो सकती है, नकली से भूल-चूक नहीं होती। क्योंकि नकली रिहर्सल करता है, नकली तैयारी करता है। क्या तुम सोचते हो जब राम की सीता चोरी गई तो उन्होंने पहले रिहर्सल किया होगा--कि हे सीता, तू कहां है? वृक्षों से पूछा होगा कि हे वृक्षों, मेरी सीता कहां खो गई? आंखों में मिर्च इत्यादि डाल कर आंसू बहाए होंगे, रोए-रोए घूमे होंगे, पत्थरों से पूछा होगा, पहाड़ों से पूछा होगा--मेरी सीता, मेरी सीता! क्या तुम सोचते हो अभिनय किया होगा? नहीं, बिचारे राम को यह अवसर नहीं मिला। सीता चोरी चली गई, एकदम से आघात हुआ होगा, बिना तैयारी के पूछने लगे होंगे।
लेकिन वह जो रामलीला में खेलता है खेल राम का, वह बड़ा अभ्यास करके आता है, उसके शब्द-शब्द नपे-तुले होते हैं। और इसने एक बार नहीं, हजार बार वृक्षों से पूछा है। इस तरह पूछा, उस तरह पूछा, सब तरह से अपने को सम्हाल कर आया है।
अगर कही असली राम को रामलीला के रामों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़े
तो हार निश्चित है। असली राम जीतेंगे नहीं। और सीता किसी नकली राम के साथ हो जाए तो तुम हैरान मत होना। क्योंकि नकली राम बिल्कुल असली रात से भी ज्यादा असली मालूम पड़ेंगे। अभ्यास का भी तो कुछ बल होता है!
नीति अभ्यास है, धर्म स्व-स्फुरणा है। नीति पैदा होती है सामाजिक संस्कार से। समाज सिखाता है--ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करना ठीक है। और छोटे- छोटे बच्चों को सिखाया जाता है, ऐसा करना ठीक है। उन बच्चों को न बोध होता, न बोध का कोई कारण होता। सीख लेते हैं, मां-बाप जो सिखा देते हैं सीख लेते हैं। फिर जिंदगीभर वही दोहराते रहेंगे। ग्रामोफोन रेकार्ड हो जाएंगे। उनकी अवस्था वही होती है जो तुमने देखा हो, हिज मास्टर्स वाइस के ग्रामोफोन रेकार्ड पर चोंगे के सामने बैठे कुत्ते की है। बस वही अवस्था। दोहराते रहते हैं। मालिक की आवाज! जो-जो सिखा दिया गया है, उसे दोहराते चले जाते हैं। पुनर्विचार करने की क्षमता भी नहीं होती, हिम्मत भी नहीं होती; पुनर्विचार करने में डर भी लगता है कि कहीं आधारशिला खिसक न जाए! किसी तरह भवन बन गया है जीवन का, अस्त-व्यस्त न हो जाए! पूछते ही नहीं, उलझन भरे प्रश्न पूछते ही नहीं। उलझन भरे प्रश्नों का एक तरफ हटा कर रख देते हैं। धर्म संस्कार नहीं है, ध्यान है। धर्म तो खोदना पड़ता है अपने भीतर। ऐसा समझो कि नीति है हौज की तरह। सीमेंट की हौज होती है, उसमें पानी ऊपर से भर देते हैं। पानी नहीं होता उनमें, पानी भरना पड़ता है--पानी उधार, बासा। फिर एक कुआं होता है, उसमें भी पानी होता है, मगर उसमें बासा पानी नहीं होता, उधार पानी नहीं होता, उसके पास अपने जलस्रोत होत हैं। ऊपर से देखने पर भ्रांति हो सकती है कि हौज और कुआं एक जैसे मालूम पड़ें, लेकिन उनकी

आत्माओं में भेद है। अगर हौज से पानी खींचते चले जाओगे, जल्दी ही हौज चुक जाएगी। इसलिए नैतिक आदमी से जरा सावधान! उसकी नीति बहुत गहरी नहीं होती, ज्यादा मत उलीचना, नहीं तो वह नीति के बाहर निकल जाएगा।
एक ईसाई फकीर को किसी ने चांटा मारा तो उसने बायां गाल उसके सामने कर दिया, क्योंकि यही जीसस ने कह हैः जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा कर देना। यह नैतिक शिक्षा थी। फकीर जीसस को मानता था। उसके दाएं गाल पर चांटा मारा तो उसने बायां भी कर दिया। मारने वाला भी पहुंचा हुआ आदमी था, वह भी कोई पुराना नहीं था दकियानूसी, उसने कहा यह मौका भी क्यों चूकना, उसने उस पर और करारा एक हाथ खींच दिया। लेकिन तभी वह चौंका। जैसे ही चांटा पड़ा दूसरे फकीर पर, फकीर छलांग लगा कर उसकी गर्दन को दबा कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। उस आदमी ने पूछा, भाई, फकीर होकर यह क्या करते हो? उसने कहा, अब और मैं क्या करूं? तीसरा गाल ही नहीं हैं। और मेरे गुरु ने कहा हैः एक गाल पर जो चांटा मारे, दूसरा भी सामने कर देना। अब तीसरे के संबंध में तो कोई सवाल ही नहीं है; उल्लेख ही नहीं है किताब में कोई; अब मैं अपना मालिक हूं, अब मैं तुझे मजा चखाऊंगा। अब तू भोग!
नैतिक आदमी से जरा सावधान। उसकी नीति बड़ी छिछली होती है। चमड़ी से भी ज्यादा पतली होती है। जरा खरोंच दो कि बस असली आदमी बाहर आ जाएगा। उसको खरोंचना ही मत, उससे दूर ही दूर रहना।
धार्मिक व्यक्ति अंतस्तल तक, अंतरात्मा तक एक ही रस से भरा होता है। धार्मिक व्यक्ति को तुम्हारा कोई आचरण, तुम्हारा कोई व्यवहार बदल नहीं सकता। जीसस ने सूली पर मरते क्षण भी कहाः प्रभु, इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि यह क्या कर रहे हैं!
यह स्रोत हौज में नहीं हो सकता, यह स्रोत तो कुएं में हो सकता है। कुएं
की जलधार सागर से जुड़ी होती है। ऐसे ही धर्म में जीता है, ध्यान में जो डूबता है, उसका जीवन परमात्मा के सागर से जुड़ जाता है। उसे तुम चुकता नहीं कर सकते। उसे तुम जितना खोदोगे, उतनी उसकी गहराई बढ़ती है।
फिर नीति का काम सिर्फ नकारात्मक है--गलत न करो। यदि फूल नहीं बो सकते,
तो कांटे कम से कम मत बोओ--यह नीति की सार-संपदा है।
यदि फूल नहीं बो सकते, तो कांट कम से कम मत बोओ!

है अगम चेतना की घाटी, कमजोर बड़ा मानव का मन;
ममता की शीतल छाया में होता कटुता का स्वयं शमन!
ज्वालाएं जब घुल जाती हैं, खुल-खुल जाते हैं मुंदे नयन,
होकर निर्मलता में प्रशांत बहता प्राणों का क्षुब्ध पवन। संकट में यदि मुसका न सको, भय से कातर हो मत रोओ!
यदि फूल नहीं बो सकते, तो कांट कम से कम मत बोओ!

हर सपने पर विश्वास करो, लो लगा चांदनी का चंदन
मत याद करो, मत सोचो--ज्वाला में कैसे बीता जीवन
इस दुनिया की है रीति यही--सहता है तन, बहुत है मन;
सुख की अभिमानी मदिरा में जो जाग सका, वह है चेतन! इसमें तुम जाग नहीं सकते, तो सेज बिछा कर मत सोओ!
यदि फूल नहीं बो सकते, तो कांटे कम से कम मत बोओ!

पग-पग पर शोर पचाने से मन में संकल्प नहीं जमता,
अनसुना-अचीन्हा, करने से संकट का वेग नहीं कमता,
संशय के सूक्ष्म कुहासों में विश्वास नहीं क्षणभर रमता,
बादल के घेरों में भी तो जय-घोष न मारुत का थमता।
यदि बढ़ न सको विश्वासों पर, सांसों के मुरदे मत ढोओ;
यदि फूल नहीं बो सकते, तो कांट कम से कम मत बोओ!
नीति कहती है, कम से कम कांटे मत बोओ। अगर फूल न बो सको तो चलेगा, कांटे
कम से कम मत बोओ। मगर मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः जो फूल नहीं बोएगा, उसे कांटे बोने ही पड़ेंगे। मैं इसे फिर दोहरा दूं, क्योंकि यह बहुत आधारभूत

बात हैः जो फूल नहीं बोएगा, उसे कांटे बोना ही पड़ेंगे। क्यों? क्योंकि जो ऊर्जा फूल बनती है, अगर फूल न बने तो कांटा बनेगी। ऊर्जा नष्ट नहीं होती। या तो सृजन बनाओ या विध्वंस बनती है। या तो गीत बनाओ; अगर गीत नहीं बना तो गाली बनेगी। अगर ऊर्जा जाएगी कहां? गीत गीत में प्रकट हो जाए तो ठीक, नहीं तो गालियों में बरसेगी। फूलों में खिल जाए तो ठीक, नहीं तो कांटों में उमगेगी। अगर तुम्हारी ऊर्जा प्रेम की वर्षा नहीं हो सकती, तो घृणा के अंगार तुम बरसाओगे। तुम्हें बरसाना ही पड़ेगा। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। और अब तो भौतिकशास्त्र भी इससे राजी है कि शक्ति का कोई विनाश नहीं होता; सिर्फ रूपांतरण होता है। कुछ न कुछ करना ही होगा। अगर हंसे नहीं, तो रोओगे। अगर ध्यान में न उतरे, तो धन की दौड़ में पड़ोगे। अगर प्रेम न किया, तो घृणा करोगे। अगर मित्र न बनाए, तो शत्रु बनाओगे। अगर ऊर्जा कुछ तो करेंगी। एडोल्फ हिटलर के जीवन में ऐसा उल्लेख है--विचारणीय है--कि वह चित्रकार होना चाहता था। मूलतः चित्रकार होना चाहता था। लेकिन विश्वविद्यालय ने उसे चित्रकार की कक्षा में भर्ती करने से इनकार कर दिया। कौन जाने, काश, एडोल्फ हिटलर चित्रकार हो गया होता तो दुनिया को दूसरा महायुद्ध न देखना पड़ता! तब उसकी ऊर्जा रंगों में फैलती, इंद्रधनुष बनाती, फूल बनाती, सुंदर चेहरे बनाती। लेकिन वही ऊर्जा जो चित्रकार होना चाहती थी, जो सर्जक होना चाहती थी, अवरुद्ध हो गई, विषाक्त हो गई, घृणा से भर गई। वही ऊर्जा विध्वंस बनी। जिसने सुंदर चेहरे बनाए होते, उसने सुंदर चेहरे जलाए। जिसने जीवन को थोड़ा सौंदर्य दिया होता, उसने जीवन का सारा सौंदर्य छीन लेने की कोशिश की। यह क्रोध है, यह प्रतिशोध है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तुम्हारे राजनेताओं में और तुम्हारे अपराधियों में बहुत भेद नहीं होता। राजनेता यह है जो ज्यादा चालाक है और अपनी चालबाजियों में नहीं आता। और अपराधी भी वही कर रहे हैं जो राजनेता कर रहा है, लेकिन इतना होशियार नहीं। थोड़ा भोला-भोला है, थोड़ा सीधा-सीधा है, जल्दी पकड़ में आ जाता है--इसलिए अपराधी हो जाता है। जो अपराधी पकड़ जाते हैं, जेलों में। जो अपराधी नहीं पकड़ाते, राष्ट्रपति भवनों में; प्रधान मंत्री, और न मालूम क्या-क्या! मगर दोनों की ऊर्जा एक है। दोनों के आवरण अलग-अलग होंगे।
मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि मेरा जोर नीति पर नहीं है। क्योंकि नीति तो सिर्फ आवरण है। अच्छे वस्त्र पहिन लेने से तुम सुंदर न हो जाओगे। सौंदर्य तो आत्मा का होना चाहिए। अच्छा चरित्र बना लेने से भी तुम सुंदर न होओगे। अच्छे चरित्र में भी जगह-जगह से तुम्हारी अंतरात्मा की गंदगी, ढंकी हुई गंदगी उभर-उभर कर दिखाई पड़ती रहती।
एक फकीर सुकरात को मिलने गया। वह फकीर चीथड़े पहनता था--त्यागी था। उसके कपड़ों में जगह-जगह छेद थे। मगर चलता बहुत अकड़ कर था, क्योंकि उस जैसा कोई त्यागी यूनान में नहीं था। सुकरात से उसने कहा कि तुम अभी तक भोग में पड़े हो! मुझे देखो, सब छोड़ दिया, चीथड़े पहनता हूं, यह त्याग है! तुम सत्य की बातें ही करते रहोगे कि कभी त्याग का जीवन भी जिओगे? सुकरात ने कहा, क्षमा करें, दुख न मानना, मगर तुम्हारे कपड़ों के छिद्र में से सिवाय तुम्हारे अहंकार के मुझे कुछ और झांकता दिखाई नहीं पड़ता।
तुम जरा अपने तथाकथित त्यागियों को गौर से देखना। उसन की त्याग की प्रतिमाओं में छिपे हुए बड़े अहंकार के दर्शन होंगे। बड़े सूक्ष्म जहर से तुम उन्हें भरा हुआ पाओगे।
नदी बहती रहे तो स्वच्छ रहती है, अवरुद्ध हो जाए तो जहरीली हो जाती है। ऊर्जा को बहने दो। ऊर्जा को सृजन में लगने दो। इसलिए कहता हूंः नाचो, गाओ, निर्माण करो। चित्र बनाओ, मूर्ति बनाओ, गीत सजाओ, कुछ करो, जीवन को कुछ सृजनात्मकता दो। दुनिया से धर्म मर गया है क्योंकि धर्म के नाम पर काहिल और निकम्मे लोग मंदिरों और मस्जिदों में बैठ गए हैं। जिनका कुल धंधा इतना है कि वे वहां बैठे रहें और तुम्हारी सेवा स्वीकार करते रहें। सदियों-सदियों से तुम्हारे धार्मिक लोगों ने सिवाय नपुंसकता के और कुछ भी नहीं किया है। इनके कारण पृथ्वी बड़ी बोझिल हो गई है। हां, नीति यह पूरी पालन में गुणवत्ता है? सारे पशु-पक्षी उठ आते हैं। यह कोई अपने आप

में महिमा नहीं है। एक ही बार भोजन करते हैं। लेकिन जंगल के बहुत से जानवर एक ही बार भोजन करते हैं। सिंह एक ही बार भोजन करता है। मगर डर कर कर लेता है एक ही बार। इसलिए तुम्हारे हिंदू संन्यासी, जरा उनकी तोंद देखते हो! एक ही बार कर लेते हैं, मगर ऐसा डट कर कर लेते हैं जो कि अनाचार है। चार बार कर लो, हर्जा नहीं है, मगर अनाचार तो न करो।
जैन मुनि तो बहुत ही सीमित चीजें लेते हैं। मगर मैं चकित होता हूं, यह देख कर कि दिगंबर जैन मुनि की भी तोंद होती है। क्यों? जरूर भूख से ज्यादा ले लेते होंगे। लेना ही पड़ेगा। आखिर चौबीस घंटे गुजारने हैं। जिस आदमी को रात पानी नहीं पीना है, वह सांझ ही सूरज डुबने के वक्त खूब डट कर पानी पी लेगा। मगर यह तो बोझ है, अस्वाभाविक है, नैसर्गिक नहीं है, शरीर के साथ अनाचार है। जो लोग उपवास करते हैं, जैसे कल उपवास करना है तो आज ठूंस-ठूंस कर भोजन करेंगे। जब तक समय मिलेगा भोजन करते ही रहेंगे, क्योंकि कल उपवास करना है। और फिर कल उपवास किसी तरह जैसे ही पूरा हुआ कि फिर ठूंस-ठूंस कर भोजन कर लेंगे। जितना उपवास में छोड़ा उससे ज्यादा आगे-पीछे कर लेंगे। आदमी को जबरदस्ती जब भी तुम अस्वाभाविक बनाने की चेष्टा करोगे, यही पाखंड होता है।
मैं नीति का पक्षपाती नहीं हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अनैतिक
हो जाओ। नीति का कोई चरम मूल्य नहीं है। नीति तो ऐसे ही है जैसे रास्ते का नियम कि बाएं चलना है। कोई बाएं चलने की कोई चरम सार्थकता नहीं है। अमरीका में लोग दाएं चलते हैं! दाएं चलो कि बाएं चलो, एक बात तय है कि जहां इतनी भीड़-भाड़ है रास्तों पर, वहां कोई नियम बनाना पड़ेगा, नहीं तो चलना मुश्किल हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन अमरीका जाना चाहता था। खबर मुझे मिली कि अचानक एक्सीडेंट हो गया, मुल्ला अस्पताल में भर्ती है, तो मैं उसे देखने गया। मैंने बहुत तरह के एक्सीडेंट देखे हैं, बहुत तरह के लोग अस्पताल में देख हैं, मगर मुल्ला गजब की हालत में था। सारे शारीर पर पट्टियां-पट्टियां थीं। न मालूम कितने फ्रैक्चर हुए थे। मुंह पर भी पट्टी, बस आंखें दो दिखाई पड़ती थी, नाक पर भी पट्टी, सब पट्टियां-पट्टियां थीं। मैंने मुल्ला से पूछा, तकलीफ तो नहीं होती? उसने कहा, होती है, जब हंसता हूं। तो हंसते ही कहे को हो? उसने कहा, हंसता इसलिए हूं कि मैं अमरीका जाने की तैयारी कर रहा था, उसमें यह एक्सीडेंट हुआ। मैं कुछ समझा नहीं। अमरीका जाने की तैयारी में इस एक्सीडेंट का क्या संबंध? उसने कहा, मैंने किताबों में पढ़ा कि वहां बाएं कार नहीं चलानी पड़ती, दाएं कार चलानी पड़ती है, सो मैंने सोचा कि पूना में जरा एक. जी. रोड पर अभ्यास कर लूं। जब दाएं चलानी पड़ेगी तो थोड़ा अभ्यास करके जाना ठीक है। सो यह गति हुए! पड़े-पड़े अब कभी-कभी हंसी आती है कि यह भी मैंने क्या मूर्खता की? तो बस जब मैं हंसता हूं, तब बड़ा दर्द होता है! अंग-अंग दुखता है!
अमरीका में सभी लोग दाएं चलते हैं, तो दाएं चलने में अड़चन नहीं है।
न तो दाएं चलने की कोई परम मूल्यवत्ता है, न बाएं चलने की। लेकिन जहां भीड़-भाड़ है... छोटे-छोटे गांव में तो न कोई दाएं चलता है, न कोई बाएं चलता है; अपनी भैंस लिए बीच रास्ते पर चलो! कोई ट्रैफिक ही नहीं है, वहीं भी चलो! जैसी मर्जी आए वैसे चलो, जहां से मुड़ना हो वहां से मुड़ो, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन जैसे-जैसे हम लोगों के साथ रहते हैं, वैसे-वैसे कुछ नियम जरूरी हो जाते हैं। बस वे नियम व्यावहारिक हैं।
नीति का कोई अंतिम मूल्य मत समझ लेना। वे नियम व्यावहारिक हैं। ताकि लोगों के बीच टकराहट न हो। मगर नीति को ही धर्म मत मान लेना, नहीं तो चुक जाओगे। यह मत समझ लेना कि हम हमेशा बाएं चलते हैं तो जब परमात्मा मिलेगा तो अकड़कर खड़े हो जाएंगे कि देखो, मैं महात्मा हूं, क्योंकि मैं हमेशा बाएं चलता था! एक भी बार न पुलिस ने मुझे पकड़ा, न एक भी बार चलना हुआ हमेशा बाएं चलता था, मुझे स्वर्ग में ठीक-ठीक जगह मिलनी चाहिए! तो परमात्मा भी हंसेगा, कि बाएं चलना ठीक था, उसके तुम्हें लाभ हुए कि हाथ-पैर न टूटे, इससे ज्यादा और अपेक्षा मत करना।

नीति सामाजिक है, धर्म आध्यात्मिक है। धर्म का अर्थ है, परमात्मा के साथ मैं कैसे रहूं? और नीति का अर्थ है, लोगों के साथ कैसे रहूं? लोगों के साथ सुविधापूर्ण है नीति। इससे व्यर्थ की झंझटें कम हो जाती हैं। मगर नीति काफी नहीं है। यदि फूल नहीं बो सकते, तो कांटे, तो कांटे कम से कम मत बोओ! बस, इतना ठीक है! मगर अगर फूल बो सकते हो, तो क्या कांटे न बोना पर्याप्त है? क्या तुम्हारे हृदय में उल्लास उठेगा इस बात से कि मैंने जिंदगी में कांटे नहीं बोए? उल्लास तो तब उठेगा जब कमल खिलेंगे तुम्हारी झील में, जब फूल नाचेंगे तुम्हारी बगिया में, जब चमेली के फूल झर-झर झरेंगे तब उल्लास होगा, तब महोत्सव होगा। इतना ही कहते फिरो सब जगह कि देखो मेरी बगिया, मैंने कांटे बिल्कुल नहीं बोए, कांटे का पता ही नहीं, बगीचा बिल्कुल साफ रखता हूं--न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी--ऊगने नहीं देता पौधों को, कौन जाने किसी पौधे में कांटा ऊग आए, झंझट हो जाए! मगर इसको तुम बगिया तो न कहोगे। जमीन है, अच्छी जमीन है, कंकड़-पत्थर भी बीन लिए, कांटे भी नहीं, सब साफ-सुथरी है, मगर जमीन है, बगिया तो नहीं है। रेगिस्तान है। इसको मरूद्यान बनाओ।
नीति केवल सफाई है। धर्म सफाई के आगे का कदम है। फूल बोओ। फूल बोने के लिए तुम हो। तुम्हारी नियति फूल बनना है। मनुष्य के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण फूल खिलता है। इसीलिए तो हमने उस फूल को सहस्रार कहा है। सहस्रदल कमल। जब तुम्हारी चेतना तुम्हारे सबसे ऊंचे शिखर को छूती है, तो तुम्हारे भीतर एक कमल खिलता है जो शाश्वत है। जो एक बार खिल गया तो फिर कभी मुर्झाता नहीं। और जिसकी सुगंध का ही नाम परमात्मा है।

चौथा प्रश्नः भगवान, भक्त की चरम अवस्था के संबंध में कुछ कहें।

चरम अवस्था के संबंध में कभी कुछ कहा नहीं जा सकता। और भक्त की चरम अवस्था के संबंध में तो और भी कुछ नहीं कहा जा सकता।
एक तो चरम अवस्था का अर्थ ही होता है, शब्दों के जो पर गई। फिर भक्त भी चरम अवस्था, भाव की चरम अवस्था, वह तो शब्दों से बहुत दूर चली गई, बहुत दूर चली गई! शब्दों की पृथ्वी बहुत पीछे छूट गई। भक्त तो मिट ही जाता है अपनी चरम अवस्था में, भगवान ही शेष रह जाता है। तो या तो कुछ भक्तों ने कहा हैः मैं नहीं हूं, तू है। या कुछ भक्तों ने कहाः मैं ही हूं, तू नहीं है। दोनों बातें कही जा सकती हैं। दोनों का एक ही अर्थ है। एक ही बचा, अब उसे भक्त कहो, या भगवान कहो, यह तुम्हारी मौज। अहं ब्रह्मास्मि। मैं ही बचा हूं, मैं ही ब्रह्म हूं; या ब्रह्म ही बचा है, अब मैं कहां? उस चरम अवस्था में तो सब शून्य हो जाता है।
पर तुम्हारे प्रश्न प्रीतिकर है। तुम्हारी जिज्ञासा मधुर है। मीठी है। थोड़ी-थोड़ी चेष्टा करें, थोड़ी-थोड़ी अंगुलियां उठाएं, उस दूर के चांद की तरफ।
नियाजे-इश्क को समझा है क्या ऐस बाइजे-नादां!
हजारों बन गए काबे, जहां मैंने जबीं रख दी।।
प्रेम-विभोरता को ऐ समझदार लोगों, तुमने क्या समझा है? ऐ पंडितो, तुमने भाव-विभोर अवस्था को क्या समझा है? जहां जिस चौखट पर मैंने सिर रख दिया, वहां काबा बन गया।
नियाजे-इश्क को समझा है क्या ऐ वाइजे-नादां...
पंडितों को तो भक्त सदा नादान कहते हैं, पंडितों को तो भक्त सदा अज्ञानी कहते हैं--पांडित्य अज्ञान का ही दूसरा नम है भक्त की भाषा में। नियाजे-इश्क को समझा है क्या ऐ वाइजे-नादां!
हजारों बन गए काबे, जहां मैंने जबीं रख दी।।
जहां मैंने सिर झुकाया, वहां एक क्या हजार काबे बन गए, हजार मंदिर उठ गए। ऐसी है वह परम दशा कि भक्त जहां झुक जाए, वहां परमात्मा के चरण-चिह्न बन जाते हैं। जहां भक्त सिर टेक दे, वहां परमात्मा के चरण-चिह्न बन जाते हैं। तुम भक्त की छाया भी छू लो, तो परमात्मा का तुम्हें स्वाद आ जाए। भक्त के साथ बैठ लो तो भगवान के साथ बैठना हो जाए।

क्या दर्दे-हिज्र और यह लज्जते-विसाल।
उससे भी कुछ बुलंद मिली है नजर मुझ।।
कहना मुश्किल है क्या मिला है। प्रेम जब उस परम स्थिति में पहुंच जाता है तब उसके लिए मिलन और सुख और विरह-दुख कुछ भी अर्थ नहीं रखते। विरह के दुख में बहुत दुख पाया था। लेकिन अब जो मिला है, उसको सोच कर उसकी याद भी नहीं आती। विरह-दुख के कांटे भी अब फूल-जैसे मालूम होते हैं। और मिलन का सुख भी बहुत मिला था--झलके आई थी; यही परम अवस्था आने के पहले कभी-कभी द्वार-झरोखा खुल गया था; एक लहर आई, एक किरण आई, परमात्मा छू गया, नहला गया-- बड़ा सुख पाया था, लेकिन अब वह सुख भी इस परम अवस्था के सामने ना कुछ है। क्या दर्दे-हिज्र और यह क्या लज्जते-विसाल।
उससे भी कुछ बुलंद मिली है नजर मुझे।।
और अब तूने जो मुझे आंख दी है, वह उन सब बातों से बुलंद है, उन सबसे ऊंची है, उसका कोई ओर-छोर नहीं, उसका कोई अंत नहीं, आदि नहीं।
यह ऐसी आंख है जहां प्रेम और प्यारा एक हो जाते हैं।
अब न यह मेरी जात है, अब न यह काएनात है।
मैंने नवाए-इश्क को साज से यू मिला दिया।।
अब न तो मैं हूं, न कोई सृष्टि है। अब न यह मेरी जात है... जब न तो मेरा कोई अहंकार है, अस्मिता है; अब न यह कायनात है... अब न मुझे कोई सृष्टि दिखाई पड़ती, अब तो तू ही तू है; मैंने नवाए-इश्क को साज से यूं मिला दिया... मैंने तो अपने प्रेम संगीत को तेरे साज में डुबा दिया। अब तो तेरी वीणा बज रही है, मैं उसका संगीत हूं। कि मेरा संगीत है और तेरी वीणा बज रही है। अब तो मैं बांसुरी हूं तेरे हाथ, तू गीत गा रहा है। अब मैं कहां! बांस की पोली पोंगरी हूं।
इक सूरते उफ्तागीए-नक्शे-फना हूं।
अब राह से मतलब न मुझे राहनुमा से।।
अब न तो मुझे मार्ग की चिंता है--मंजिल आ गई--न मुझे मार्गदर्शकों की चिंता है। अब मुझे न कहीं जाना है, न कुछ होना है।
इस सूरते उफ्तादगीए-नक्शे-फना हूं... अब तो मिट गया हूं, जैसे रेत पर खड़ा हुआ चरण-चिह्न हवा का झोंका आए और मिट जाए। इक सूरते उफ्तादगीए-नक्शे- फना हूं... मेरी तो बात ही पूछो मत, मेरा चिन्ह भी मिट गया। अब राह से मतलब न मुझे रहनुमा से।
मेरे महाके शौक का इसमें भरा है रंग।
मैं खुद को देखता हूं, कि तसवीरे यार को।
अब बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। आईने के सामने खड़े होकर देखता हूं तो
यह मेरी समझ में नहीं आता कि मैं खुद को देख रहा हूं कि तुझको देख रहा हूं।
मेरे मजाके शौक का इसमें भरा है रंग।
मैं खुद को देखता हूं, कि तसवीरे-यार को।।
इसलिए भक्त कभी-कभी कह देता हैः अनलहक। मैं वही हूं। बुरा मानना।
भक्त को समझना। किसी अहंकार से यह बात नहीं कही जाती है। यह अत्यंत निर-अहंकारिता का उदघोष हैः अनलहक। मंसूर बेचारा समझा न जा सका! उसे नाहक सूली दे दी गई! जिन्हें हमें सिंहासन देना था, उन्हें हमने सूलियां दे दीं। और जिन्हें सूलियों पर चढ़ाना था, वे सिंहासनों पर बैठे हैं।
हुजूमे-शौक में अब क्या कहूं मैं क्या न कहूं?
मुझे तो खुद भी नहीं, अपना मुद्दआ मालूम।।
और अब तुम पूछते हो कि कुछ कहो उस चरम अवस्था की बात! अब बड़ा मुश्किल है।
हुजूमे-शौक में अब क्या कहूं मैं क्या न कहूं?
मुझे तो खुद भी नहीं, अपना मुद्दमा मालूम।।
अब तो मुझे यह भी पता नहीं कि मैं हूं, यह भी पता नहीं कि मेरे होने का कोई अर्थ है; मुझे तो यह भी पता नहीं कि मैं कभी था कि एक स्वप्न देखा था।
रेत पर बने एक चरण-चिह्न की भांति मिट गया हूं। मगर इसी मिटने में महा गौरव है। इसी शून्य हो जाने में पूर्ण का उतरना है।
जहान है कि नहीं जिस्मो जान हैं कि नहीं।

वोह देखता है मुझे, उसको देखता हूं मैं।।
अब न तो जान है, न जहान है। अब तो वह मुझे देखता है, मैं उसे देखता हूं।
बोलने को भी कुछ शेष नहीं है। बस आंखें आंखों में झांकती हैं। एक सन्नाटा है। एक अपूर्व सन्नाटा। मगर सन्नाटा भी ऐसा कि जहां अनाहत का नाद है।
बेखुदी का आलम है, महवे-जिबिहसाई हूं।
अब न सरसे मतलब है, और न आस्ताने से।।
बेखुदी का आलम है... अब तो नहीं हूं, इसके मजे ले रहा हूं। लेने में मजा
ही बेखुदी का है, लेना हो तो मजा ही बेखुदी का है। जो हैं, वे तो केवल दुख भोगते हैं। होना यानी दुख। होना है पर्यायवाची दुख का। न होना है पर्यायवाची आनंद का। सच्चिदानंद का।
बेखुदीका आलम है, महवे-जिबिहसाई हूं।
और आत्मलीन हूं, नतमस्तक हूं, झुक गया हूं, खाली हूं।
अब न सर से मतलब है, और न आस्ताने से।।
न मुझे अपने सर का कुछ पता है, न तेरी चौखट का। कहां करूं पूजा, कहां
करूं अर्चना? कहां पढूं नमाज? कौन पढ़े नमाज? किसकी करे नमाज?
अब न कहीं निगाह है, अब न कोई निगाह में।
महव खड़ा हुआ हूं, हुस्न की जलवागाह में।।
अब न कहीं निगाह है... अब आंख कहीं जाती नहीं। अब न कोई निगाह में... और
अब आंख में भी कोई नहीं, कोरी आंखें रह गई हैं, खाली आंखें रह गई हैं, शून्य आंखें रह गई हैं। शून्य आंख ही तो समाधि है। महव खड़ा हुआ हूं मैं, हुस्न की जलवागाह में... तल्लीन खड़ा हूं, लवलीन खड़ा हूं; तेरा जलवा बरस रहा है, तेरी रोशनी बरस रही है, तेरा महोत्सव हो रहा है।
जुनूने-इश्क हस्तीए-आलम पै नजर कैसी?
रूखे-लैला को क्या देखेंगे महमिल देखनेवाले।।
अब देखने को कुछ बचा नहीं है। जिसे देखना था, देख लिया। जो देखने योग्य था, उसे देख लिया। आंखें जिसके लिए तरसती थीं, उससे आंखें भर गई।
अब मुझे खुद भी नहीं होता है कोई इम्तियाज।
मिट गया हूं इस तरह उस नक्शे-पा-के सामने।
अब मुझे भेद-भाव भी नहीं है। क्या पाप है, क्या पुण्य, समझ में नहीं आता। क्या अंधेरा, क्या उजाला; क्या जिंदगी, क्या मौत--भेद सब गिर गए।
अब मुझे खुद भी नहीं होता है कोई इम्तियात।
मिट गया हूं उस तरह उस नक्शे-पा-के सामने।।
तूने मुझे ऐसा मिटाया, तूने मुझे ऐसा मिटाया, कि अब कोई भेद-भाव नहीं।
न पापी है कोई, न पुण्यात्मा है कोई; न संसार है कोई, न मोक्ष है कोई; तूने मुझे ऐसा पोंछ डाला। मगर यही धन्य भागिता है! धन्यभागी हैं वे, जिन्हें परमात्मा ऐसे मिटा देता है। क्योंकि उनके इसे मिटने में ही वे परमात्मा के साथ एक हो जाते हैं।
जितने हम हैं, उतनी ही दूर है। जितने हम नहीं हैं, उतनी ही निकटता है।
अब हम बिल्कुल नहीं हैं तो एक हो गए।
नजर में वोह गुल समा गया है, तमाम हस्ती पै छा गया है।
चमन में हूं या कफस में हूं मैं मुझे अब इसकी खबर नहीं है।।
अब तो आंखें फूल से भर गई हैं। अब तो आंखें फूल हो गई है। अब तो खिल गया
है वह सहस्रदल कमल।
नजर में वोह गुल समा गया है, तमाम हस्ती पै छा गया है...
और जो मेरे भीतर खिला है वह मेरे भीतर ही नहीं खिला है, वह फैलते-फैलते सारे अस्तित्व के साथ एक हो गया है।
नजर में वोह गुल समा गया है, तमाम हस्ती पै छा गया है।
चमन में हूं या कफस में हूं मैं मुझे अब इसकी खबर नहीं है।।
अब मधुमास आए कि पतझड़, कुछ भेद नहीं पड़ता। वह फूल खिल गया जो एक बार खिलाता है तो फिर कभी मुर्झाता नहीं है। अब तो मधुमास ही मधुमास है, अब तो
वसंत ही वसंत है।
अक्स किस चीज का आईन-ए-हैरत में नहीं।
तेरी सूरत में है क्या जो मेरी सूरत में नहीं।।

भक्त की मौज देखते हो? भक्त यह कहता है कि अब मैं जानता हूं कि जो तुझमें है, वही मुझमें है। नाहक मैं तुझे तलाशता था। व्यर्थ ही मैं दौड़ा- दौड़ा था। कहां-कहां तुझे नहीं खोजा। किन-किन चांद-तारों के किनारे नहीं भटका! कितने-कितने जन्मों, अनंत-अनंत जन्मों कितना तुझे नहीं पुकारा! अक्स किस चीज का आईन-ए-हैरत में नहीं।
तेरी सूरत में है क्या जो मेरी सूरत में नहीं।।
आज जानता हूं कि तू और मैं दो नहीं, एक हैं। मैं नाहक ही खोज रहा था।
शायद खोज रहा था इसीलिए खोता चला जा रहा था। तू खोजने वाले में ही छिपा था।
खुदा जाने कहां है असगरे दीवाना बरसों से।
कि उसके ढूंढते हैं काब-ओ-बुतखाना बरसों से।।
अब तुम पूछ रहे हो भक्त की चरम अवस्था क्या है? बड़ा मुश्किल है!
खुदा जाने कहां है असगरे दीवाना बरसों से...
वह जो चरम अवस्था में पहुंच जाता है, वह कहां है? वह दीवाना, वह पागल,
वह मस्त, वह मतवाला कहां है? उसका कुछ पता लगाना मुश्किल है। लापता है!
खुदा जाने कहां है असगरे दीवाना बरसों से।
कि उसको ढूंढते हैं काब-ओ-बुतखाना बरसों से।।
कि उसको ढूंढने में लगे हैं मंदिर और मस्जिदें और गुरुद्वारे कि मिल जाए कहीं दीवाना, वह मिलता नहीं। और ऐसा भी हनीं है कि बहुत दूर है। और ऐसा भी नहीं है कि आंख से पीछे छिपा है। मगर उस दीवाने को केवल वे ही देख पाएंगे जो खुद भी दीवाने हैं। पियक्कड़ों को पियक्कड़ ही पहचान सकते हैं।
शराबियों की दोस्ती शराबियों से ही हो सकती है।
खुदा जाने कहां है असगरे दीवाना बरसों से।
कि उसको ढूंढते हैं काब-ओ-बुतखाना बरसों से।।
तुम चाहते हो जानना, सच में जानना चाहते हो कि भक्त की चरम अवस्था क्या है? भक्त होना पड़ेगा। कहीं जाए, ऐसी वह अवस्था नहीं। बताई जाए, ऐसी वह कोई बात नहीं। लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात--कबीर ठीक कहते हैं-- देखा-देखी बात। देखोगे तो जानोगे। मगर चुकानी पड़ती है बड़ी कीमत। क्योंकि देख वही पाता है जो मिटता है। मिटोगे तो देखोगे। देखोगे तो जानोगे। लिखा- लिखी की है नहीं... पढ़ जाओ वेद, कुरान, बाइबिल और खूब शब्दों के धनी हो जाओगे तुम मगर उन शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं है।
भक्त की परम अवस्था अनुभव की अवस्था है।
तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। पूछा भी इसीलिए है कि कहीं कोई अभीप्सा जग रही होगी। यह प्रश्न पात्र जिज्ञासा का नहीं है, यह प्रश्न अभीप्सा का है, मुमुक्षा का है। खोजो। भक्त की खोज आंसुओं के मार्ग से गुजरती है। भक्त की खोज तर्क से नहीं जाती, आंसुओं से जाती है; बुद्धि से नहीं जाती, हृदय से जाती है।
बंधनों में बंध गई मैं,
मांगकर नित नये बंधन,
हार कर बैठी किनारे,
साथ लेकर थकित तन-मन।
कौन हो तुम? हो कहां?
किसकी शरण पल भर गहूं!
अपनी व्यथा किससे कहूं?
खोजती थी सत्य को
निज प्राण में ले मधुर सपने कल्पना सब मिट गई औ
दुख बने चिर-मीत अपने।
मृत्यु से डरती नहीं पर,
दुसह दुख कैसे सहूं?
अपनी व्यथा किससे कहूं?

मन नहीं मैं बांध पाई,
स्वयं जग में बंध गई।

भावना ले त्याग की
अनुराग ही मेरा रम गई।
तुम उबारोगे नहीं
कब तक यहां रोती रहूं?
अपनी व्यथा किससे कहूं?
रोओ। भरो रुदन से। तुम्हारे तन-प्राण आंसुओं से भर जाएं।
तुम उबारोगे नहीं,
कब तक यहां रोती रहूं?
अपनी व्यथा किससे कहूं?
किसी और से कहना भी नहीं। उस एक को ही पुकारना। उस एक के ही सामने निवेदन करना। और आंसुओं से सुंदर और कोई निवेदन नहीं। और आंसुओं से बहु- मूल्य और काई निवेदन नहीं। आंसुओं में गलो और बहो। जैसे जलती है मोमबत्ती--जलती जाती है और टप-टप मोम आंसुओं की तरह गलता जाता है। फिर एक घड़ी आती है कि पूरी मोमबत्ती जल गई, आंसुओं का ढेर रह गया, ज्योति भी उड़ गई अनंत में। ऐसी ही दशा भक्त की है। रोओ! हृदय से रोओ! पुकारो! जैसे-जैसे हृदय आंसुओं में बहता जाएगा, वैसे-वैसे ही उस अवस्था की थोड़ी-थोड़ी झलकें मिलनी शुरू हो जाएंगी
राह लंबी है, मार्ग अनजाना, कभी उस पर चले भी नहीं...
दूर है घर औ अजानी राह

छुद्र अति मेरी कहानी,
स्वयं मुझसे है अजानी,
कब भला मैं पा सकी हूं
निज हृदय की थाह?
व्यर्थ है आंसू बहाना,
व्यर्थ दुख के गीत गाना,
व्यर्थ है इस जगत में
करना सुखों की चाह।

कर सकूं आराधना जब,
मौन होगी साधन तब,
बहुत संभव पा सकूंगी
प्राण मग उत्साह!
नयन दर्शन को तरसते,
आज पल-पल में बरसते,
दीप सा उर जल रहा
पाता नहीं कर आह!
बस वही अड़चन है। पूछने से नहीं होगा, आह भरो। ऐसी आह उठे तुम्हारे भीतर से कि तुम्हारा रोआं-रोआं उस आह से कंपित हो जाए।
नयन दर्शन को तरसते,
आज पल-पल में बरसते
दीप सा उर जल रहा
पाता नहीं कर आह!
आह कर सको, तो प्रार्थना पूरी हो जाए। आह में मिट जाओ, तो तुम्हें भी स्वाद लग जाए उस परम अनुभूति का। एक किरण उतर आए, काफी है। फिर उसी एक किरण का सहार पकड़ परम सूर्यों की यात्रा हो जाती है।

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
नौवां प्रवचन

सतगुरु करहु जहाज

पांच तत्त की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव तहां बासा करै, निपट नगीचे काल।।
दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन के माहिं।
जोग-जुगति सौं पाइए, बिना जुगति किछु नाहिं।।
दरिया दिल दरियाव है अगम अपार बेअंत।
सब महं तुम, तुम में सभे, जानि मरम कोइ संत।।
माला टोपी भेष नहिं, नहिं सोना सिंगार।
सदा भाव सतसंग है, जो कोई गहै करार।।
परआतम के पूजते, निर्मल नाम अधार।
पंडित पत्थल पूजते, भटके जम के द्वार।।
सुमिरन माला भेष नहिं, नाहीं मसि को अंक।
सत्त सुकृत दृढ़ लाइकै, तब तोरै गढ़ बंक।।
दरिया भवजल अगम अति, सतगुरु करहु जहाज।
तेहि पर हंस चढ़ाइकै, जाइ करहु सुखराज।।
कोठा महल अटारियां, सुन उ स्रवन बहु राग।
सतगुरु सबद चीन्हें बिना, ज्यों पंछिन महं काग।।

दरिया कहै सब्द निरबाना!
जीसस ने कहा हैः आंखें हों तो देख लो, कान हों तो सुन लो। आंखें तो सभी
के पास हैं और कान भी सभी के पास हैं और निश्चित ही जीसस अंधों और बहरों से नहीं बोल रहे थे; ठीक तुम जैसे लोगों से बोल रहे थे--ऐसी ही उनकी आंखों थीं, ऐसे ही उनके कान थे। लेकिन आंख होने से ही देखना सुनिश्चित नहीं है। और कान होने से ही सुनना अनिवार्य नहीं है। आंखें रहते-रहते भी कोई चूक जाता है। कान रहते-रहते भी कोई चूक जाता है। क्योंकि एक और भी सुनने का ढंग है, और भी देखने का ढंग है--वही ढंग सारे धर्मों का सार है।
तुम्हारे घर में आग लग गई है और बाजार में तुम्हें किसीने कहा हो कि
घर में आग लग गई, तुम यहां क्या कर रहे हो? भागोगे तुम घर की तरफ। राह पर चलते हुए लोग तुम्हें अब भी दिखाई पड़ेंगे, कोई रास्ते में नमस्कार करेगा तो अब भी दिखाई पड़ेगा--तुम अंधे नहीं हो गए हो--लेकिन फिर भी कुछ दिखाई न पड़ेगा। जिसके घर में आग लगी हो, उसे राह पर चलते लोग दिखाई नहीं पड़ते। कोई नमस्कार करेगा, सुनाई नहीं पड़ेगा। और कल अगर कोई याद दिलाएगा कि राह पर मिला था, नमस्कार की थी, आपने उत्तर भी न दिया, तो तुम क्षमा मांगोगे, तुम कहोगे--क्षमा करना, उस क्षण मैं होश में नहीं था।
तो इसका अर्थ हुआः होश से देखा जाए तो ही दिखाई पड़ता है। बेहोशी से देखा जाए तो दिखाई नहीं पड़ता। होश से सुना जाए तो सुनाई पड़ता है। होश से जीया जाए तो जीवन परमात्मा हो जाता है। और बेहोशी में जीया जाए तो पत्थरों के अतिरिक्त यहां कुछ, हाथ न लगेगा। और हम सब बेहोश जी रहे हैं। हम ऐसे जी रहे हैं जैसे कोई नींद में चले। हम ऐसे जी रहे हैं जैसे कोई शराब पीए हुए चले।
हमारा जीवन जाग्रत जीवन नहीं है। इसीलिए दरिया तो कहते हैं कि मैं शब्द निर्वाण के कह रहा हूं, मगर तुम सुनोगे या नहीं--सब कुछ तुम पर निर्भर है।
चिकित्सक हो, औषधि हो, लेकिन बीमार दवा पीए ही न! निदान हो जाए, औषधि खोज ली जाए, इतने से ही तो कुछ न होगा। निदान तो हो चुका, बहुत बार हो चुका, आदमी की बीमारी जानी-पहचानी है, सदियों-सदियों में एक ही बीमारी से तो आदमी परेशान रहा--मूर्च्छा की बीमारी; प्रमाद की बीमारी; बेहोशी की बीमारी। नाम अलग-अलग सदगुरुओं ने अलग-अलग दिए हों भला, पर बीमारी एक है। और औषधि भी एक है। औषधि की सदियों-सदियों से ज्ञात हैः जाओ!

मगर या तो तुम भोगते हो, या भागते हो, जागते कभी नहीं। भोगने वाला भी डूबा रहता और भागने वाला भी डूबा रहता। भोगी और त्यागी में बहुत भेद नहीं है, एक ही तरह के लोग हैं। एक संसार की तरह मुंह करके भाग रहा है, एक संसार की तरफ पीठ करके भाग रहा है--मगर दोनों भाग रहे हैं, जाग कोई भी नहीं रहा है। और जागने वाला सुन पाता है। और जो जाग लेता है, उसके प्राणों में अनाहत का नाद उठता है, उसके प्राणों में कृष्ण की बांसुरी बजती है, उसके प्राणों में कुरान की आयतों का जन्म होता है, उसके शब्द-शब्द भगवदगीता हो जाते है। जो जानता है, वह यह भी जान लेता है कि मैं और परमात्मा दो नहीं--अनलहक का उदघोष होता है।
पश्चिम में नई-नई एक खोज है--होलोग्राम। समझने जैसी खोज है। तुम अगर किसी के चार टुकड़े करो, तो तस्वीर चार टुकड़ों में बंट जाएंगी। होलोग्राम एक नई तस्वीर की कला है। लेसर किरणों से होलोग्राम की तस्वीर उतारी जाती है। जैसे तुमने एक गुलाब के फूल पर लेसर किरणें फेंकीं और उसकी तस्वीर उतार ली। यह तस्वीर बड़ी अनूठी होती है। इसका अनूठापन इतना चमत्कारी है कि अगर तुम इसे समझ लो तो तुम्हें उपनिषदों का महावाक्य--तत्वमसि श्वेतकेतु-- समझ में आ जाए। तुम्हें मसूर की वह उदघोषणा--अनलहक, मैं ईश्वर हूं--यह समझ में आ जाए। विज्ञान ने पहली बार तत्वमसि के लिए समर्थन दिया है। होलोग्राम से उतारी गई तस्वीर की कई खूबियां हैं।
पहली खूबी। जब लेसर किरणें गुलाब के फूल पर फेंकीं जाती हैं और तस्वीर उतारी जाती है, तो तस्वीर में फिल्म पर गुलाब नहीं आता, सिर्फ गुलाब के आसपास नाचती हुई लेसर किरणों की तरंगें आती है--गुलाब नहीं आता! जैसे तुम झील में पत्थर फेंको और झील में तरंगें उठें और फिर तुम तस्वीर उतारो, तो पत्थर की तो कोई तस्वीर आएगी नहीं, पत्थर तो कभी का जाकर झील की तलहटी में बैठ गया, लेकिन लहरों पर उठती हुई वर्तुलकार तरंगें--उनकी तस्वीर आएगी। ऐसे ही लेसर किरणें जब किसी भी विषय पर फेंकी जाती हैं, तो विषय की तो पकड़ नहीं आती फिल्म में, लेकिन विषय के चारों तरफ उठती हुई वर्तुलकार तरंगों का चित्र आता है। मगर यह चित्र बड़ा अनूठा है। अगर इस चित्र में से फिर लेसर किरणों को डालों तो परदे पर गुलाब का फूल आता है। और भी खूबी की बात है, अगर इस फिल्म को तुम दो टुकड़ों में तोड़ दो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, हर टुकड़े के द्वारा पूरा गुलाब का फूल परदे पर आता है। चार टुकड़े में तोड़ दो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता--हर टुकड़े के द्वारा गुलाब का पूरा फूल ही परदे पर आता है। तुम इसे हजार टुकड़ों में तोड़ दो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जितने छोटे खंड कर सको, कर लो--मगर हर छोटे खंड से पूरा गुलाब का फूल परदे पर आता है।
यह तो बड़ी आश्चर्यजनक खोज है। इसका अर्थ हुआ कि अब तक का सारा गणित गलत हो गया। पुराना गणित कहता हैः अंश कभी अंशी के बराबर नहीं होता। कैसे होगा? अंश छोटा होगा अंशी से, खंड छोटा होगा अखंड से। मगर होलोग्राम कहता हैः खंड अखंड के बराबर होता है। अंश अंशी के बराबर होता है। दिखाई कितना ही छोटा पड़ता हो, लेकिन इसमें पूर्ण समाया होता है। बूंद में सागर समाया है। बीज में वृक्ष समाया है। एक छोटे से अणु में सारा ब्रह्मांड समाया है। यही तो उदघोषणा है उपनिषदों की। तत्वमसि। मैं वही हूं। तुम वही हो। तुममें और परमात्मा में कोई गुणात्मक भेद नहीं है। तुम उसकी ही छोटी तस्वीर लेकिन तुममें परमात्मा पूरा का पूरा है, जितना कि पूरे अस्तित्व में है, उसमें जरा भी कम नहीं है।
यह गणित में एक नई क्रांति है; विज्ञान में एक नया उदघोष है। रहस्यवादियों ने तो इसे सदा जाना था, लेकिन विज्ञान के द्वारा इसे पहली बार समर्थन मिला है। इसे देखने के लिए तुम्हारा नजरिया बदलना होगा। यह इतनी बड़ी घटना है। बूंद में सागर को देखना, तुम्हें अपनी सारी आंखें नई करनी होगी। तुम्हें अपने भाव के जगत को नये ढांचे, नये रंग, नये ढंग, नई शैली देनी होगी। तुम्हें गीत गाने के कुछ नये सूत्र सीखने होंगे। तुम्हें पैरों में घूंघर बांधने होंगे। तुम्हें उत्सव की नई कला में पारंगत होना होगा। इसी कला का नाम धर्म है।
दरिया कहै सब्द निरबाना!

दरिया कहते हैं, मैं तो कह रहा हूं तुमसे परम सत्य को, मगर तुम सुनोगे
कि नहीं सुनोगे? और सुनने को ही सुनना मत समझ लेना। सुनते तो सभी हैं, जो गुनता है, वही सुनता है। सुन ही लिया तो क्या होगा? समझे नहीं तो सुनना व्यर्थ गया। समझ भी लिया तो क्या होगा? जिए नहीं तो समझना व्यर्थ गया। सुनो, समझो, जीओ, वही हो जाओ--तो ही स्वाद उतरेगा अमृत का तुम्हारे प्राणों में। तब नाचता हुआ परमात्मा तुम्हारे भीतर आता है। या यूं कहो कि सोया था सदा, जाग उठता है और नाच उठता है। आता भी नहीं, था ही मौजूद, जैसे कली में फूल छिपा था और कली खिल गई और सुगंध लुट गई। जिस दिन तुम्हारे प्राणों की सुगंध लुटती है, उसी दिन जानना जीवन सार्थक हुआ।
खिली चमेली, चंपा फूली, नव गुलाब हंसता आया;
मेरे पास गजब का भौंरा वन से सुरभि उड़ा लाया।
पर बैरागी बना यहां पर यह भौंरा कुछ साध रहा;
मिली न मंजिल अभी सनम की, पिय का भेद अगाध रहा।
जो कुछ सुना, यही कि जवानी पछताती है, रोती है;
जो कुछ देखा, यही कि काया धूल-सरीखी होती है।
किंतु ज्ञान यह कुछ अटपट है, कुछ अशुद्ध यह लेखा है,
वे कहते कुछ और, जिन्होंने स्वयं सनम को देखा है।
ऊपर-ऊपर से देखोगे तो मिट्टी ही मिट्टी है चारों तरफ--कहां है अमृत की झलक? ऊपर-ऊपर देखोगे तो पदार्थ ही पदार्थ है--कहां है परमात्मा की पहचान? ऊपर-ऊपर देखोगे तो वीणा तो मिल जाएगी, वीणा के स्वर कहां सुनाई पड़ेंगे? बांसुरी भी हाथ में आ जाए तो भी बांसुरी के स्वर तो पैदा नहीं हो जाते। खिली चमेली, चंपा फूली, नव गुलाब हंसता आया;
मेरे पास गजब का भौंरा वन से सुरभि उड़ा लाया।
पर बैरागी बना यहां पर यह भौंरा कुछ साध रहा;
मिली न मंजिल अभी सनम की, पिय को भेद अगाध रहा।
जो कुछ सुना, यही कि जवानी पछताती है, रोती है;
जो कुछ देखा, यही कि काया धूल-सरीखी होती है।
किंतु ज्ञान यह कुछ अटपट है, कुछ अशुद्ध यह लेखा है, वे कहते कुछ और, जिन्होंने स्वयं समन को देखा है।
जाग मुसाफिर लग पगडंडी, वे राहें कुछ ऐसी ही;
झुकी हुई पेड़ों की डालें, वे बांहें कुछ ऐसी ही।
रह-रह सुलझ-उलझ पड़ता है, स्नेही का हिय ही तो है; जान मर्म, दर्द जान ना, प्रेमी का जिय ही तो है। पंथ निराला, राह अटपटी, घट-घट विविध स्वरूप बने कौन कहे, हों कहीं न इस क्षण वे जग के अनुरूप बने। समझ उन्हें न धान की वाली, वे तो सरसों के दाने;
फिर किस दाने में बैठे हैं, कह यह भेद कौन जाने?
जड़-जड़ सींच बराबर पानी, पिया कभी आंखें खोलें;
कहीं किसी दिन इन डालों पर पंछी की बोली बोलें!
जाग मुसाफिर लग पगडंडी, वे राहें कुछ ऐसी हो;
झुकी हुई पेड़ों की डालें, वे बांहें कुछ ऐसी हो।
परमात्मा तुम्हें आलिंगन में लेने को तत्पर है, जैसे वृक्षों की झुकी हुई डालियां; परमात्मा तुम्हारे नासापुटों को अनंत-अनादि गंध से भर देने को आतुर है; परमात्मा तुम्हारे भीतर नाचती हुई किरण की तरह आना चाहता है, पूरे चांद की तरह ऊगना चाहता है, सारे तारों भरी रात की तरह तुम्हारे हृदय-आकाश पर प्रकट होना चाहता है, मगर तुम द्वार तो खोलो, तुम मार्ग तो दो, तुम सिंहासन से तो उतरो! तुम तो स्वयं ही सिंहासन पर बैठ गए हो। उसके लिए तुमने जगह ही नहीं छोड़ी है। और तब अगर तुम्हारे जीवन में सिवाय उदासी के, हताशा के, निराशा के, आंसुओं के और कुछ हाथ न लगता हो, तो याद रखना कसूरवार हो तो तुम हो।
जिन्होंने तुमसे कहा है इस जिंदगी में कुछ नहीं है, गलत कहा है।
किंतु ज्ञान यह कुछ अटपट है, कुछ अशुद्ध यह लेखा है,
वे कहते कुछ और, जिन्होंने स्वयं समन को देखा है।

जिन्होंने उस प्यारे को देखा है, उन्होंने कुछ और कहा है। उन्होंने प्रकृति को उसका घूंघट कहा है। जिन्होंने उस प्यारे को देखा है, उन्होंने उसकी झलक प्रकृति में भी देखी है। फूल-फूल में उसकी गंध, रंग-रंग में उसका रंग, सारे इंद्रधनुष उसके हैं। चांद-तारों में उसी की रोशनी है, लोगों के हृदयों में उसकी धड़कन है, वही तुम्हारी श्वास है, वही तुम्हारी प्रश्वास है। वही तुम में जाग रहा, वही तुम में जी रहा, वही तुम में सो रहा, वही है तुम्हारा प्रेम, वही है तुम्हारी प्रार्थना, वही है तुम्हारी पूजा--तुम मंदिर हो। तुम कहां जाते हो काबा और कहां जाते हो काशी? तुम मंदिर हो। और अगर तुम उसे अपने भीतर न पा सकोगे तो किसी काबा में कभी भी न पा सकोगे। और जिसने उसे अपने भीतर पा लिया, सारा अस्तित्व काबा हो जाता है, सारा अस्तित्व कैलाश हो जाता है। फिर तुम जहां पैर रखो, वहां तीर्थ पैदा होते हैं। फिर तुम जहां बैठ जाओ, वहीं मंदिर है। मालिक तुम्हारे भीतर है। दरिया शब्द निर्वाण। यह निर्वाण के शब्द इसी बात की याद दिलाने के लिए तुम्हें कहें जा रहे हैं।
पांच तत्त की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव तहां बासा करै, निपट नगीचे काल।।
तुम्हारे भीतर जो घट रहा है, जो घट सकता है, उसकी तुम्हें स्मृति भी नहीं है।
मैंने सुना है, एक रात, पूर्णिमा की रात, शरद पूर्णिमा की रात कुछ मित्रो ने जरा सोचा नौका-विहार को चलें। गए झी पर, माझी अपनी नौकाएं बांध कर घर जा चुके थे, उन्होंने एक नौका खोल ली, एक नौका में बैठ गए, चले डांड मारने, लगे पतवार चलाने। आधी रात से चलाना शुरू की नाव, सुबह-सुबह जब होने को हुई और ठंडी हवाएं बहने लगी और नशा थोड़ा उतरा और उन्हें याद आई घर की तो किसी ने कहा कि जरा देख तो लो उतर कर घाट पर, हम कितनी दूर निकल आए हैं? अब लौटना होगा। पूरब आ गए, कि पश्चिम आ गए, होश में तो कुछ पता न था। कितने मील चले आए, यह भी पता नहीं? उनमें से एक घाट पर उतरा और खिलखिला कर हंसने लगा। बाकी ने पूछा कि हंसते क्यों हो, बात क्या है? वह अपने पेट पकड़े, हंसी उसे इतनी जोर से आ रही! उसने कहा कि पहले मुझे हंस लेने दो, फिर तुमसे कह सकूंगा। और अगर पूरा मजा तुम्हें लेना है, तुम भी कर देख लो। वे सभी उतर और सभी हंसने लगे। क्योंकि रात वे यह भूल ही गए कि नाव की जंजीर किनारे से बंधी है, उसे खोलना भी है। पतवार तो बहुत चलाई, मगर अकेली पतवार चलाने से कोई यात्रा होती है, नाव की जंजीर भी तो खोलनी चाहिए। जहां थे वहीं के वहीं रहे।
तुम जहां जन्में हो, वही के वही रहोगे--और कितनी ही पतवारें चलाओ, और कितना ही धन इकट्ठा करो, कितने ही पद, और कितने ही दौड़ो महत्वाकांक्षा में। यह महत्वाकांक्षा की दौड़ सन्निपात से ज्यादा नहीं है। तुम जहां हो वही हो। यह महत्वाकांक्षाओं की दौड़ सपने से ज्यादा नहीं है, सुबह जब आंख खुलेगी, अपने घर में अपनी खाट पर अपने को पाओगे। रात चाहे चले जाओ टिम्बकटू और चाहे कुस्तुनतुनिया, और जहां जाना हो, लेकिन सुबह जब आंख खुलेगी तो पाओगेः वही घर है, वही झोपड़ा है, वही खाट है अपनी पुरानी! ऐसी ही तुम्हारी जिंदगी है। इसमें जंजीर तोड़ देना पहली जरूरी बात है। और जंजीर है बेहोशी की, ध्यान अभाव की। तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं तुम कौन हो? तुम इसका उत्तर नहीं दे सकते कि मैं कौन हूं। और जिसके पास इस बात का उत्तर नहीं है कि मैं कौन हूं, उसके सब उत्तर दो-कौड़ी के हैं। उसे शास्त्र कंठस्थ हों, उसके शास्त्रों का कोई भी मूल्य नहीं है। दो-कौड़ी भी मूल्य नहीं है। शास्त्र कंठस्थ करने से काम के नहीं होते। शास्त्र तो ऊपर-ऊपर रह जाते हैं, भीतर तो तुम्हारा कचरा जैसा था वैसा का वैसा। शास्त्र तो ऊपर-ऊपर रह जाते हैं, भीतर तो तुम्हारा कचरा जैसा था वैसा का वैसा। शास्त्र तो ऐसे हो जाते हैं जैसे तोते रट लेते हैं राम-राम तो राम-राम दोहराते रहते हैं। भीतर तो राम-राम नहीं होता।
मैंने सुना, एक पादरी के पास एक तोता था। बड़ा ज्ञानी तोता था। राम-नामी तोता था। सुबह में सांझ तक प्रार्थना में ही लीन रहता था। उस पादरी के चर्च में एक महिला भी जाती थी। उस महिला ने पादरी से कहा कि मैंने भी एक

तोता खरीद लिया और बड़ी झंझट में पड़ गई। तोता कुछ गलत जगह में रहा है; मालूम होता है किसी वेश्यालय में, या किसी शराबघर में; बड़ी गालियां बकता है! बेहूदी गालियां बकता है! मेहमान घर में आ जाते हैं तो मुझे यही डर रहता है कि तोता कुछ बोल न दे। आप जब कभी मेरे घर आते हैं तो मुझे तोते को ढांक देना पड़ता है कि कहीं आप को देख कर कुछ न कुछ कह दे। तोते को कैसे बदलें? आप तो आदमियों को बदल देते हैं, इस तोते को क्यों नहीं बदल देते? पादरी ने कहा, तू फिकर मत कर, हमारे पास बड़ा धार्मिक तोता है। यह सिर्फ पूजा-पाठ ही जानता है। बस यह तो जीसस-जीसस की याद करता रहता है। यह बड़ा पुण्यात्मा है। तू अपने तोते को यहां ले आ। इन दोनों को साथ रख देंगे... सत्संग से तो लाभ होता है।
वह स्त्री अपने तोते को ले आई। एक ही पींजड़े में दोनों तोतों को रख दिया। दो दिन बीत गए, पादरी भी थोड़ा हैरान हुआ, न तो इस स्त्री का तोता गाली बके और न पादरी का तोता ईश्वर-स्मरण करे। पादरी ने अपने तोते से पूछा कि तुझे हुआ क्या? तू तो ऐसा भक्त था, तूने ईश्वर-स्मरण क्यों छोड़ दिया? उसने कहा, जिस बात के लिए ईश्वर-स्मरण करता था, वह बात पूरी हो गई। एक स्त्री चाहता था, वह मिल गई। इसी के लिए तो चिल्लाता था कि हे प्रभु, हे प्रभु! उस स्त्री के तोते से पूछा, तूने क्यों गालियां बंद कर दीं? तो उसने कहा, जिस पुरुष के लिए मैं मांगती थी और गालियां बकती थी, वह मिल गया।
ऊपर से तोते गालियां बकें, या ऊपर से तोते रामनाम जपें, इससे भेद नहीं पड़ता। असली बात भीतर है। तुम रामनाम की चदरिया ओढ़ लो, इससे क्या होगा? लेकिन यही हो रहा है। इस बात का भी तुम्हें पता नहीं है कि मैं कौन हूं--और रामायण कंठस्थ हो गई! और गीता के वचन तुम्हें याद हो गए हैं! अभी क्रांति का पहला कदम भी नहीं उठा और क्रांति पूरी हो गई, ऐसा मालूम होता है।
सच्चा धार्मिक व्यक्ति शुरू से ही शुरू करता है। वह पूछता है, मैं कौन हूं? और इस पूछने में कुछ भी पहले से स्वीकार मत करना। क्योंकि जो भी तुमने स्वीकार कर लिया; वही बाधा हो जाएगा। कोई भी सम्यक, कोई भी सच्ची खोज पक्षपातों से शुरू नहीं होती; निष्पक्ष होकर शुरू होती है। जो आदमी पहले से ही हिंदू है, मुसलमान है, जैन है, ईसाई है, वह कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकेगा। उसने तो सत्य को पाने के पहले ही तय कर लिया कि सत्य क्या है! यह तो कोई वैज्ञानिक खोज न हुई। यह बड़ी अंधविश्वास की बात हुई। तुमने पहले ही तय कर लिया कि अभी रात है--चाहे अभी दिन हो--और चले तुम अपनी परिकल्पना को सिद्ध करने। और ध्यान रखना, मन बहुत होशियार है। तुम जो सिद्ध करना चाहो, उसी के पक्ष में दलीलें इकट्ठी कर लेगा। जगत बड़ा है, यहां हर चीज के लिए दलीलें उपलब्ध हो जाती है।
एक आदमी मेरे पास एक किताब लाया है। उसने सिद्ध किया है कि तेरह का आंकड़ा गलत है। उसने तेरह तारीख को जितनी दुर्घटनाएं घटती हैं, सबको लेखा इकट्ठा कर लिया है अखबारों से। अब तेरह तारीख को घटनाएं तो घटती ही हैं। कार भी टकराती हैं ट्रेन भी उलटती हैं, हवाई जहाज भी जलते हैं; हत्याएं भी होती हैं, आत्महत्याएं भी होती है--लोग मरते ही हैं। तेरह तारीख को जितनी दुर्घटनाएं होती हैं, सब इकट्ठी कर लीं। उसने कहा कि यह प्रमाण है। मैंने उससे कहा, तू एक काम और कर। अब तू चौदह तारीख को कितनी होती हैं वह भी इकट्ठी कर। फिर पंद्रह को कितनी होती हैं वह भी इकट्ठी कर। और अब तू चकित होगा कि जितनी तेरह को होती हैं, उससे कम चौदह को नहीं होती; उससे कम पंद्रह को भी नहीं होती। लेकिन अगर यह पहले से ही तय कर लिया कि तेरह तारीख गलत है... अमरीका में तो हालत इतनी बुरी हो गई है तेरह के साथ कि होटलों में तेरह नंबर का कमरा ही हनीं होता, तेरहवीं मंजिल ही नहीं होती, क्योंकि तेरहवीं मंजिल पर कोई रुकना ही नहीं चाहता। तो बारह के बाद सीधी चौदवीं मंजिल आती है। होती है वह तेरहवीं ही, मगर नंबर चौदहवां होता है। मजे से रुके हैं, कोई दुर्घटना नहीं घटती। और अगर तुम्हें पता हो कि तेरहवीं है, तो रात भर नींद न आए।
सम्यक अन्वेषण विश्वास से शुरू नहीं होता। न ही सम्यक अन्वेषण अविश्वास से शुरू होता है। सम्यक अन्वेषण पक्ष नहीं, विपक्ष नहीं, एक

निर्मल भाव से शुरू होता है, जिज्ञासा से शुरू होता है, एक खुले मन से शुरू होता है।
तुमने पूछा, अपने से, मैं कौन हूं? और जल्दी से उत्तर दे दिया कि मैं आत्मा हूं, तो खोज झूठी हो गई। तुमने पूछा, मैं कौन हूं? और जल्दी से उत्तर दे दियाः मैं कुछ भी नहीं हूं, बस देह मात्र हूं, खोज झूठी हो गई। इतनी जल्दी उतर नहीं आएगा, खूब गहरे खोदना होगा। जैसे कोई कुआं खोदता है, तो पहले तो कचरा-कूड़ा हाथ लगता है। जल्दी लौट मत आना। और खोदना। फिर कंकड़-पत्थर हाथ लगेंगे; घबड़ा मत जाना। और खोदना। फिर रूखी मिट्टी हाथ लगेगी। घबड़ा मत जाना कि ऐसी रूखी मिट्टी में कहां जलस्रोत होंगे। खोदे जाना। फिर धीरे-धीरे गीली मिट्टी हाथ आने लगेगी। पहले लक्षण शुरू हुए। खोदे जाना। एकदम से जलस्रोत न आ जाएंगे ऐसे कि तुम उन्हें पी लो। कीचड़ आएगी, खोदे जाना; गंदा जल आएगा, खोदे जाना; एक दिन जरूर वह घड़ी आ जाएगी कि निर्मल जलस्रोत तुम्हारे भीतर तुम्हें उपलब्ध हो जाएंगे। और जब अपने भीतर के जलस्रोतों को कोई पीता है, तो तृप्ति, तो संतोष, तो सच्चिदानंद!
पांच तत्त की कोठरी... यह जो पांच तत्वों से बना हुआ तुम्हारा मंदिर है, यह जो तुम्हारा घर है तामें जाल जंजाल... यह बहुत जटिल है। यह कोई छोटी घटना नहीं है। चमड़ी के ऊपर से देखो तो तुम्हें पता ही नहीं चलती कि तुम्हारे भीतर कितनी जटिलता है। तुम एक पूरा संसार हो। एक छोटे से मस्तिष्क में--अब मस्तिष्क कोई बहुत बड़ा नहीं होता; जरा सी खोपड़ी है, उसके भीतर छोटा सा मस्तिष्क है, छोटे से तराजू पर तौला जा सकता है--इस छोटे से मस्तिष्क में इस पृथ्वी पर जितने पुस्तकालय हैं, उन सारे पुस्तकालयों में जितनी सूचनाएं हैं, समाई जा सकती हैं। एक छोटे आदमी के मस्तिष्क में। कोई अलबर्ट आइंस्टीन का मस्तिष्क नहीं चाहिए। ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे का मस्तिष्क भी काम आ जाएगा। एक छोटे से सामान्य मानवीय मस्तिष्क में अब तक पृथ्वी पर जितने पुस्तकालय है, सभी की सूचनाएं समाई जा सकती है। तुम्हारी छोटी सी देह में सात अरब जीवाणु हैं। बंबई छोटी नगरी है। कलकत्ता भी बहुत छोटा। कलकत्ता, बंबई, लंदन, न्यूयार्क, सब इकट्ठे कर डालो, तो भी तुम्हारे छोटे से नगर में दे के जितने जीवाणु रहते हैं उतने लोग वहां नहीं रहते। अभी तो पूरी पृथ्वी भी छोटी है। पूरी पृथ्वी पर केवल चार अरब आदमी रहते हैं। तुम्हारी छोटी सी देह में सात अरब जीव कोश रहते हैं। इसीलिए तो पुराने ज्ञानियों ने तुम्हें पुरुष कहा है। पुरुष का अर्थ होता है--पुर का अर्थ होता है, नगर--तुम एक बड़े नगर के भीतर बसे हो, इसलिए तुम्हें पुरुष कहा गया है। यह जो सात अरब निवासी हैं तुम्हारे भीतर, इनके बीच तुम्हारा आवास है। तुम एक महानगर हो। तुम एक महापृथ्वी हो। तुम छोटे नहीं हो, छोटे दिखाई पड़ते हो। तुम्हारे भीतर बड़ा विस्तार है। और बड़ा जटिल विस्तार है। और कितना काम तुम्हारे भीतर चल रहा है।
वैज्ञानिक कहते हैं, जितना काम एक मनुष्य की देह में होता है, अगर उस सारे काम को हमें करना हो तो कम से कम चार वर्गमील के घेरे में हमें फैक्ट्री बनानी पड़े; तो इतना काम हो सकता है। फिर भी अभी सभी काम करने में हम सफल हो सकेंगे, इसकी आशा नहीं है। अभी भी रोटी कैसे खून बने, विज्ञान उपाय नहीं खोज पाया। रोटी कैसे मांस-मज्जा बने, इसका उपाय नहीं खोज पाया। और रोटी कैसे विचार बने, स्वप्न बने, प्रेम बने, शायद अभी तो सदियां लग जाएंगी। जिस दिन हम रोटी को डालेंगे एक तरफ से एंजिल में और दूसरी तरफ से प्रेम की गंगा बहेगी! अभी तो संभावना नहीं दिखाई पड़ती कि एक तरफ से रोटी डालेंगे और दूसरी तरफ से ध्यान निकलता हुआ आएगा।
तुम भी रोटी खाते हो, बुद्ध भी रोटी ही खाते हैं। तुम्हारी रोटी क्रोध
बन जाती है, बुद्ध की रोटी समाधि बन जाती है। तुम भी वही सांस लेते हो जो बुद्ध लेते हैं। तुम्हारी श्वास ऐसे ही आती-जाती है, नाहक ही, बुद्ध की श्वास-श्वास में अमृत बरसता है।
तुम बड़ी जटिल घटना हो... मनुष्य इस पृथ्वी पर सर्वाधिक जटिल घटना है। तुम अपने को ऐसे ही चुपचाप मान कर मत जी लेना। बड़ी खोज करनी है। चांद-तारों पर खोजने से जो नहीं मिलेगा, वह मनुष्य के भीतर खोजने से मिलेगा। गौरीशंकर पर चढ़ने से कुछ सार नहीं है, काश तुम अपने भीतर के गौरीशंकर पर चढ़ा जाओ! उसी

को ज्ञानियों ने सहस्रार कहा है। तुम्हारी चैतन्य की जो आखिरी ऊंचाई है, आखिरी शिखर है, तुम्हारे चैतन्य की जो परम शुद्धि है, समाधि है, बुद्धत्व है, उसकी ही निर्वाण कहा है। दरिया कहै सब्द निरबाना।
पांच तत्त की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव तहां करै, निपट नगीचे काल।।
और इस पांच तत्व की कोठरी में, इस देह के मंदिर में तुम्हारी आत्मा का वास है, पुरुष बसा हुआ है इस नगर में। और एक चमत्कार कि यह पुरुष है शाश्वत जीवन, जिसका न कभी प्रारंभ हुआ और न कभी अंत होगा, फिर भी यह मौत के ही पास बसा हुआ है, मौत के पड़ोस में बसा हुआ है। तुम्हारे पास ही बैठी है तुम्हारी मौत, इंच भर का भी फासला नहीं है, कब तुम्हें पकड़ लेगी पता नहीं है; एक क्षण और बचोगे या नहीं, इसका भी भरोसा हनीं है; कल होगा या नहीं, कोई भी नहीं कह सकता।
मैंने सुना है एक सूफी कहानीः
एक सम्राट ने रात स्वप्न देखा कि एक काली भयंकर छाया ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया है; लौट कर देखा, घबड़ा गया। थर-थर कांपने लगा सपने में भी। ऐसे तो बहादुर आदमी था, युद्धों में लड़ा था, तलवारों से खेला था, तलवारों से खेला था, तलवार की धार ही उसकी जिंदगी थी, मगर थर-थर कांप गया। पूछा, कौन है? वह काली छाया खिलखिला कर हंसी और उसने कहा, मैं तेरी मौत हूं। और तुझे आगाह करने आई हूं कि कल सूरज डूबने के पहले तैयार रहना, मैं लेने आ रही हूं। इधर सूरज डूबा, उधर तू डूबा। ऐसी बात सुन कर कोई सो सकता था फिर? नींद टूट गई। आधी रात, पसीने-पसीने था सम्राट। उसी क्षण खतरे के घंटे बजाए गए। सेनापति इकट्ठे हो गए। मगर सेनापति क्या करेगा मौत के सामने? घुड़सवारों ने सारे महल को घेर लिया, नंगी तलवारें चमकने लगी रात के अंधेरे में, लेकिन नंगी तलवारें क्या करेंगी मौत के सामने? घुड़सवार क्या करेंगे? तोपों पर गोले गढ़ा दिए गए। मगर तोपों के गोले क्या करेंगे?
तब वजीर ने सम्राट को कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? सपना तो सपना है। यहां सच सपने हो जाते हैं, आप सपने को सच मानकर चल रहे हैं? यहां सत्यों का भरोसा नहीं है, आप सपने का भरोसा कर रहे हैं? फिर यह सब इंतजाम व्यर्थ हैं। अगर कुछ इंतजाम ही करना हो तो ज्योतिषियों को बुलाया जाए, जो आप का हाथ देखें, आपकी जन्म-कुंडली देखें और तय करें कि सपने में कुछ अर्थ है या नहीं? बड़े-बड़े ज्योतिषी बुलाए गए। बड़े-बड़े मनस्विद बुलाए गए--उस समय के जो होंगे सिग्मंड फ्रायड, जुंग, एडलर--उन सबको बुलाया गया। पंडितों की जैसी आदत होती है। विवाद उनका धंधा है। निष्कर्ष पर तो पंडित कभी पहुंचते ही नहीं। बकवास उनका व्यवसाय है। बड़े-बड़े पंडित बड़ी-बड़ी पोथियां लेकर आ गए और बड़े विवाद मच गए कि स्वप्न का क्या अर्थ है? कोई एक अर्थ करे, कोई दूसरा अर्थ करे, कोई तीसरा अर्थ करे। तुम अगर किसी सिग्मंड फ्रायड को मानने वाले के पास जाओ, तो तुम्हारे स्वप्न का एक अर्थ होगा। अगर तुमने शंकर जी की पिण्डी देखी सपने में, वह कहेगा यह जननेद्रिंय है और कुछ भी नहीं। सावधान, तुम्हारे भीतर कामुकता का भयंकर रूप उठ रहा है! तुम जरा अपने से बच कर रहता है! तुमने कामवासना को दबाया है। अगर वही स्वप्न लेकर तुम किसी एडलर के पास जाओगे तो दूसरी व्याख्या होगी। वह कहेगा, शह शुभ्र संगमरमर की प्रतिमा इस बात की खबर है कि तुम्हारे भीतर शुभ्र होने की महत्वाकांक्षा जगी है। और अगल-अलग लोगों के पास अगल-अलग व्याख्याएं होंगी। जितने मनोवैज्ञानिक, उतनी व्याख्याएं। जितने हाथ देखने वाले, उतनी व्याख्याएं। व्याख्याओं का जाल मच गया। बजाय इसके कि कुछ निष्कर्ष निकलता, सम्राट और उलझन में पड़ गया। होने लगी, सूरज ऊगने लगा, सम्राट ने अपने वजीर को कहा कि यह तो मुसीबत है, यह तो हल नहीं होगा; सूरज निकल गया तो सूरज के डूबने में देर कितनी लगेगी! सूरज निकला कि डूबना शुरू हो जाता है, बच्चा जन्मा कि मरना शुरू हो जाता है। मैं क्या करूं?
उस वजीर ने कहा, इनके विवादों का तो कोई अंत न कभी हुआ है, न कभी होगा;
दस हजार साल से पंडितगण कर रहे हैं, किसी एक चीज पर सहमत नहीं हैं। ईश्वर है भी या नहीं, इस पर भी सहमत नहीं हैं! यह किसी चीज पर सहमत नहीं, यह सहमत होंगे नहीं--सहमत होने में तो इनके सारे प्राण ही निकल जाएंगे। इनका

व्यवसाय असहमति है। आप इनकी बातों में मत पड़ें। तो सम्राट ने कहा, मैं क्या करूं? उसने कहा, आपके पास इतना तेज अरबी घोड़ा है, आप उस पर बैठकर जितनी दूर निकल सकें निकल जाएं। यह महल खतरनाक है। यहां मौत ने आपको दर्शन दिए हैं। इस महल से जितनी दूर हो जाएं उतना अच्छा है। यह महल अपशगुन है। बात जंची। सम्राट अपने घोड़े पर सवार हुआ और भागा। बड़ा तेज घोड़ा था। सैकड़ों मील निकल गया सांझ होते-होते। बड़ा खुश था! जब सांझ को सूरज डूबने के करीब, आखिरी किरणें अस्त होती थीं, उसने एक बगीचे में जाकर--दमिश्क के-- अपने घोड़े को बांधा, घोड़े को बांध कर बड़े प्रेम से उसे गले लगाया, घोड़े को थपथपाया और कहा कि धन्यवाद है तेरा कि तू सैकड़ों मील दूर ले आया उस अपशुकन के स्थान से। लेकिन तभी फिर खिलखिलाहट की हंसी सुनाई पड़ी। पीछे लौट कर देखा, वही मौत खड़ी थी। वही काला चेहरा। सम्राट ने कहा, क्या तू फिर आ गई? खिलखिलाहट का कारण? उस मौत ने कहा कि धन्यवाद तुम्हें नहीं देना चाहिए घोड़े को, मुझे देना चाहिए, क्योंकि मैं बड़ी चिंतित थी क्योंकि मौत तुम्हारी इस झाड़ के नीचे घटनी है और मैं डरी थी कि घोड़ा तुम्हें समय पर ले आ पाएगा यहां, पहुंचा पाएगा या नहीं पहुंचा पाएगा? लेकिन तुम ठीक समय पर ठीक जगत आ गए।
भागो कहीं, एक न एक दिन ठीक जगह पर पहुंच जाओगे जहां मौत तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। मौत से भागो तो भी मौत में ही पहुंचोगे। मौत में घिरे हो। और फिर भी आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि तुम अमृत धर्म हो। इस जगत का सबसे बड़ा रहस्य न तो ताजमहल है, न बेबीलोनिया का गिर गया मीनार है जिस पर ज्योति सदा जलती रहती थी, बिना तेल के--बिन बाती बिन तेल--न चीन की दीवाल है, इस जगत का सबसे बड़ा आश्चर्य एक है कि मनुष्य अमृत है और मृत्यु से घिरा है। मनुष्य है अमृतद्वीप और मृत्यु के महासागर से घिरा है। यह इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार है। और स्वभावतः तुम्हें सागर तो दिखाई पड़ता है मृत्यु का, जो चारों तरफ लहरें लेता रहा है, तुम्हें अपना अमृत स्वभाव दिखाई नहीं पड़ता है। जो स्वभाव को जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है। जो स्वभाव को जान लेता है, उसके जीवन में अमी-रस की वर्षा हो जाती है।
जीव तहां बासा करै, निपट नगीचे काल... और मौत इतने करीब है, वही जीवन बसा हुआ है।
वो दिल नसीब हुआ जिसको दाग भी न मिला
मिला वो गमकदा जिसमें चराग भी न मिला
गई थी कहके मैं लाती हूं जुल्फे-यार की बू
फिरी तो बादे-सबा का दिमाग भी न मिला
असीर करके हमें क्यों रिहा किया सैयाद
वो हम-सफीर भी छूटे वो बाग भी न मिला
बुतों के इश्क में क्या होती हमसे यादे-खुदा कि दिल भी था न ठिकाने फराग भी न मिला
खबर को यार की भेजा था गुम हुए ऐसे हवासे-रफ्ता का अब तक सुराग भी न मिला दिखाए यार को क्या जिस्मे-दागदा की सैर नजर-फरेब हमें एक बाग भी न मिला
भर आए महफिले-साकी में क्यों न आंख अपनी
वो बेनसीब हैं खाली अयाग भी न मिला
चराग लेके इरादा था बख्त को ढूंढे
शबे-फिराक थी कोई चराग भी न मिला
जलाल बागे-जहां में वो अदलीब हैं हम
चमन को फूल मिले हमको दाग भी न मिला
अगर गलत खोजोगे तो फूल तो मिलें ही नहीं, कांटे भी नहीं मिल सकते हैं।
भर आए महफिले-साकी में क्यों न आंख अपनी...
जहां मधु ढाला जा रहा हो, वहां तुम्हें खाली प्यास भी न मिले तो स्वभाविक है कि क्यों न तुम्हारी आंखें भर आए...
भर आए महफिले-साकी में क्यों न आंख अपनी
वो बेनसीब हैं खाली अयाग भी न मिला

खाली प्याला भी न मिला और जहां शराब ढलती थी!
चराग लेके इरादा था बख्त को ढूंढें...
सोचते थे चिराग लेकर समय को ढूंढेंगे, अपनी विधि को ढूंढेंगे, भगवान
को ढूंढेंगे।
चराग लेके इरादा था बख्ते को ढूंढें
शबे-फिराक थी कोई चराग भी न मिला
और हम ऐसे हतभाग कि हमें एक छोटा सा भी न मिला।
जलाल बागे जहां में वो अंदलीब हैं हम
चमन को फूल मिले हमको दाग भी न मिला
और सोर फूल तुम्हारे थे, सारी बगिया तुम्हारी थी। सारे चांद-तारे तुम्हारे हैं और तुम्हारे चिराग नहीं मिल रहा! सागर सारे तुम्हारे हैं और तुम खाली प्याले को भी नहीं खोज पा रहे हो! कहीं दृष्टि गलत हो रही है। तुम वहां देख रहे हो जहां नहीं देखना चाहिए। और तुम वहां नहीं देखना चाहते जहां राजों का राज छिपा है।
एक भिखमंगा मरा एक शहर में। भीख मांगता रहा तीस साल तब, एक ही जमीन पर बैठा हुआ। और जब मर गया तो गांव के लोगों ने सोचा कि तीस साल बैठा रहा, जमीन पर गंदे कपड़े लिए, इस जमीन को भी थोड़ा खोद कर सफाई कर दो। तो लोगों ने थोड़ी जमीन भी खोदी। खोदी तो हैरान हो गए। वहां खजाने गड़े थे; वहां स्वर्ण की अशर्फियों के ढेर लग गए। सारा गांव हंसने लगा कि यह फकीर भी, यह भिखमंगा भी कैसा भिखमंगा था; जिस जमीन पर बैठा था, वहां सम्राट हो सकता था, मगर इसने कभी तलाश ही न की। यह अपना भिक्षापात्र लिए मांगता रहा। और मैं तुमसे कहता हूं, उस गांव के लोगों ने फिर भी कुछ न सीखा।
उस भिखमंगे की कहानी तुम्हारी कहानी भी है--हर गांव वालों की कहानी है। तुम जहां बैठे हो, वही स्वर्ग का साम्राज्य भी छिपा है। मगर तुम भीख मांग रहे हो! कौड़ी-कौड़ी की भीख मांग रहे हो!
वासना भिक्षा का पात्र है। प्रार्थना अंतर की खोज है। वहां तुम्हें ऐसा चिराग मिलेगा जो बुझता नहीं। और ऐसे अमृत के दर्शन होंगे जो जन्म के भी पहले था और मृत्यु के भी बाद होगा।
दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन माहिं...
याद रखना, वह परमात्मा तन से जुदा नहीं है। इसलिए जिन्होंने तुमसे कहा है कि शरीर के दुश्मन हो जाओ, वे धार्मिक लोग नहीं थे।
दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन के माहिं।
जोग-जुगति सों पाइये, बिना जुगति किछु नाहि।।
वह तन में ही छिपा है। वह तन से जुदा नहीं है। इसलिए जो लोग शरीर के दुश्मन हो जाते हैं धर्म के नाम पर, वे परमात्मा के भी दुश्मन हो जाते हैं। जिसने मंदिर को गिर दिया, उसने मंदिर के देवता को भी गिरा दिया। अगर मंदिर का देवता बचाना हो तो मंदिर का भी सत्कार करना, सम्मान करना। मैं तुम्हारे यही सिखाता हूंः अपने शरीर को मंदिर समझो, उसको सम्मान करो, सत्कार करो; अपने शरीर से प्रेम करो; शरीर परमात्मा की भेंट है, उसे तोड़ो मत, उसे सताओ मत, उसे जाओ मत। जो भी शरीर को तोड़ते हैं, जलाते हैं, परेशान करते हैं, वे सब मैसोचिस्ट हैं, रुग्ण हैं, बीमार हैं; उनकी मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों में निन्यानबे प्रतिशत को मानसिक चिकित्सक की जरूरत है। उनमें शायद ही कोई एकाध व्यक्ति कभी ठीक-ठीक अर्थों में समझ पाया है।
कोई शरीर को कांटों पर लिटाए पड़ा है। कोई भरी दुपहरी में चारों तरफ धूनी रमाए बैठा है; कोई ठंड में, बर्फ गिर रही है, खुले आकाश के नीचे खड़ा है; कोई उपवास कर रहा है; किसी ने मुंह में भाले छेद रखे हैं। इन पागलों से सावधान! यह अस्वस्थ लोग हैं। यह रुग्ण हैं। इन्हें मनोचिकित्सा की जरूरत है।
जानने वाले कुछ और कहते हैं, सनम को पहचानने वाले कुछ और कहते हैं।
दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन के माहिं...
तुम जिसे भी खोजना चाहते हो, वह तुम्हारे तन में छिपा है। इसलिए तन को तोड़ना मत, तन को सम्हालना, तन की सेवा करना। तन की सेवा उसके ही चरणों में

पहुंच जाती है। इसलिए मैं त्याग और तपश्चर्या का विरोधी हूं। भोग का पक्षपाती नहीं हूं, त्याग और तपश्चर्या का विरोधी जरूर हूं। भोग एक अति है, त्याग दूसरी अति है। समझदार व्यक्ति मध्य में ठहर जाता है। वह स्वर्ण-सूत्र पकड़ लेता है। न तो ज्यादा खाने की जरूरत है, न उपवास की जरूरत है। न तो चौबीस घंटे वस्त्रों की ही चिंता करने की जरूरत है और नग्न खड़े होने की जरूरत है। न तो बाजार में ही नष्ट हो जाना है और न जंगलों में भाग कर किन्हीं गुफाओं में छिपा जाना है। यह दोनों विकृतियां हैं। यह स्वस्थ चैतन्य के लक्षण नहीं। स्वस्थ चैतन्य का लक्षण तो यह हैः रहो बाजार से और ऐसे रहो कि बाजार तुम्हें छुए न। कमलवत और कमलवत होने की कला का नाम ही जोग-जुगति है। जोग-जुगति सौं पाइए, बिना जुगति किछु नाहिं।
थोड़ी कला सीखनी पड़ेगी। कोई तुम्हें वीणा हाथ में दे दे तो तुम यह मत समझ लेना कि तुम वीणावादक हो जाओगे। जीवन तो परमात्मा ने तुम्हें दे दिया हाथ में जब तुम जन्मे, मगर इससे तुम यह मत समझ लेना कि तुम जीवन की वीणा पर संगीत उठा सकते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में, मुल्ला नसरुद्दीन को परेशान करने के लिए किसी ने एक बच्चे को उसके जन्म-दिन पर एक ढोल भेंट कर दिया। अब बच्चे के ढोल मिल गया तो दिन भर ढोल ठोंके। दिन देखे न रात। मुल्ला की छाती फटने लगी। दिन भर ढोल ठुंक रहा है! घर के लोग भी परेशान, लेकिन लोग जितने परेशान, बच्चा उतना प्रसन्न। मोहल्ले भर में वही प्रमुख हो गया। मोहल्ले भर में नेता की हैसियत हो गई उसकी। जहां से निकल जाए लोग उससे प्रार्थना करें कि भाई, आज जरा घर मेहमान आ रहे हैं, ढोल न बजाना। लोग बड़ी-बड़ी उम्र के उसको नमस्कार करने लगे कि भैया, तेरा ढोल कहां है! आज जरा सो जाने देना, हम थके- मांदे हैं, आज रात ढोल मत बजाना! लेकिन एक दिन उसका नहीं बजा तो उसके बाप ने पूछा कि बेटा, ढोल का क्या हुआ? उसने कहा कि ढोल का क्या हुआ, क्या बताएं, मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे एक छुरा भेंट दे दिया और कहा, इसको ढोल में भोंक कर देख, ढोल में भोंकने से बड़ा मजा आएगा! तो वह छुरा ढोल में भोंक दिया है, तब से आवाज नहीं हो रही है।
ढोल मिल जाने से ढोल बजाना नहीं आता। न बांसुरी हाथा आ जाने से बांसुरी बजानी आती है। सच तो यह है कि बांसुरी हाथ आ जाए तो तुम जो भी करोगे, गलत होगा। तु-तु-तु-तु, में-में करोगे। मोहल्ले-पड़ोस के लोगों को परेशान करोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन को एक दफा धुन सवार हुई सितार बजाने की। सारा मुहल्ला परेशान हो गया। क्योंकि बस वह एक ही तार को ठोंकता रहे--रें-रें, रें-रें, रें-रें, रें-रें... मोहल्ला पागल होने लगा। उसकी पत्नी भी उसके हाथ जोड़े--जिसने उसके कभी हाथ नहीं जोड़े थे। जिसके सामने मुल्ला सदा हाथ जोड़े खड़ा रहता था, वह पत्नी भी हाथ जोड़े कि तुम अब क्षमा करो, अब यह रें-रें कब तक चलेगी? शास्त्रीय संगीत हमने बहुत सुना, मगर रें-रें, रें-रें, एकदम चलती रहे! घर में जीना मुश्किल हो गया है। पड़ोस के लोग मुझसे कहते हैं, तेरे पति को क्या हो गया है? और अगर बजाना ही है तो कुछ और राग भी बजाओ! मुल्ला ने कहा, और राग क्यों बजाऊं? पत्नी ने कहा, लेकिन और भी बजने वाले देखे हैं, कोई एक ही राग नहीं बजाता। तो मुल्ला ने कहा, वे राग खोज रहे हैं, मुझे मेरा राग मिल गया। तो वे खोज रहे हैं इधर-उधर, यह बजाते, वह बजाते, मैं क्यों बजाऊं?
जिंदगी तुम्हें मिली है, एक वीणा है जिंदगी, और बड़ी सूक्ष्म, बहुत नाजुक। लेकिन अधिक लोग सिर्फ रें-रें, रें-रें कर रहे हैं। सोच रहे हैं उन्हें मिल गया उनका राग। जिंदगी कला है। उस कला का नाम ही धर्म है। जन्म सिर्फ जीवन की शुरुआत है; एक अवसर है, अंत नहीं है। बीज है। और बीज को वृक्ष बनाना, वृक्ष को फूल तक ले जाना--लंबी यात्रा है। इस लंबी यात्रा में बहुत कुछ समर्पित करना पड़ेगा है, बहुत कुछ अर्पित करना पड़ता है। इस लंबी यात्रा में बड़ी साधना करनी होती है। और इस जिंदगी की वीणा की रें-रें से घबड़ा कर वीणा तोड़ मत देना, कसम मत खा लेना कि अब कभी इसे बजाएंगे नहीं क्योंकि सिर्फ इससे बेसुरे राग उठते हैं। क्योंकि अगर वीणा न बजाई, तो याद रखना, परमात्मा के मंदिर में कभी प्रवेश भी न पा सकोगे।

हमने कल ही कसम यह खाई थी
अब न सहबा को मुंह लगाएंगे
काश! पहले से यह खबर होती
आज वह खुद हमें पिलाएंगे
कल ही कसम खा ली थी कि अब कभी शराब न पीएंगे। मगर क्या पता था कि परमात्मा स्वयं साकी बनकर ढालेगा हमारी प्याली में।
हमने कल ही कसम यह खाई थी
अब न सहबा को मुंह लगाएंगे
काश! पहले से यह खबर होती
आज वह खुद हमें पिलाएंगे
एक दिन जरूर परमात्मा तुम्हारे प्राणों की प्याली में शराब को ढालेगा, मधुरस ढालेगा। प्याली मत तोड़ देना! एक दिन परमात्मा तुम्हारी वीणा को बजाएगा। वीणा को तोड़ मत डालना!
हर कली मस्ते-ख्याब हो जाती
पत्ती-पत्ती गुलाब हो जाती
तूने डाली न मैं-फशां नजरें
वर्ना शबनम शराब हो जाती
जिंदगी को जीने की एक कला है। देखना आता हो, तो शबनम शराब हो सकती है। पीना आता हो, तो पानी भी कोई ऐसे पी सकता है कि मस्त हो जाए; और पानी न आता हो तो शराब भी पानी है। जीना आता हो, तो जिंदगी एक उत्सव है, एक महोत्सव है; और जीना न आता हो, तो जिंदगी एक बोझ है, जिसको हम किसी तरह ढोए चले जाते हैं।
देख ली है चांदनी, कैसा लगा संसार, बोलो;
धूल के इस फूल को अब कर रहे हो प्यार, बोलो।
उस दिन जरा बरसात थी,
यों ही अंधेरी रात थी,
रोक ली मृदु सोहिनी सी चीज यों मन मार, बोलो। प्रिय, यह नदी का तीर है,
यमुना यहां गंभीर है,
दर्द के मारे रहो तो हो चुके बस पार, बोलो। कंकड़ बहुत हैं, खेल लो,
दुख-दर्द, बाधा झेल लो,
मिल गए पिय राह में, तो क्या रहा उपहार, बोली। इस भेद से अनज जान था,
कुछ और ही अनुमान था,
ध्यान था ब्रज की गली का, बज उठे यह तार, बोलो। चमका करेगी दामिनी,
आया करेगी यामिनी,
प्रेम से फूल करेगा बावला कचनार, बोला।
कुछ काट हीरे की कनी
दोगे बना तुम चांदनी;
किंतु लाओगे कहां से यह गले का हार, बोलो।
प्रेम किसी का नाम है,
अनुराग भी कुछ का है,
तीन दिन की जिंदगी, जगते गए दिन चार बोलो।
जिंदगी बीती जाती है। तीन दिन की जिंदगी है और चार दिन बीत जा रहे हैं। जितनी है उससे ज्यादा बीतती जा रही है और व्यर्थ बीती जा रही है।
देख ली है चांदनी, कैसा लगा संसार, बोला;
धूल के इस फूल को अब कर रहे हो प्यार, बोलो।
लेकिन चांदनी को देखने के दो ढंग हैं। एक ढंग है अंधी आंखों का ढंग।
चांदनी देख लेते और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और एक है आंख वाले का ढंग।
चांदनी में असली चांद दिखाई पड़ जाता है। और एक है आंख वाले का ढंग। चांदनी में असली चांद दिखाई पड़ जाता है।

एक ढंग हैः धूल के इस फूल को अब कर रहे हो प्यार, बोलोः जिसमें फूल धूल मालूम पड़ता है; और एक और ढंग है, जिसमें धूल भी फूल हो जाती है। सब तुम्हारी नजर पर निर्भर है। सब तुम्हारी दृष्टि पर निर्भर है। दृष्टि सृष्टि है। दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सब महं तुम, तुम में सभे, जानि मरम कोइ संत।।
दरिया कहते हैं, यह महासागर है। अगम अपार बेअंत... न शुरुआत न अंत, न कोई इसकी सीमा, न कोई इसकी परिभाषा। सब महं तुम... तुम सबमें हो; तुम में सभे... और तुम में सब समाए हुए; जानि मरम कोइ संत... लेकिन यह मरम की बात, यह गहरी बात कोई कभार कोई बिरला कभी जान पाता है। जो जान पाता है, वही संत है। संत का अर्थ होता है, जिसने सत्य को जान लिया। सत्य क्या है? कि परमात्मा के अतिरिक्त और सब असत्य है। और असत्य क्या है? कि परमात्मा असत्य है। और सब सत्य है। सत्य हैः परमात्मा--और शेष सब उसकी छाया। और असत्य हैः संसार--और परमात्मा सिर्फ एक कल्पना। दो ही तरह के लोग हैं दुनिया में। एक जो स्थूल को मानते हैं। वे स्थूल ही रह जाते हैं। और एक जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म को मानते हैं। वे उसके साथ ही सूक्ष्म हो जाते हैं। अगर उड़ान भरनी हो दूर आवाज, विराट के आकाश में, तो पंख चाहिए--
सूक्ष्म के पंख चाहिए। और अगर यही जमीन पर सरकते रहना हो कीड़े-मकोड़ों
की तरह, तो फिर पंखों की कोई जरूरत नहीं है।
जब कभी मुझको तेरा ख्याल आ गया
मेरे चेहरे की सारी थकन धुल गई
मेरे दिल में खुशी के कंवल खिल गए
मेरे एहसास में चांदनी धुल गई

और फिर इक मचलते हुए जोश से
चल पड़ा मैं तेरी जुस्तजू के लिए अपनी वामान्दः आंखों की महराब में कितनी गुलरंग शमए फरोजां किए

जाने कब तक तेरे रंगे-रुखसार को आर्जूओं के खाकों में भरता रहा लेके तखईल के बाजुओं में तुझे गीत गाता रहा, रक्स करता रहा

यूं ही गाते हुए, रक्स रहते हुए, मैं भटकता रहा, कितने सेहराओं में रूह में तो उमंगें महकती रहीं और कांटे खटकते रहे पांव में

मुद्दतों तक तुझे ढूंढते-ढूंढते आ ही पहुंचा बिलाखिर मैं तेरे की आंख उठा कर जो देखा तेरी शक्ल को
मुझको डसने लगा मेरा खवाबे-हसी

क्या यही वे भयानक खदो-खाल थे
जो मेरे अज्म को गुदगुदाते रहे
जिनकी खातिर मेरे नौजवां वलवले
जिंदगी भर मसाइब उठाते रहे
यह जो स्थूल जिंदगी है, इसको तुम कितना ही खोजो, इसकी सतह पर तुम कितनी
ही लंबी यात्राएं करो, एक न एक दिन तुम पराजित होकर गिरोगे, बड़े विषाद में, क्योंकि यह दूर के ढोल है जो सुहावने मालूम पड़ते हैं। परिधि पर नहीं है परमात्मा, केंद्र पर है। ऊपर-ऊपर मत दौड़ते रहो, भीतर उतरो। और भीतर उतरने की सीढ़ी तुम्हारे पास है। किसी से सीढ़ी उधार भी नहीं लेनी है। सीढ़ी तुम अपने साथ ही लाए हो। लेकिन तुम अपने भीतर देखते ही हनीं। तुम्हारी आंखें

बाहर की तरह जड़ हो गई हैं, वे भीतर मुड़ना भूल गई हैं। पक्षाघात लग गया है। तुम्हें याद नहीं रही कि भीतर भी कुछ है। और जो जानते हैं, जिन्होंने समन को जाना, वे कहते हैंः बाहर का आकाश बहुत छोटा है भीतर के आकाश के मुकाबले।
और बाहर की रोशनी भीतर की रोशनी के मुकाबले अंधेरे जैसी है। और बाहर की जिंदगी भीतर की जिंदगी के सामने मौत जैसी है। और बाहर का धन, भीतर के धन से उसकी तुलना ही नहीं की जा सकती।
माला टोपी भेष नहिं, नहिं सोना सिंगार।
सदा भाव सतसंग है, जो कोई गहै करार।।
ऊपर-ऊपर की चीजों से कुछ भी न होगा। कितने ही औपचारिक क्रियाकांड करो--हवन, पूजन, यज्ञ--कितने ही ऊपर के आवरण बना लो--रामनाम की चदरिया ओढ़ लो-- माला टोपी भेष नहिं, नहिं सोना सिंगार। सदा भाव सतसंग है... बस एक ही चीज काम आ सकती है, वह है भाव। ऊपर के रंग-ढंग नहीं, भीतर की भावदशा। सदा भाव सतसंग है, जो कोई गहै करार... अगर परमात्मा को खोजने का संकल्प किया हो, करार किया हो, अगर जीवन को सार्थक बनाने की अभीप्सा जगी हो, अगर यह तय किया हो कि यूं ही न मर जाएंगे, जान कर जाएंगे; अगर यह निर्णय तुम्हारे भीतर सघन हुआ हो कि यह भी कोई जिंदगी है कि ठीकरे इकट्ठे करते रहें और एक दिन भर जाएं; यह भी कोई जिंदगी है कि व्यर्थ इकट्ठा करते रहें और मौत सब छीन ले; यह भी कोई जिंदगी है कि नाम के पीछे दीवाने रहें और जब जाएं तो चार दिन बाद नाम का कोई पता भी न रहें।
जैन शास्त्रों में उल्लेख है, एक चक्रवर्ती सम्राट मरा। चक्रवर्ती सम्राट का अर्थ होता है, जो सारे जगत का सम्राट है, छहों महाद्वीपों का सम्राट है। जैन शास्त्र कहते हैं कि चक्रवर्ती सम्राट जब करता है तो उसके लिए एक विशेष आयोजन है। स्वर्ग में हिमालय का जो समानांतर पर्वत कैलाश है, चक्रवर्ती सम्राट को कैलाश के ऊपर अपने हस्ताक्षर करने का मौका मिलता है। सिर्फ चक्रवर्ती सम्राट को। तो स्वभावतः जब यह चक्रवर्ती सम्राट को अवसर आया कि यह जाए स्वर्ग और कैलाश पर्वत पर अपने हस्ताक्षर खोद दे, तो इसके आनंद की कोई सीमा न थी। बड़े फौज-फांटे लेकर चला। लेकिन सब फौज-फांटे द्वार पर रोक दिए गए। द्वारपाल ने कहा, आप अकेले जाएं, नियम यही है। आप जाएं, अपना नाम खोद दें, वापिस लौट आएं। बाकी सब लोग बाहर रुकें।
मजा वैसे ही कम हो गया। इस दुनिया का मजा ही यह है कि दूसरे लोग देखें। अकेले कमरे में बैठ कर तुम्हें कोई प्रधानमंत्री बना दे और किसी को खबर ही न दे, तो सार भी क्या है? ऐसा लगेगा जैसे किसी नौटंकी में, या रामलीला में! और देखने वाला कोई न हो, तो मजा तो सारा चला गया। इतना फौज-फांटा लाया था, मित्रो को निमंत्रण करके लाया था, यह सब द्वार पर रुक गए! यह अपूर्व घटना है, सदियों में घटती है। सदियों-सदियों में कभी कोई एक चक्रवर्ती होता है। लेकिन फिर गया भीतर--छेनी-हथौड़ा लेकर--और जब उसने विराट कैलाश देखा, तो दंग रह गया! हमारा हिमालय तो कुछ भी नहीं। जैसे हिमालय के सामने एक रेत का कण है, ऐसा हमारा हिमालय कैलाश के सामने एक रेत का कण। इतना विराट था, ऐसे उत्तुंग शिखर थे, क्षण भर तो अभिभूत हो गया! फिर खोजने लगा जगह कि कहां नाम खोदूं, तब और मुसीबत हो गई! सारा कैलाश नामों से भरा पड़ा था। पहले तो सम्राट हो चुके हैं, इतने चक्रवर्ती हो चुके हैं कि जगह ही नहीं थी! कि कहां दस्तखत करे! यह तो सोचता था कि शायद दो-चार दस्तखत होंगे वहां--हों दस-पांच--लेकिन यह विराट पर्वतशृंखला सारी दस्तखतों से भरी थीं। यहां इंचभर जगह नहीं थी। तो वह लौटा। उसने पहरेदार को पूछा कि क्षमा करें, मेरी तो सारी आशा पर पानी फिर गया। पहले तो लोग भीतर न जा सके। मगर अब मैं जानता हूं कि अच्छा ही हुआ लोग भीतर न गए, यह नियम ठीक है, नहीं तो बड़ी भद्द हो जाती। मैं तो सोचता था कि मैं कुछ, चुने, इने-गिने लोगों में, अंगुलियों पर गिने लोगे में हूं। यहां तो न मालूम अनंत चक्रवर्ती हो चुके हैं। मैं तुमसे पूछता हूं, जगह कहां है? उसने कहाः अब तुम क्षमा करो, किसी का भी नाम मिटा कर अपना लिख दो, क्योंकि पहले भी यही होता रहा है। लोग मिटा-मिटा कर नाम लिख जाते हैं।
अब तो मजा और भी चला गया! अगर मैं मिटा कर लिख रहा हूं, कल कोई आएगा और मेरा मिटा कर लिख जाएगा।

मगर यह दशा है। हम दौड़ रहे नाम के पीछे, धन के पीछे, पद-प्रतिष्ठा के पीछे, हाथ क्या लगेगा? यह कमाना नहीं है, यह गंवाना है।
एक ही चीज संकल्प करने जैसी है कि प्रभु को जान लूं, क्योंकि वही शाश्वत, वही सनातन।। जिनके भीतर थोड़ा भी पौरुष है, साहस है, वे अपने सारे संकल्प को एक ही दिशा में गतिमान कर देते हैं कि स्वयं को जाने बिना न जाऊंगा। यह भीतर का दीया जलाऊंगा ही, जलाऊंगा ही! सदा भाव सतसंग है, जो कोई गहै करार।
और तो पास मेरे हिज्र में क्या रक्खा है।
इक तेरे दर्द का पहलू में छुपा रक्खा है।
आह वह याद कि उस याद को होकर मजबूर!
दिले-मायूस ने मुद्दत से भुला रक्खा है।।
हमारे पास देने को भी क्या है परमात्मा को?
और तो पास मेरे हिज्र में क्या रक्खा है...
इस विरह की अंधेरी रात में हमारे पास देने को है भी क्या? हम कीमत कैसे
चुकाए?
और तो पास मेरे हिज्र में क्या रक्खा है।
इक तेरे दर्द को पहलू में छुपा रक्खा है।।
मगर वही काफी है। बस उसे पाने का एक दर्द तुम्हारे पहलू में आ जाए कि स्वाति की बूंद पड़ गई सीप में, मोती बनेगी। और वही मोती आत्मा है।
साल-हा साल की तलाश के बाद
जिंदगी के चमन से छापे हैं
आपको चाहिए तो पेश करूं
मेरे दामन में चंद कांटे हैं
और तो परमात्मा को हम क्या दे सकते हैं?
साल-हा साल की तलाश के बाद
जिंदगी के चमन से छांटे हैं
आपको चाहिए तो पेश करूं
मेरे दामन में चंद कांटे हैं
अपने सारे दुख को, अपने सब कांटों को उसके चरणों पर उ.ंडेल दो। और मैं तुमसे कहता हूं यह तुमने कांटे उंड़ेले, कि उंड़ेलते ही फूल हो जाते हैं। तुमने पत्थर उसे चरणों में डाले, कि डालते ही कोहनूर हो जाते हैं। तुमने चढ़ाया भाव से--इसी मग कामिया है, इसी में जादू है।
गम की रातों के ख्वाब लाया हूं
हद यह इज्तिराब लाया हूं
शोख लफ्जों के आबगीनों में
आंसुओं की शराब लाया हूं
और तो कुछ है नहीं हमारे पास। लेकिन आतुरता के पात्रों में अपने आंसुओं की शराब तो चढ़ाने ले जा सकते हो!
गम की रातों के ख्वाब लाया हूं...
अब तक की हमारी जिंदगियां थी क्या? गम की रातें थीं, दुख-भरी, विरह की।
हद यह इज्तिराब लाया हूं...
बस एक आतुरता है, पाने की एक अभीप्सा है, एक प्यास है।
शोख लफ्जों के आबगीनों मग
आंसुओं की शराब लाया हूं
तुम्हारे शब्द क्या है? तुम्हारी प्रार्थनाएं क्या हैं? तुम्हारे आंसुओं की अभिव्यक्तियां हैं।
नहीं तो शब्दों से कहा जा सकता, उसे आंसुओं से कहो। नहीं जो निवेदन किया जा सकता, नाच कर कहो। जो बोला जा सकता, झुककर कहो। कठिनाई है। प्रभु की प्रार्थना कैसे हो? यह करार कैसे हो?
गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं
दे दिए अरमान अगणित
पर न उनकी पूर्ति दी,
कह दिया मंदिर बनाओ

पर न स्थापित मूर्ति की।
शह बताया शून्य की आराधना करते रहो, चिर-पिपासित को दिया मरुस्थल, मगर निर्झर नहीं। गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं?
स्नेह का दीपक जला कर
आह और कराह दी,
रूप मृन्मय दे, हृदय में
अमरता की चाह दी।
कहदिया बस मौन होकर साधना करते रहो,
पा जिसे तू जी सको, खोकर उसे तू मर नहीं। गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं?
गगन सीमा हीन, दुस्तर सिंधु
परिधि अथाह दी,
आदि-अंत-विहीन, मुझको
विषम-बीहड़ राह दी।
कह दिया, अविराम जग में भटकते फिरते रहो,
कर प्रवासी दे दिया परदेश, लेकिन घर नहीं।
गीत गाने को दिए पर स्वर नहीं?
नहीं, प्रार्थना को शब्दों में बांधने का कोई उपाय नहीं है। मगर आंसुओं में उतरती है प्रार्थना। नाचो! झुको! गाओ! और उसी करार में, उसी संकल्प में परमात्मा की पहली झलकें आनी शुरू होती हैं। झरोखे खुलते हैं, उसकी छवि उतरती है, उसकी झनकार सुनाई पड़ती है।
परआतम के पूजते, निर्मल नाम अधार।
पंडित पत्थल पूजते, भटके जम के द्वार।।
और पूज चुके हो तुम पत्थरों को बहुत--फिर वे पत्थर मंदिरों के हों कि मस्जिदों के हों--पूज चुके हो पत्थर तुम बहुत। उन पत्थरों से तुम कहीं भी पहुंच न सकोगे। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पत्थरों में परमात्मा नहीं है। लेकिन परमात्मा अगर तुम्हें प्राणों नहीं दिखाई पड़ रहा तो पत्थरों में क्या खाक दिखाई पड़ेगा! पहले प्राणों में पहचान हो जाए तो फिर पत्थरों में भी दिखाई पड़ता है। फिर मंदिर के पत्थरों में भी वही है, फिर काबा के पत्थर में भी वही है, मगर पहले प्राणों में पहचान होनी चाहिए। प्राणों में दिख जाए तो सब जगह दिखाई पड़ता है।
लेकिन लोग पत्थर क्यों पूजते हैं? पत्थर पूजने में आसानी है; खतरा नहीं है, चुनौती नहीं है। पत्थर कुछ मांगता नहीं। चढ़ा आए दो फूल तो भी ठीक, न चढ़ा आए तो भी ठीक। लेकिन अगर तुम जीवंत सदगुरु को खोजोगे तो सस्ता सौदा नहीं है। फूल चढ़ाने से न होगा, प्राणों के फूल चढ़ाने होंगे। अगर तुम जीवंत सदगुरु खोजोगे, अगर तुम किसी कृष्ण, कबीर, दरिया, नानक, मोहम्मद, मंसूर, ऐसे किसी आदमी के चरणों में बैठोगे, तो सस्ता सौदा नहीं है। फिर वहां कायरता से न चलेगा। वहां जोखम उठानी होगी। इसलिए लोग बड़े होशियार हैं, लोग बड़े चालबाज हैं। उन्होंने जिंदा मंसूरों को तो सूली चढ़ा दिया, जिंदा जीसस को तो मार डाला और फिर चर्च बना लिए, और उनमें पत्थरों की मूर्तियां रख लीं, और पत्थरों की मूर्तियों की पूजा चल रही है। यह पूजा बड़ी आसान है। यह खिलौने हैं तुम्हारे हाथ के। इन खिलौनों के साथ तुम खेलते रहो, तुम्हारी जिंदगी न बदलेगी। जिंदगी बदलती है जब कोई जोखम लेता है।
पंडित पत्थल, पूजते, भटके जम के द्वारा।। पूजते रहो और पांडित्य को सम्हालते रहो, मौत के दरवाजों पर भटकते रहोगे। एक मौत से दूसरी मौत, दूसरी से तीसरी मौत, मौत ही मौत की सीमाओं में तुम अटकते रहोगे। अनंत सीमाएं हैं मृत्यु की। अमृत से तुम्हारा संबंध न हो सकेगा। संबंध का एक ही उपाय हैः परआतम के पूजते; जहां तुम्हें परमात्मा की साक्षात प्रतीति हो, वहां झुकना, वहां अपने अहंकार को तोड़ देना; वहां गिर पड़ना; वहां रोकना मत, पुरानी आदतों के कारण अपने को सम्हालना मत! और एक बार किन्हीं आंखों में जिंदा परमात्मा की थोड़ी सी झलक मिल जाए। एक बार सदगुरु से संग हो जाए, फिर क्रांति हो गई, फिर बुझा दीया जल गया।

रहने लगी उनकी याद हरदम।
अब और हमें रहेगा क्या याद?
एक ही याद रह जाती है फिर चौबीस घंटे, सतत, श्वास-श्वास में पिरो जाती है, समो जाती है।
यह भी आदाबे-मोहब्बत ने गवारा न किया।
उनकी तस्वीर भी आंखों से निकाली न गई।।
एक बार ही दो आंख चार आंखें हो जो; किसी ऐसे से मिलन हो जाए जिसने उस सनम को जाना हो, उस प्यारे को जाना हो, उस प्रीतम की बांहों में जिसकी बांहें हों; फिर वह तस्वीर तुम्हारी आंख से निकलेगी नहीं। निकालना भी चाहोगे तो निकलेगी नहीं। फिर यह अदब के बाहर की बात है कि उस तस्वीर को तुम आंखों से निकालो। यह अदब बरदाश्त न करेगा।
पर्दे से इक झलक जो वोह दिखला के रह गए।
मश्ताके-दीद और भी ललचा के रह गए।
और एक बार किसी सदगुरु से पहचान हो जाए, जरा सा घूंघट उठे, जरा सी झलक मिल जाए उस प्यारे की, कि फिर दीवानगी पैदा होती है। उसी दीवानगी का नाम संन्यास है। उसी पागलपन का नाम संन्यास है।
पर्दे से इक झलक जो वोह दिखला के रह गए।
मुश्ताके-दीद और भी ललचा के रह गए।।
फिर तो मन करता एक बात को कि कैसे डूब जाऊं, कैसे पूरा-पूरा डूब जाऊं? हुस्ने-फितरत में जज्ब हो जाऊं
सीमगूं रौशनी में खो जाऊं
काश मैं आज रात-भर के लिए
चांदनी से लिपट के सो जाऊं
इतनी ही शुद्ध है वह प्रतीति, जैसे क्ंवारी चांदनी। हुस्ने-फितरत में जज्ब हो जाऊं... वह जो यथार्थ का सौंदर्य है, सत्य का सौंदर्य है, उसमें कौन न खो जाना चाहेगा--एक बार झलक मिले बस!
मंदिर जो असली गया, वह लौटता नहीं। लौट सकता नहीं। प्रार्थना असली जगी तो उसी प्रार्थना में प्रार्थी खो जाता है। फिर लौटना कहां? हुस्ने-फितरत में जज्ब हो जाऊं
सीमगं रौशनी में खो जाऊं
काश मैं आज रात भर के लिए
चांदनी से लिपट के सो जाऊं
उठने दो ऐसी याद। दरिया कहै सब्द निरबाना। सुनो!
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में
इस तरह आई रंगोनूर लिए
जैसे इक सीमपोश दोशीजा
मकबरे में जला रही हो दिए
जैसे कोई क्वांरी लड़की, शुभ्र-शुभ्र वस्त्र पहने जाकर मंदिर में दीया जलाती हो, ऐसी ही उसकी याद आ जाती है--एक बार सदगुरु से मिलना हो जाए।
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में...
दिल के अंधेरे में ऐसी कौंध जाती याद...
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में
इस तरह आई रंगोनूर लिए
इस तरह आई रंगोनूर लिए
खूब रंग लिए, खूब प्रकाश लिए, खूब बहार लिए वसंत की भांति, मधुमास की भांति...
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में
इस तरह आई रंगोनूर लिए
जैसे इक सीमपोश दोशीजा
मकबरे में जला रही हो दिए
और यह याद असली जन्म है। एक जन्म है जो मां-बाप से मिला, वह केवल देह का जन्म है। और एक और जन्म है जो सदगुरु से मिलता है--दरिया से, नानक से, बहाऊद्दीन से, बुद्ध से, लाओत्सु से, जरथुस्त्र से--एक और जन्म है, सदगुरु

से मिलता है। उस जन्म का जब तक तुम्हें अनुभव न हो जाए, तब तक जानना अभी बाहर ही भटक रहे, मंदिर में प्रवेश नहीं हुआ। उस जन्म को ही बताने के लिए इस देश ने एक अदभुत शब्द खोजा--द्विज।
साधारणतः ब्राह्मण को द्विज कहते हैं; वह बात ठीक नहीं। सभी ब्राह्मण द्विज नहीं होते, यद्यपि सभी द्विज ब्राह्मण होते हैं। द्विज का अर्थ है, दुबारा जो जन्मा; सदगुरु से जो जन्मा। जो दुबारा जन्मा, वह ब्राह्मण। लेकिन सभी ब्राह्मण द्विज नहीं होते, याद रखना। शूद्र भी द्विज हो सकता है। और ब्राह्मण की भी द्विज होने की कोई अनिवार्यता नहीं है।
रैदास द्विज हो गए, चमार थे। और गोरा द्विज हो गया, कुम्हार था। द्विज होने में तुम्हारे जन्म का कोई संबंध नहीं है। जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं।
मेरे हिसाब में दुनिया में दो वर्ण हैं--शूद्र और ब्राह्मण। जन्म से सभी शूद्र होते हैं। फिर सौ में से कभी एकाध श्रम से ब्राह्मण होता है। दुबारा जो जन्म को उपलब्ध होता है, समाधि में जो जन्म लेता है, ध्यान में जो जन्म लेता है।
सुमिरन माला भेष नहिं, नाहीं, नाहीं मसि को अंक...
यह लिखे-पढ़े की बात नहीं है, यह शास्त्रों और किताबों की बात नहीं है।
नाहीं मसि को अंक। कबीर का वचन तुम्हें याद है नः मसि कागद छूयो नहिं, कि न तो स्याही छुई कभी और न कभी कागज छुआ। और कबीर ने यह भी कहा हैः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। यह देखने की बातें हैं, दर्शन की, अनुभव की। सुमिरन माला भेष नहिं, नाहीं मसि को अंक।
सत्त सुकृत दृढ़ लाइकै, तब तोरै गढ़ बंक।।
यह जो अंधेरे का विकट जाल है; यह जो माया-मोह का, भ्रांतियों का, स्वप्नों को, वासनाओं का विकट जाल है, यह किताबें पढ़ने से नहीं टूटेगा--बढ़ भला जाए टूटेगा नहीं। यह टूटता है सब सत्य की प्रतीति होती है, सत्य में सुदृढ़ता होती है। मगर कौन करवाए सत्य में सुदृढ़ता? जिसने जाना हो, वह जनाए; जो पहुंचा हो, वह पहुंचाए।
दरिया भवजल अगम अति, सतगुरु करहु जहाज...
इसलिए दरिया कहते हैं कि यह सागर बहुत बड़ा है, सदगुरु को जहाज बनाओ।
दरिया भवजल अगम अति, सतगुरु करहु जहाज।
तेहि पर हंस चढ़ाइकै, जाड़ करहु सुखराज।।
और अगर चढ़ जाओ तुम किसी सदगुरु की नाव पर, तो पहुंच जाओ उस पर।
कोठा महल अटारिया, सुनेऊ स्रवन बहुराग।
बड़ा प्यारा वचन है, खूब सम्हाल कर हृदय में रख लेना! कोठा महल अटारिया... सुने होंगे तुमने कोठियों पर, महलों में, अटारियों में... सुनेऊ स्रवन बहु राग... बहुत राग सुने होंगे, बहुत गीत सुने होंगे, बहुत संगीत सुने होंगे। मगर वे सब ऐसे हैं जैसे कौओं की कांव-कांव। तुमने अभी कोयल का राग सुनी ही नहीं।
कोठा महल अटारिया, सुनेऊ स्रवन बहु राग।
सतगुरु सबद चीन्हें बिना, ज्यों पंछिन महं काग।।
जब तक तुमने सदगुरु का वचन नहीं सुना तब तक कोयल तुम्हारे भीतर कूकी नहीं। पपीहा तुम्हारे भीतर पुकारा नहीं। तब तक तुम कौओं की ही आवाज सुनते रहे, कांव-कांव ही सुनते रहे।
निगाहे-यार जिसे आश्नाए-राज करे।
वोह अपनी खूबिए-किस्मत पै क्यों न नाज करें।
धन्यभागी हैं वे, जो सुन लेते हैं! दरिया कहै सब्द निरबाना! धन्यभाग हैं वे, जो देख लेते हैं, सुन लेते हैं, पहचान लेते हैं! धन्यभाग हैं वे, जो अपने हृदय को उघाड़ देते हैं!
निगाहे-यार जिसे आश्नाए-राज करे...
और उस प्यारे की आंख जिसे अपने पास बुलाती हो... परिचय देने को...
वोह अपनी खूबिए-किस्मत पै क्यों न नाज करे।
अगर नाज करने योग्य बात है कहीं दुनिया में कोई एक, तो बस वह यही है कि परमात्मा तुम्हारी तरफ देख ले। और परमात्मा पहली बार तुम्हारी तरफ किसी

सदगुरु की आंख से ही देख सकता है। सीधा-सीधा तुम उससे संबंधित न हो सकोगे। तुम उससे बहुत दूर, तुम्हारी जान-पहचान नहीं, कोई चाहिए, जो तुम्हारा परिचय करा दे।
इतना मुझे विश्वास है!
कितना मधुर प्याला पीए,
कितनी सरल हाला पीए,
पर सुप्ति हो या जागरण,
उन्माद हो या चेतना,
उर में धधकती जो विरकी
दाह जा सकती नहीं!
इतना मुझे विश्वास है!
घर द्वार कोई छोड़ दे,
संबंध सारे तोड़ दे,
विचरण अकेला ही करे
निर्जन वनों में, किंतु यह उलझी हुई तन से, कभी
परवाह जा सकती नहीं!
इतना मुझे विश्वास है!
कोई हृदय खोकर मिले,
परिरंभ-लय होकर मिले,
पर प्यार के संचार में
दो एक क्या शत बार भी
मिलकर भी फिर से मिलन की
चाह जा सकती हनीं!
इतना मुझे विश्वास है!
खोज लो कुछ इस जगत में, परमात्मा की खोज तुम्हारे भीतर बार-बार सिर उठाती रहेगी। पा लो कुछ भी इस जगत में, लेकिन परमात्मा बीच-बीच में व्यवधान डालता रहेगा। कितना ही प्रेम घटे इस जगत में, जब तक प्रार्थना न घटेगी तब तक कुछ भी न घटेगा।
मगर यह सौभाग्य की बात है कि लाख हम उपाय करें, कितने ही हम दूर निकल जाएं, मगर परमात्मा की खोज सदा के लिए समाप्त नहीं हो सकती--बीज दग्ध नहीं हो सकता है! कितना ही दबाएं और पत्थरों में कितना ही छिपाएं, एक न एक दिन अंकुरित होता है बीज।
इतना मुझे विश्वास है!
कितना मधुर प्याला पीए,
कितनी सरस हाला पीए,
पर सुप्ति हो या जागरण,
उन्माद हो या चेतना,
उर में धधकती जो विरह की
दाह जा सकती नहीं!
इतना मुझे विश्वास है!
उसी विश्वास के सहारे, उसी विश्वास के पतले से धागे के सहारे लोग परमात्मा तक पहुंचते रहते हैं। तुम भी ऐसे ही पहुंचोगे। करार करो; संकल्प करो; जागने का निर्णय लो। सुनो, सुन सको तो; देखो, देख सको तो; दरिया कहै सब्द निरबाना... !

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
दसवां प्रवचन

जीवन स्वयं अपनी समाधि है

पहला प्रश्नः भगवान, कवि और ऋषि में क्या भेद है?

कवि है बीज; भूमि के अंधेरे गर्भ में राह खोजता, टटोलता, गिरता-उठता। पहुंचेगा, अभी सब संदिग्ध है। उठ सकेगा अंधेरे के पार, होगा मिलन सूरज से, अभी सब सपना है। पहुंचना हो भी सकता है। अभीप्सा है, गहन प्यास है। चूकना भी हो सकता है; क्योंकि सभी बीज वृक्ष नहीं बनते। और जो बीच वृक्ष बन जाते हैं, वे भी सभी फूलों को उपलब्ध नहीं होते। न मालूम कितनी कठिनाइयों को पार कर के कोई बीज फूल बन पाता है, कोई संभावना वास्तविक हो पाती है।
कवि को प्रकाश की प्यास तो है। और शायद सपनों के किन्हीं तलों पर प्रकाश की थोड़ी छाया भी है। पर अभी प्रकाश का अनुभव नहीं है। आंख खुली नहीं। अधजागा-अधजागा है। जैसे भोर हो गई, पक्षी गीत गाने लगे, सूरज ऊग आया, और तुमने और एक करवट ले ली, कंबल को खींच कर और सो रहें, ऐसे कुछ-कुछ सुबह की भनक भी पड़ने लगी कान में--राह चलने लगी, दूधवाले ने द्वार पर दस्तक दी, बच्चे स्कूल जाने की तैयारी करने लगे, तुम्हारी पत्नी ने चाय बनाने का उपक्रम शुरू कर दिया, चाय की गंध भी नासापुटों में आने लगी, यह सब होने लगा मगर अभी तुम जागे नहीं हो। तुम सोए भी नहीं हो, तुम जागे भी नहीं हो, तुम किसी मध्य की अवस्था में हो। वही मध्य की अवस्था कवि की अवस्था है, इसलिए कवि सोए हुए लोग और जागे हुए लोगों के बीच अक्सर सेतु बन जाता है।
कवि जीता है पृथ्वी पर, ऋषि उड़ता है आकाश में। हां, कभी-कभी कवि भी आकाश की तरफ आंखें उठा कर देखता है और यह भी सही है कि कभी-कभी ऋषि भी आंखें झुका कर पृथ्वी की ओर देखता है, लेकिन उनके परिप्रेक्ष्य भिन्न हैं, उनके दर्शन के बिंदुकोण भिन्न हैं। कवि पृथ्वी का पुत्र है, मिट्टी का पुतला है। कवि कब आंखें उठाता है और तारों भरे आकाश को देखता है, तो क्षण भर को भूल जाता है अपने मर्त्यभाव को, मृत्यु को, देह को। ऋषि अमृत का पुत्र है। उसने जान लिया कि जीवन शाश्वत है। और जब वह पृथ्वी पर भी देखता है तो भी क्षण भर को यह बात भूलती नहीं। पृथ्वी पर भटकते, राह खोजते लोगों पर उसके हृदय में महाकरुणा उत्पन्न होती है, वह बरस पड़ना चाहता है, वह लोगों के मार्ग पर दीये बन जाना चाहता है, उनके हाथों में मशाल बन जाना चाहता है! कवि भी गाता है, ऋषि भी गाता है। मगर गान-गान में बहुत भेद है। कवि का गीत सांत्वना से ज्यादा नहीं। मधुर है, मीठा है, सुस्वादु है, क्षणभर को जीवन की चिंताओं से मुक्त करने में सहयोगी है, मादक है, शामक है। पर ऋषि का गीत कुछ और। ऋषि जगाता है, झकझोरता है। ऋषि का वक्तव्य क्रांति का वक्तव्य है। ऋषि का वक्तव्य है। ऋषि का वक्तव्य आग्नेय है, तीर की तरह चुभता है। सांत्वना नहीं है ऋषि के वचनों में, सत्य की अग्नि है। कवि के वचन मूर्च्छा लाने में सहयोगी हो सकते हैं, ऋषि के वचन, जागरण, ध्यान उस पर अनुभूति की तरफ ले चलते हैं, जहां प्रभु से साक्षात होता है। ऋषि द्रष्टा है, कवि केवल स्वप्न भोगी।
पर कभी-कभी कवि के स्वप्नों में ऋषि के दर्शन की छाया पड़ती है। और कभी- कभी कवि जाने-अनजाने ऋषि की अमृत बूंदों को भी अपने शब्दों में बांध पाता है।
कवि के लिए कभी-कभी झरोखा खुलता है, ऋषि की वही सम्यक दशा हो गई है। कवि में द्वंद्व है सदा, एक संघर्ष है। कवि अपने से लड़ रहा है। कवि बंटा है। बाहर कुछ, भीतर कुछ। तो ऐसा भी हो सकता है कि कवि की सुंदर गीतमालाओं को पढ़ कर, सुन कर, गुनगुना कर तुम कवि को देखने की आकांक्षा से भर सकते हो। मगर भूल कर भी ऐसी भूल न करना। क्योंकि कवि तो तुम अतिसाधारण पाओगे। वे जो असाधारण वक्तव्य थे उसके, उनमें जो तुम्हें गरिमा अनुभव हुई थी, कवि को देख कर वह भी खो जाएगी। कवि को तुम अति-साधारण पाओगे। तुम जैसा ही। शायद तुम से भी ज्यादा साधारण। क्योंकि कवि को कभी-कभी छलांग लगती है, किन्हीं

अनजाने क्षणों में अनायास वह देख लेता है बहुत दूर के दृश्य, पर वे खो जाते है; बांध भी लेता है उनको शब्दों में, लेकिन वे खो जाते हैं।
कूलरिज से किसी ने पूछा कि आपकी एक कविता मैं पढ़ता हूं, प्रीतिकर है,
पर अर्थ पकड़ में नहीं आता। आपकी कविता को पढ़ने वाले बड़े-बड़े विद्वज्जनों से भी मैंने अर्थ पूछा है, वे भी अर्थ साफ नहीं कर पाए। तो मैं आपसे ही पूछने आया हूं। कूलरिज ने कहा, जरा देर हो गई। जब मैंने लिखी थी, तो दो व्यक्तियों को इस कविता का अर्थ मालूम था, अब केवल एक को ही मालूम है। उस व्यक्ति ने कहा, तो निश्चित ही वह एक व्यक्ति तो आप ही होंगे न! समझ दें मुझे। कूलरिज ने कहा, तुम भूल करते हो। जब मैंने यह कविता लिखी, तो मैं भी अर्थ जानता था और परमात्मा भी अर्थ जानता था। अब केवल परमात्मा ही अर्थ जानता है। मुझे कुछ अर्थ का पता नहीं है। एक क्षण को जैसे झरोखा खुल गया था, एक हवा का झोंका आ गया था, धुल उड़ गई थी, आंखें ताजी हो गई थीं, कुछ दिखा था; फिर वापस गिर गए अपने अंधकार में, फिर सरकने लगे उन्हीं अंधेरे गृहों में, आकाश छूट गया, आकाश के तारे छूट गए, फिर अर्थ कहां?
कवि से उसकी कविता का अर्थ मत पूछना। हां, उसे कभी मालूम होता है जब कविता का जन्म होता है--बस उसी प्रसव के क्षण में--फिर चूक जाता है।
कवि एक द्वंद्व है। इसीलिए दुनिया में अधिकार कवि विक्षिप्त मालूम होते हैं। अधिकतर कवि विक्षिप्त हो जाते हैं। अधिकतर कवि आत्मघात कर लेते हैं। अधिकतर कवि शराब और ऐसे मादक द्रव्यों में डूब जाते हैं। अधिक कवियों का जीवन शुभ जीवन नहीं होता। ऐसा क्यों है? उनके गीत तो बड़े प्यारे होते हैं, उनके गीतों में तो बड़े पंख होते हैं--कि सवार हो जाओ तो दूर तक की यात्रा पर ले जाएं--मगर कवि स्वयं क्यों उन पंखों पर सवार नहीं हो पाता? उसके भीतर एक द्वंद्व है। निन्यानबे प्रतिशत तो वह मिट्टी है, एक प्रतिशत स्वर्ग की किरण है। वह एक प्रतिशत किरण निन्यानबे प्रतिशत मिट्टी को लेकर उड़ नहीं सकती। उसके भीतर सतत संघर्ष है। वह दो जीवन जीता है।
एक जो उसके गीतों का जीवन है। वहां वह ठीक ऋषियों-जैसा मालूम होता है।
और एक, जो उसका सामान्य जीवन है। वहां वह सामान्य व्यक्ति से भी गया-बीता मालूम होता है। कवि एक दुविधा है एक द्वैत है, एक दुई है, खंड-खंड है। ऋषि अखंड है, निद्वंद्व है, अद्वैत है। जो बोलता है, वही जीता है। जो जीता है, वही बोलता है। उसके बोलने में और उसके जीने में एक तारतम्य है, एक लयबद्धता है। उसके भीतर दो स्वर नहीं हैं। उसके भीतर इकतारा बज रहा है। हो सकता है, कवि गीत तो प्रेम के गाता हो और प्रेम का उसने कभी अनुभव न किया हो।
अक्सर यही होता है।
अक्सर प्रेम के गीत वे ही गाते हैं, जो प्रेम वंचित रह गए हैं। मन को समझाते हैं ऐसे। उनके प्रेम के गीत उनके प्रेम के अनुभव की कभी को पूरा करने के उपाय हैं, परिपूरक हैं। नहीं जो अनुभव हुआ है, गीत गा-गाकर अपने को भुलाते हैं।
ऋषि जब प्रेम के गीत गाता है, तो वह उसकी आत्मा से बहती हुई सरिता है।
वह उसका अनुभव है। कवि भी परमात्मा की बात करते हैं, लेकिन वह परमात्मा ऐसा ही है जैसे कभी तुम्हारा दांत टूट गया हो एक और जीभ बार-बार उसी जगह जाती है जहां दांत टूट गया है। जब तक दांत था, कभी जीभ वहां न जाती थी। अब दांत नहीं है, खाली जगह है, खाली जगह अखरती है, जीभ वहीं-वहीं बार-बार जाती है। ऐसे ही कवि का ईश्वर है। टूटा हुआ दांत है, खाली जगह है, जीभ बार-बार वहां जाती है। एक रिक्त स्थान है, जो मांग करता है कि मुझे भरो। एक गड्ढा है, जो भर जाना चाहता है। मगर कवि के पास कोई उपाय उसे भरने का नहीं है। हां, ईश्वर के गीत लिख सकता है, प्यारे गीत लिख सकता है, मगर वे प्यारे गीत बस शब्दों में ही प्यारे होंगे, उनमें अर्थ नहीं होगा, आत्मा नहीं होगी। देह तो होगी, सुंदर देह होगी, बड़े प्रीतिकर आभूषणों में लदा हुआ रूप होगा, मगर जैसे ही घूंघट उठाओगे, भीतर कुछ भी न पाओगे।
अक्सर कविताओं के भीतर कोई आत्मा नहीं होती। कविताएं, अक्सर ऐसी होती हैं जैसे खेत में तुम झूठे आदमी को खड़ा कर देते हो न! पशु-पक्षियों के डराने के काम आ जाता है। लेकिन खेत का झूठा आदमी! हंडी भी रख दो डंडे पर--

सिर जैसी मालूम पड़ती है--गांधी टोपी भी लगा दो--तो अंधेरे में भी डरवाए-- चूड़ीदार पाजामा पहना दो, अचकन पहना दो--तो ऐसा लगे कि नेता जी हैं--मगर बस पशु-पक्षियों को डरा ले तो बहुत।
कवियों की कविताएं अक्सर खेत के झूठे आदमी हैं। आदमियों जैसे मालूम होते हैं, लेकिन भीतर कोई आत्मा नहीं, कोई हृदय धड़कता नहीं, श्वास चलती नहीं। ऋषि आत्मवान है। उसके शब्द चाहे बहुत सुघड़ न हों, उसके शब्द शायद बहुत भाषा, व्याकरण और छंद में, मात्राओं में न हों, लेकिन उसके शब्दों में जीवन है--और वही तो असली छंद है। उसके शब्दों में उसके अपने अनुभव की छाप है। वही तो अर्थपूर्ण है, वही तो आत्मा है। शब्द कितने ही सुंदर हों--लाश को तुम कितना ही सुंदर सजा दो, हीरे-जवाहरात के आभूषण पहना दो, चेहरे को पाउडर और रंग से रंग डालो, लेकिन लाश, लाश है। और कितने ही बहुमूल्य हीरे- जवाहरातों से लदी लाश हो, एक जिंदा आदमी के सामने-जिसके चाहे शरीर पर चीथड़े भी न हों--दो कौड़ी की है।
दुनिया की किसी भाषा में ऋषि और कवि के बीच ऐसा भेद नहीं किया गया है। सिर्फ हमारे पास दो शब्द हैं। और कारण हैं हमारे पास दो शब्द होने के। हमने ऋषि की ऊंचाइयां लानी हैं। उपनिषद के कवियों को कवि कहा जा सकता। कालिदास कवि हैं, भवभूति कवि हैं, शेक्सपियर कवि हैं, मिल्टन कवि हैं, लेकिन उपनिषद के कवियों को कवि नहीं कहां जा सकता--कहना उचित न होगा--वे द्रष्टा हैं, वे ऋषि हैं। उन्होंने देखा है, जीओ है; उन्होंने जाना है, सिर्फ गाया नहीं। गाना गौण है, जानना प्रमुख है। जानने की छाया की तरह गीत भी आए हैं, छंद भी आए हैं।
वे ख्वाब जिनको तलाशा था मेरी आंखों ने
तसव्वुरात के नूर आफरी धुंदलकों में
गुलगते, कांपते खामोश आंसुओं की तरह
झलक रहे हैं मेरी जिंदगी की पलकों में

मैं जख्म-जख्म हूं बेशक, मगर तुम्हारे लिए लहकते-झूलकते फूलों के गीत लाता हूं

तुम्हारी खुश्क निगाहों के आबगीनों में निचोड़ता हूं मैं कौसे-कजा के रंगों को पिला के अपने दरख्शंदा वलावलों का लहू निखारता हूं तुम्हारी हसीं उमंगों को

मैं अपने साज के नग्मों की नर्म लहरों में तुम्हारे चेहरे की अफसुर्दगी डुबोता हूं मगर खुद अपनी जवानी की आर्जूओं पर तुम्हारे बाद अकेला ही छुप के रोता हूं

यह मेरा फन जो तुम्हारे दिलों का गाजा है
मेरा शबाब के जज्बात का जनाजा है
कवि तो हंसता है, ऊपर-ऊपर, भीतर रोता है।
वे ख्वाब जिनको तराशा था मेरी आंखों ने
तसव्वुरात के नूर आफरी धुंदलकों में
उसके स्वप्न अंधेरे में पैदा होते हैं। वह अपने सपने अंधेरे में ही तराशता है। रोशनी उसके पास नहीं।
वे ख्याब जिनको तराशा था मेरी आंखों ने
तसव्वुरात के नूर आफरी धुंदलकों में
सुलगते, कांपते खामोश आंसुओं की तरह
झलक रहे हैं मेरी जिंदगी की पलकों में

अगर तुम कवि की आंखों में गौर से देखो तो गीत कम, आंसू ज्यादा दिखाई पड़ेंगे। आनंद कम, विषाद ज्यादा दिखाई पड़ेगा। संतोष जरा भी नहीं, संताप सागर की तरह उत्तुंग लहरें लेता हुआ दिखाई पड़ेगा।
सुलगते, कांपते, खामोश आंसुओं की तरह
झलक रहे हैं मेरी जिंदगी की पलकों में
इन आंसुओं को भी देकर जीया-ओ-ताबानी...
कवि आंसुओं को भी रोशनी देता है, चमक देता है, निखार देता है। आंसुओं
को भी मोती की तरह पेश करता है।
इन आंसुओं को भी देकर जीया-ओ-ताबानी
तुम्हारी रूह की मेहराब में जलाता हूं
और तुम्हारी आत्माओं के आलों में, अंधेरों में तराशे गए इन सपनों को, आंसुओं में डाली गई इन झूठी चमको को दीयों की तरह तुम्हारी आत्माओं के आलों में जलाता हूं।
इन आंसुओं को भी देकर जीया-ओ-ताबानी
तुम्हारी रूह की मेहराब में जलाता हूं
मैं जख्म-जख्म हूं बेशक, मगर तुम्हारे लिए
लहकते-झूलते फूलों के गीत लाता हूं
कवि तो जख्मों से भरा है। लेकिन तुम्हारे लिए गीत लाता है। गीत बेचता है। कवि गीतफरोश है। गीत बेचना उसका धंधा है। आंसू तो कौन लेगा? --आंसू तो लोगों के पास वैसे ही बहुत हैं--आंसू तो कौन चाहेगा? लोग मोतियों की मांग कर रहे हैं। तो वह आंसुओं को मोतियों की तरह बेचता है। जख्मों की तो किसको जरूरत है? जख्म तो सभी के पास जरूरत से ज्यादा हैं। जख्म ही जख्म तो हैं। आत्मा जख्मों का एक सिलसिला हो गई है। तो वह अपने जख्मों को फूल बन कर बेचता है; फूनमालाएं बना कर बेचता है।
मैं जख्म-जख्म हूं बेशक, मगर तुम्हारे लिए
लहकते-झूलते फूलों के गीत लाता हूं
तुम कवियों के गीतों से धोखे में मत पड़ जाना। गीत उनका व्यवसाय है। ऋषि का गीत व्यवसाय नहीं है; उसका अहोभाव है। मीरा नाची, नर्तकी नहीं है, उसका नृत्य अहोभाव है। किसके लिए नहीं नाची, नाचने से न रुक सकी, इसलिए नाची। कवि किसी के लिए गाता है। ऋषि गाता है। कोई सुन ले तो ठीक, कोई न सुने तो ठीक। ऋषि के गीत ऐसे हैं जैसे पक्षियों की सुबह-सुबह होती यह पुकारें। यह किसी के लिए निवेदित नहीं हैं। यह ऊग आया सूरज, यह हो गई सुबह, यह छा गई मस्ती प्राणों में, यह मस्ती बहने लगी अपने आप। ऋषि के गीत वृक्षों, में लगे फूलों की तरह हैं। कोई तोड़े ठीक, फूलमालाएं बनें तो ठीक, कोई पास से गुजरे तो ठीक, कोई गंध का आस्वाद ले तो ठीक कोई न निकले तो ठीक। गंध लुटती रहेगी। शून्य आकाश में बिखरती रहेगी। हवाओं के पंखों पर चढ़कर दूर की यात्राओं पर जाती रहेगी। कोई नासापुट कभी उसे पहचानेंगे, परिचित होंगे या नहीं, यह निष्प्रयोजन है। हों तो ठीक, न हों तो ठीक।
ऋषि स्वांतः सुखाया गाता है। दूसरा निष्प्रयोजन है। दूसरा है या नहीं, यह बात गौण है। ऋषि अपनी मस्ती मग गाता है। लेकिन कवि तो गीतफरोश है, गीत बेचता है। जैसे माली फूल बेचता है।
तुम्हारी खुश्क निगाहों कें आबगीनों में...
तुम्हारी आंखें तो सूखी हैं, मरुस्थल जैसी हैं, तुम भी चाहते हो कि इनमें थोड़ी आर्द्रता आए, तुम भी चाहते हो थोड़ा स्नेह तुम्हारी आंखों में भी झलके।
तुम्हारी खुश्क निगाहों के आबगीनों में...
तुम्हारी सूखी आंखों के पात्रों में...
निचोड़ता हूं मैं कौसे-कजा के रंगों को
तो कवि कहता है कि मैं इंद्रधनुष के रंगों को निचोड़ता हूं तुम्हारी सूखी आंखों में कि तुम भी थोड़ा इंद्रधनुषों से परिचित हो लो, कि तुम्हारे भीतर भी थोड़े इंद्रधनुष ऊगें, कि मैं लाता हूं तितलियों के पंखों के रंग-- कि तुम बड़े बेरंग हो--कि मैं लाता हूं मधुमास की थोड़ी खबर है--कि तुम्हारी पतझड़ों का एक सिलसिला है।

तुम्हारी खुश्क निगाहों के आबगीनों में
निचोड़ता हूं मैं कौसे-कजा के रंगों को
पिला के अपने दरख्शंदा वलावतों को लहू
निखारता हूं तुम्हारी हसीं उमंगों को
और मुस्कुराता हूं कि तुम्हारे भीतर भी मुस्कुराहट की प्रतिध्वनि पैदा हो जाए।
मैं अपने साज के नग्मों की नर्म लहरों में
तुम्हारे चेहरे की अफसुर्दगी डुबोता हूं
तुम्हारा मुर्झाया चेहरा मैं अपने गीतों में, अपने नग्मों में डूबोता हूं कि थोड़ी कोमलता तुम्हारे जीवन को उपलब्ध हो; तुम भी जान पाओ थोड़ा सा रस।
मैं अपने साज के नग्मों की नर्म लहरों में
तुम्हारे चेहरे की अफसुर्दगी डुबोता हूं
मगर खुद अपनी जवानी की अर्जूओं पर
तुम्हारे बाद अकेला ही छुप के रोता हूं
लेकिन मेरी बातों का भरोसा मत कर लेना। वे सिर्फ दिखावे हैं। अकेले में, एकांत में मैं ऐसा ही रोता हूं जैसे तुम रोते हो। मेरी आंखें भी मोतियों से नहीं, आंसुओं से भरी हैं। और मेरे प्राणों में भी अंधकार है और दीये नहीं हैं। और मुझे भी कोई पहचान नहीं है इंद्रधनुषों की। और मैंने भी तितलियों के रंग नहीं देखे हैं। और मेरे हृदय में भी अभी आकाश से संबंध नहीं जुड़ा है। मैं वहीं घसिट रहा हूं जहां तुम घसिट रहे हो।
लेकिन जैसे अंधेरी रात में, किसी अंधेरी गली में गुजरते वक्त तुम जोर-जोर से गीत गाने लगते हो, अपने ही गीत की आवाज सुन कर हिम्मत आ जाती है कि अकेले नहीं हैं, अपने ही गीत की आवाज सुन कर भय मिट जाता है, एकांत मिट जाता है, ऐसे ही तुम्हारे कवियों के गीत हैं--तुम्हारे अकेलेपन को भर देते हैं। मगर खुद अपनी जवानी की आर्जूओं पर
तुम्हारे बाद अकेला ही छुप के रोता हूं
यह मेरा फन जो तुम्हारे दिलों को गाजा है
मेरे शबाब के जज्बात का जनाजा है
यह मेरा होना, यह मेरी कला, यह मेरा कल, यह मेरा फन, जो तुम्हारे दिलों
का गाजा है, जो तुम्हारे दिलों को रंगता है रंगों में, सुंदर करता है, जो तुम्हारे दिलों को खूबसूरती देता है, हसीन बनाता है...
यह मेरा फन जो तुम्हारे दिलों का गाजा है
मेरे शबाब के जज्बात का जनाजा है...
लेकिन अगर तुम मुझे पूछो तो यह मेरी जवानी की अरथी है; यह मेरे प्राणों की अरथी है।
कवि का जीवन द्वंद्वग्रस्त है। बाहर कुछ, भीतर कुछ। उसकी मुस्कुराहटों में खोदोगे तो आंसू पाओगे। और उसके गीतों में जरा गहरे उतरोगे, थोड़ी सीढ़ियां पार करोगे तो बड़े अंधेरे पाओगे। ऋषि का जीवन एक लयबद्ध होता है। तुम जितना खोदोगे, उतना वही-वही है, और-और। ऋषि का जीवन बाहर और भीतर लयबद्ध होता है, ऋषि का स्वाद एक है, कहीं से चखो। ऋषि के हर शब्द का संदेश एक है, पुकार एक है, आह्वान एक है।
कवि और ऋषि में बड़ा भेद है। यद्यपि ध्यान रखना, कभी-कभी ऋषियों की झलक
ले आते हैं। अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी। कभी-कभी सूझ हो जाती है। मगर ऋषि उस शाश्वत प्रकाश के लोक में जीते हैं।
तीन चीजों का ख्याल करो। एक तो है विज्ञान, जो पदार्थ पर सीमित है। एक
है धर्म जो पदार्थ के अतीत है, परमात्मा जिसका तलाश है। और दोनों के बीच में हैं, कला, काव्य। एक पैर कला का पृथ्वी पर है और एक पैर परमात्मा में है। इसलिए कलाकार बहुत दुविधाग्रस्त होता है। न तो वैज्ञानिक इतनी सुविधा से भरा होता है--होने का कोई कारण नहीं। उसने मान ही लिया कि ईश्वर नहीं है। दूसरा है ही नहीं, बस पदार्थ है। इसलिए वैज्ञानिक में तुम एक तरह की सुसंगति पाओगे, तर्कबद्धता पाओगे। और संत में भी एक सुसंगति, एक तर्कबद्धताः क्योंकि ईश्वर ही है, शेष कुछ भी नहीं।

वैज्ञानिक कहता है, ईश्वर झूठ, संसार सच--जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या--और संत कहता हैः ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। दोनों ने एक के साथ अपनी भांवर डाल ली है। दोनों के बीच में त्रिशंकु की भांति है कलाकार की स्थिति। चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, कवि। वे सभी कविता के रूप हैं। कोई ध्वनि से कविता पैदा करता है, तो उसके हम संगीतज्ञ कहते हैं। कोई मुद्राओं से कविता पैदा करता है, तो उसको हम नर्तक कहते हैं। कोई रंगों से कविता पैदा करता है, तो उसे हम चित्रकार कहते हैं। कोई पत्थरों में कविता खोदता है, तो उसे हम मूर्तिकार कहते हैं। वे सब काव्य के ही रूप हैं। माध्यम अलग होंगे। कवि इन दोनों के बीच में है। कवि कहता हैः जगत भी सत्य, ब्रह्म भी सत्य। इसलिए कवि बड़े तनाव में जीता है। कभी इधर, कभी उधर। कभी निम्नतम पर उतर आता है, कभी श्रेष्ठतम पर उड़ानें लेने लगता है।
काव्य का थोड़ा रुझान हो, तो ख्याल रखना, उस रुझान को शुद्ध करना है। सीढ़ी दर सीढ़ी, सोपान पर सोपान चढ़ाने हैं। कवि को ऋषि तक पहुंचाना है। और जब तुम्हारे भीतर का कवि ऋषि तक पहुंच जाता है तो जीवन की परम संपदा उपलब्ध होती है। फिर तुम्हारे भीतर के कुरान उठती है, उपनिषद पैदा हो तो हैं, गीता का जन्म होता है। ये कविताएं नहीं हैं। यह ऋषियों के वक्तव्य हैं। यही तो इनकी महिमा है। कोई लाख कितना ही गाए, कुरान का सौंदर्य नहीं आता सो नहीं आता। कोई लाख सुंदर-सुंदर शब्दों को जमाए लेकिन उपनिषदों के वक्तव्यों की ऊंचाई नहीं आती सो नहीं आती। गीत रचो कितने ही, अगर भगवदगीता के चरणों तक भी पहुंचना नहीं हो पाता। सबके भीतर तीनों संभावनाएं हैं। क्योंकि तुम तीन के जोड़ हो। तुम्हारी देह तो बनी है मिट्टी से, पदार्थ से। अगर तुम देह पर ही अटके रहे तो विज्ञान में भटके रहोगे। तुम्हारा मन है दोनों के बीच। अगर तुम में ही उलझे रहे तो तुम कवि ही रह जाओगे। दुविधाग्रस्त, द्वंद्वग्रस्त, खंड-खंड, दो नावों पर सवार। तुम्हारे भीतर आत्मा का भी वास है। काश, तुम आत्मा में डुबकी ले लो, तो ऋषि का तुम्हारे भीतर भी जन्म है। ऋषि से कम होने पर राजी नहीं होना है। प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वरूपसिद्ध अधिकार है कि उसके भीतर से भगवदगीता पैदा होनी चाहिए।

दूसरा प्रश्नः भगवान, यह कैसी प्यास है! सब तरफ से तृप्त होने पर भी ऐसा लगा रहता है कि कुछ भी है। इस संसार की कोई चीज ऐसी नहीं, जो मैंने नहीं पाई। पर प्रभु, इस मानस-प्यास का क्या कहूं?
भगवान, इस स्थिति को स्पष्ट करने की अनुकंपा करें, यही प्रार्थना!

ठाकुर राणा! इस संसार में प्यास पैदा हो सकती है, बुझ नहीं सकती। इस संसार में प्यास को बुझाने वाले जलस्रोत नहीं। इस संसार का प्रयोजन प्यास को जन्माना है, प्यास को बुझाना नहीं। प्यास तो बुझती है जब परमात्मा को पीओगे तब। संसार का प्रयोजन है कि प्यास को ऐसा जगाए, ऐसा जगाए कि तुम्हें परमात्मा खोजना ही पड़े, कि तुम विवश हो जाओ खोजने को, कि तुम सब छोड़-छाड़ कर परमात्मा की खोज में लग जाओ।
संसार तो उत्तप्त मरुस्थल है। इस मरुस्थल में प्यास का जग आना बिल्कुल आवश्यक है, स्वाभाविक है, होना चाहिए। आश्चर्य तो तब होता है जब इस संसार में कुछ लोग दिखाई पड़ते हैं जिनकी कोई प्यास नहीं, जिन्हें परमात्मा की प्यास का ख्याल ही नहीं आया है। चमत्कार हैं वे लोग। मरुस्थल में हैं, उत्तप्त आग बरस रही है, मगर न मालूम कैसे अपने प्यास को छिपाए बैठे हैं? उनकी हालत वैसी है--मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हज की यात्रा को गया था, मरुस्थल में भटक गया। थका-मांदा दो-चार दिन बाद जब बस्ती में वापस आया, तो लोगों ने पूछा कि जिंदा आ गए, भगवान का शुक्र करो! कैसे कटे दिन? इतनी भयंकर आग बरस रही है, मरुस्थल में छाया का कोई स्थान भी नहीं है, तुम जल-भून नहीं गए? नसरुद्दीन ने कहा, क्या तुमने मुझे इतना मूढ़ समझ रखा है? मैं अपनी ही छाया में बैठे जाता था।
अपनी ही छाया में! अपनी ही छाया में कोई बैठ सकता है? मगर नसरुद्दीन
की यह कहानी बड़ी सार्थक है। इस दुनिया में जितने लोग तुम्हें तृप्त दिखाई पड़ रहे हैं, अपनी ही छाया में बैठे हुए हैं। खूब धोखा खा रहे हैं। यहां का

धन नहीं, यहां का पद पद नहीं, यहां की ख्याति ख्याति नहीं--अपनी ही छाया में बैठे हो।
अच्छा हुआ, ठाकुर राणा! कि तुम कहते होः कैसी यह प्यास? सब तरफ से तृप्त होने पर भी ऐसा लगा रहता है कि कुछ कमी है। धन्यभागी हो! यह कमी लगनी ही चाहिए! जिनको नहीं लगती, वे अभागे हैं। परमात्मा ने जैसे उनकी तरफ पीठ कर ली है। जैसे उनकी किस्मत में फूलों का खिलना बदा नहीं नहीं। जैसे वे भाग्य से ही जलस्रोतों से वंचित हैं। प्यास है तो सरोवर की खोज शुरू होती है। प्यास है तो प्रार्थना। प्रार्थना है तो परमात्मा। प्यास बड़ा सौभाग्य है। यद्यपि जब पहली दफा लगती है तो पीड़ा मालूम पड़ती है। मगर पीड़ाओं में छिपे हुए बड़े आशीष होते हैं। और सभी अभिशाप अभिशाप नहीं होते, खोजोगे तो उनमें वरदान पा लोगे। कांटों में भी फूल छिपे होते हैं। और यह ऐसी ही प्यास है। यह प्यास लगती है तब है जब तुम्हारे पास संसार का सब कुछ होता है।
इसलिए तुम ठीक कहते हो कि संसार की कोई चीज ऐसी नहीं जो मैंने न पाई हो, फिर भी यह प्यास क्यों है? यह प्यास होती ही तभी है। जिन्हें अभी संसार की चीजें नहीं मिलीं, वे तो सोचते हैं कि संसार की चीजें मिल जाएंगी तो प्यास तृप्त हो जाएगी। एक थोड़ा अच्छा मकान बन जाएगा, थोड़ा धन और बैंक में जमा हो जाएगा, अगले चुनाव में जीत जाएंगे, कुछ हां जाएगा। तो सभी उनकी प्यास तो संसार में ही टटोल रही है।
और यह भी स्वाभाविक है। जिसने अभी संसार का ही कुछ नहीं जाना उनकी प्यास परमात्मा को छूने की तरफ उठे कैसे? अभी तो ऐसा ही लगता है कि थोड़ा धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, तो सब ठीक हो जाए। जब यह सब चीजें पूरी हो जाती हैं, जब भ्रांति टूटती है। तब पता चलता है, धन भी है, पद भी है, प्रतिष्ठा भी है, मगर प्यास तो वही की वही वही की वही ही नहीं और भी गहन हो गई है, और भी सघन हो गई है। जब चारों तरफ धन के ढेर लग जाते हैं, तो भीतर निर्धनता का बहुत प्रगाढ़ता से पता चलता है। निर्धनता को देखने के लिए धन के ढेर जरूरी हैं। गरीब आदमी को गरीबी का पता नहीं चल सकता है। कैसे चले? पता तो हमेशा विपरीत से चलता है। इसीलिए तो हम सफेद खड़िया से लिखते हैं काले ब्लैक-बोर्ड पर। सफेद बोर्ड पर क्यों नहीं लिखते सफेद बोर्ड पर लिखेंगे तो लिख तो जाएगा, मगर दिखाई नहीं पड़ेगा। काला होना चाहिए बोर्ड। तो फिर सफेद खड़िया से लिख सकते हो। और अगर सफेद बोर्ड हो, तो फिर काली खड़िया से लिखना होगा, फिर कोयले से लिखना होगा। विपरीत ही दिखाई पड़ता है।
गरीब आदमी को पता ही नहीं चलता कि मैं गरीब हूं। अमीर को ही पता चलता है। स्वस्थ आदमी को तो पता ही नहीं चलता कि मैं स्वस्थ हूं। बीमारी चाहिए तो पता चलता है। विपरीत जब घटता है तो बोध होता है।
ठाकुर राणा, तुम कहते, संसार की ऐसी कोई चीज नहीं जो मैंने नहीं पाई, फिर यह प्यास क्यों है? इसीलिए यह प्यास है। अब परमात्मा को पाना होगा। अब संसार में तुम्हें अर्थ नहीं रहा। जानने योग्य जान लिया, देखने योग्य देख लिया। अब आंखें बंद करके भीतर देखने की घड़ी आ गई। अब जमीन से सिर आकाश की तरफ उठाने का क्षण आ गया। बहुत कंकड़-पत्थर बीन लिए, अब हीरे-जवाहरातों से झोली भरो।
निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बंदवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आंसू से लिखलिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।

हंस देता जब प्रात, सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचली पड़तीं किरणें भोली,
तब कलियां चुपचाप उठाकर पल्लव के घूंघट सुकुमार,

छलकी पलकों से कहती हैं, कितना मादक है संसार।

देकर सौरभ-दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल
जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आंखों में घुल?
अब इन में क्या सार? मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार, मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार! स्वर्ण-वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूलि नभ के आंगन में
देती अगणित दीपक वार,
हंस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़-बढ़ पारावार, बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार।

स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
अमर हमारा राज्य सोचते
हैं जब मरे पागल प्राण,
आ कर तब अज्ञात देश से जाने किस की मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में कितना पागल है संसार।
जरा आंख खोल कर देखो। जिसे तुम तलाशते थे, उसे यहां पाया ही नहीं जाता। जो तुम्हें तृप्त करेगा, जिससे तुम्हारी क्षुधा मिटेगी, प्यास मिटेगी, जिससे प्राणों का यह सतत चल रहा हाहाकार समाप्त होगा, जिससे यह भीतर के आंसू थमेंगे, जिससे आत्मा की रिक्तता भरेगी, तुम भरपूर हो उठोगे, वह यहां है ही नहीं। ऐसा नहीं है कि कहीं भी नहीं है। किसी और आयाम में उसे खोजना पड़ता है।
एक दौड़ है बाहर की तरफ; वहां सब मिलेगा, तृप्ति नहीं मिलेगी। एक दौड़ है भीतर की तरफ, वहां कुछ और न मिलेगा, मगर तृप्ति मिलेगी। एक दौड़ है पर की तरफ; वहां संबंध मिलेंगे, नाते-रिश्ते मिलेंगे; भाई बंधु, पति-पत्नी, बेटे- बेटियां, सब कुछ मिलेगा, मगर तुम नहीं मिलोगे। एक यात्रा है स्व की तरफ; वहां न पिता हैं, न मां हैं, न भाई, न बहिन, न पत्नी, न पति, वहां तुम हो। और जिसने स्वयं को जाना, वही तृप्त हुआ। क्योंकि जिसने स्वयं को पाया, उसने सब पास लिया। तुम्हारे भीतर अनंत संपदा है। मगर तुम भिखारी बने बाहर खोज रहे हो!
निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागर,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बंदनवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आंसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।
आ गई घड़ी, ठाकुर राणा! सुनो चारों तरफ से उठती गूंज!
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आंसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।
यहां सब क्षणभंगुर है। पानी के बबूले हैं। रेत पर घर न बनाओ। कागज की नाव न तैराओ।
स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
अमर हमारा राज्य सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आ कर तब अज्ञात देश से जाने किस की मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में कितना पागल है संसार।

अब देखो, चारों ओर देखो, पागलों की भीड़ है। जो भी अपने को छोड़ कर कुछ और खोज रहा है, वह पागल है। जो भी भीतर न जा कर और दौड़ा जा रहा है, दौड़ा जा रहा है, बाहर की तरफ, वह पागल है; वह मृग-मरीचिकाओं में जी रहा है; वह भ्रांतियों में जी रहा है; वह विक्षिप्त है; वह गिरेगा, टूटेगा, बहुत पछताएगा। और समय बीत जाए तो फिर पछताने से भी कुछ नहीं होता। अब पछताए होत का, जब चिड़यां चुग गई खेत। अक्सर ऐसा होता कि जब मौत द्वार पर दस्तक देती है तब होश आता है--कि चुक गए! कि अवसर मिला था लेकिन उपयोग न कर पाए! उससे पहले जो जाग जाए, वही बुद्धिमान है।
ठाकुर राणा, वह घड़ी आ गई! इस प्यास को सौभाग्य समझो! परमात्मा की देन समझो, प्रसाद समझो!
कैसी यह प्यास है? यह प्यास प्रार्थना की शुरुआत है। यह प्यास प्रार्थना का पहला आघात है। इसी प्यास को सघन करने से प्रार्थना बनेगी। इसी प्यास को निखारो, घार धरो, प्रार्थना बनेगी। कैसी है यह प्यास? और तुम इसे प्रार्थना बना लो तो परमात्मा बहुत दूर नहीं। प्यास और परमात्मा के बीच प्रार्थना का सेतु बन जाए, फिर जरा भी दूर नहीं।
पूछते होः "इस मानस-प्यास का क्या करूं?"
भड़काओ! बढ़ाओ! जगाओ! प्रज्वलित करो! मैं यहां बुझाने को नहीं हूं तुम्हारी प्यास, जलाने को हूं। और भी ईंधन डालूंगा--वही रोज करता हूं, सुबह-सांझ। तुम्हारी प्यास में ईंधन डालना है। कहीं बुझ न जाए। बुझाने के बहुत आयोजन चल रहे हैं। संसार में जगह-जगह तुम्हारी प्यास को बुझाने वाले लोग बैठे हैं। और तुम भी तत्पर होते हो कि कोई प्यास बुझा दे, क्योंकि प्यास पीड़ा देती है; प्यास परेशान करती, बेचैनी लाती। तुम भी चाहते हो कोई सांत्वना के दो शब्द कह दे, मलहम-पट्टी कर दे, घाव को भर दे। नहीं, अगर तुम ऐसा कुछ चाहते हो तो तुम गलत आदमी के पास आ गए। मैं तुम्हारे घाव को और उघाडूंगा, और कूरे दूंगा। मैं तुम्हारी पीड़ा को और भी गहन करूंगा। मैं तुम्हारी प्यास को जलती हुई लपट बना दूंगा। ऐसी लपट कि तम उससे राख ही हो जाओ। तुम्हारी प्यास शमा बन जाए और तुम परवाने बन जाओ, तो प्रार्थना पूरी हो जाती है। और उसी घड़ी, उस अपूर्व घड़ी में परमात्मा से मिलन है।
मत पूछो कि मुझसे कि इस स्थिति को स्पष्ट करने की अनुकंपा करें। इस स्थिति को स्पष्ट नहीं करना है। स्पष्ट करने की आकांक्षा में, व्याख्या में, समझने की कोशिश में हमारा गहरा प्रयोजन एक ही होता है कि किसी तरह समझ में आ जाएं तो झंझट मिटे। हम समझना ही उन चीजों को चाहते हैं जिनसे हम झंझट मिटा लेना चाहते हैं। समझना झंझट मिटाने का एक उपाय है। यह प्यास अव्याख्या है, अनिर्वचनीय है। इसे समझना नहीं है, इसमें डुबकी मारनी है। यह रहस्य है। इस प्यास को प्रश्न न बनाओ, इस प्यास को रहस्य समझो। इसके घूंघट उठाओ, उतरो इसके अज्ञात लोक में; जलो, तड़फो, पुकारो, रोओ; यह प्यास आंसू बने, उत्तर नहीं, प्रश्न नहीं, व्याख्या नहीं, विवेचन नहीं। मैं तुम्हें प्यास समझा नहीं सकता हूं।
प्यास कहीं समझने की बात होती है? अब जैसे किसी आदमी को प्यास लगी है, क्या समझाओगे? इतना ही कह सकते हो कि प्यास भाई प्यास है। अगर प्यास के लिए कुछ करना हो तो यह रही जलधार, झुको, भरो अंजुलि, पीओ! लेकिन वह आदमी कहे कि प्यास समझाइए! फिर जल समझाइए कि जल क्या है? जल को क्या समझाओगे? क्या एच टू ओ कह देने से का हो जाएगा? कि पानी उदजन और आक्सीजन से मिल कर बनता है। कि दो हिस्से उदजन के और एक हिस्सा आक्सीजन का, इन तीन से मिलकर पानी बन जाता है। या कि उस आदमी को कहोगे कि एक किताब ले लो और उस पर लिखते रहो एच टू ओ-एच टू ओ-एच टू ओ--जैसे कुछ लोग लिखते हैंः राम-राम-राम-राम; ऐसे तुम एच टू ओ-एच टु ओ लिखते रहो किताब पर--माला ले लो हाथ में और हर मनके साथ कहोः एच टु ओ। इससे क्या प्यास बुझेगी, कि प्यास समझ में आएगी?
न तो राम-राम जपने से बुझती, एच टु ओ जपने से प्यास बुझेगी। न राम-राम लिखने से किताब में तुम कहीं पहुंचोगे, न एच टू ओ लिखने से तुम कहीं पहुंचोगे। किताब जरूर खराब हो जाएगी। पीना पड़ेगा, परमात्मा को पीना पड़ेगा। पीओगे, तो जानोगे। यह बातें स्वाद की हैं, अनुभव की।

मगर इतना मैं तुमसे कहूंः अच्छा हो रहा है! मंदिर के द्वार पर आ रहे हो! मंदिर पास है! जल्दी से प्यास को समझा-बुझाकर भाग मत खड़े होना। ऐसा ही

तीसरा प्रश्नः भगवान, हमें धर्म-ध्यान का कुछ पता नहीं है। हमको तो हो गया है तुमसे प्यार! इसलिए हम संन्यासी भी हैं और अब तेरे चरणों में बैठ कर तुझे सुन-सुन कर आनंदित हैं, अनुगृहीत हैं। हम खुश हैं, प्रभु!

अगेह! धर्म का किसको कब पता चला? ध्यान तो कब कौन समझा? बेबूझ बातें हैं। अनुभव होता है, समझ नहीं आती। समझ तो छोटी चीजों की आती है, समझ तो बाजारू होती है। जितना गहन होगा तत्व, उतना ही समझ से दूर होता है। समझ तो खोपड़ी में घटती है। प्रेम-प्रार्थना, ध्यान-धर्म, सब हृदय में घटते हैं। सिर हृदय को समझने में समर्थ है। इसलिए सिर तो हृदय को पागल मानता है, प्रेमी को पागल मानता है, भक्त को पागल मानता है। हृदय की बात मस्तिष्क को समझ में नहीं आती। उनके गणित अलग हैं। हृदय की दुनिया में कोई और ही गणित लागू है--कोई महागणित। मस्तिष्क में एक और एक मिलकर दो होते हैं, हृदय में एक और एक मिल कर एक ही होता है। वहां कुछ मामला ही और है! मस्तिष्क के जगत में, मस्तिष्क के अर्थशास्त्र में चीजें बचाओ तो बचती हैं, लुटाओ तो समाप्त हो जाती हैं। हृदय के अर्थ शास्त्र में बचाओ तो समाप्त हो जाती हैं, लुटाओ तो बचती हैं। मस्तिष्क कंजूस है, कृपण है। हृदय लुटाता हैः दाई हाथ उलीचिए, यही संतन को काम। और मजा ऐसा है कि मस्तिष्क बचा-बचा कर भी कुछ बचा नहीं पाता। कूड़ा-कर्कट हाथ रह जाता है। और हृदय लुटा-लुटाकर भी सब बचा लेता है। इन दोनों की दुनियाएं अलग हैं, आयाम अलग हैं।
तुम पूछते होः हमें धर्म-ध्यान का कुछ पता नहीं। किसको पता है? धर्मशास्त्रों में तुम सोचते हो धर्म लिखा है? अगर धर्म लिखा हुआ होता तो बात बड़ी आसान हो जाती। फिर तो जैसे गणित हम पढ़ाते हैं स्कूल में, और भूगोल पढ़ाते हैं, और इतिहास पढ़ाते हैं, वैसे ही धर्म भी पढ़ा देते। लेकिन धर्म पढ़ाया ही नहीं जा सकता। धर्म सिखाया ही नहीं जा सकता। और चूंकि हम सिखाने के झूठे आयोजन करते हैं, हम लोगों को झूठे, धार्मिक बना देते हैं--कोई हिंदू, कोई ईसाई, कोई मुसलमान, कोई जैन, कोई बौद्ध। सच्चा धार्मिक आदमी कैसे हिंदू हो सकता है, कैसे ईसाई हो सकता है, कैसे मुसलमान हो सकता है? एक ही परमात्मा है, तो एक ही प्रार्थना है। और एक ही सत्य है, तो अनेक संप्रदाय कैसे हो सकते हैं? साधारण जीवन के सत्य भी अलग-अलग नहीं होते। हिंदुस्तान में पानी गर्म करो तो भी सौ डिग्री पर भाप बनता है, और तिब्बत में करो तो भी सौ डिग्री पर भाप बनता है। तिब्बत का पानी यह नहीं कह सकता कि यह बौद्ध मुल्क है, यहां हिंदू देश की बातें न चलेंगी। पानी को तो कहीं भी गर्म करो, सौ डिग्री पर भाप बनता है। प्रकृति के नियम तक शाश्वत हैं, तो परमात्मा के नियम शाश्वत न होंगे! वे भी शाश्वत हैं। मगर हम लोगों पर धर्म थोप देते हैं। हम धर्म के नाम पर धर्म के सिद्धांत थोप देते हैं। और थोपे हुए सिद्धांतों को ढोते हुए लोग जिंदगी भर जीते हैं। उनका ईश्वर से कभी कोई संबंध न होगा, न हो सकता है। पहले तो छोड़नी पड़ती है यह सारी की सारी सिखावन, खाली और कोरा करना पड़ता है हृदय, तब कोई जान पाता है। तुम कहते होः हमें धर्म-ध्यान का कुछ पता नहीं। अच्छा है! पता होता, तो मेरे पास आ भी नहीं सकते थे। पता होता, तो पंडित हो गए होते। पता होता, तो तोतों की तरह दोहराते। मेरे पास आ सकते थे। जिनको पता है, वे तो यहां आते ही नहीं।
कल एक किताब मेरे हाथ लगी है, दिल्ली में किसी ने छापी है, किसी आर्यसमाजी ने छापी है। आर्यसमाजी ही इस तरह की मूढ़ता की तो छाप सकते हैं। उस किताब में लिखा है कि मेरी बातों को सुनना महापाप, मेरी किताबों को पढ़ना महापाप, मेरे सन्निधि में आना महापाप। तब मैं जरा हैरान हुआ कि इस आदमी ने मेरी किताब भी पढ़ी होंगी। इस बेचारे ने कितना महापाप किया! यह महानर्क में पड़ेगा! उस आदमी पर मुझे बड़ी दया आने लगी। पाप पर पाप कर गुजरा। लोगों ने धर्म के नाम पर तुम्हें बोध नहीं दिया, न साहस दिया। तुम्हें कमजोरी दी और नपुंसकता दी।

अब यह नपुंसकता की बातें हैं कि मेरी बात सुनना महापाप। यह घबराहट है। इसमें डर है कि अगर मेरी बात सुनी गई, तो सत्य को तुम कितनी देर तक इंकार करोगे? अगर सुना, तो आज नहीं कल मस्तिष्क चाहे इनकार करे, हृदय स्वीकार कर लेगा। फिर क्या होगा? इसलिए सुनो ही मत। इसलिए कानों में घंटे बांध लो और बजाते रहो, ताकि कोई आवाज तुम्हें सुनाई न पड़ जाए। इसलिए तुम्हारे तथाकथित धार्मिक सब अपने कानों में घंटा बांधे हैं--सब घंटाकर्ण हैं। जोर से बजाते रहते हैं कि कोई नाम सुनाई न पड़ जाए, कोई बात सुनाई न पड़ जाए। सबने आंखें बंद कर ली हैं, कोल्हू के बैल हो गए हैं। कि आंख खोली तो कहीं सत्य दिखाई न पड़ जाए। यह धार्मिक होने के लक्ष्ण हुए? धार्मिक आदमी तो खुली आंख वाला होगा, पक्षपात रहित होगा, पहले से ही कोई पूर्वाग्रह निश्चित नहीं करेगा, आग्रही नहीं होगा, राजी होगा हर अनुभव में गुजरने को, प्रयोग करने को। निष्कर्ष लेकर पहले से ही जो चलेगा, वह धार्मिक नहीं हूं। और तुम सब निष्कर्ष लेकर चल रहे हो, यही अड़चन है। कोई पहले से ही हिंदू है, तो उसने तय कर रखा है कि ऐसा होना ही चाहिए। अब तुमने सत्य को प्रकट होने का मौका ही नहीं दिया।
अच्छा है, अगेह, कि तुम कहते होः धर्म-ध्यान का हमें कुछ पता नहीं। यही सौभाग्य तुम्हें मेरे पास ले आया। पता होता, तो तुम आ ही हनीं सकते--यहां आना महापाप होता। यहां आ सके हो खुले हृदय से, मुक्तभाव से, सुनने को आतुर, समझने को आतुर, अनुभव करने को आतुर, इसीलिए आ सके हो कि तुम्हें धर्म-ध्यान का कुछ पता नहीं है। जिन्हें पता है, वे अपेक्षाएं लेकर आते हैं। उनकी अपेक्षाओं से जरा भिन्न कुछ हो रहा हो, कि बस गलत हो रहा है। उन्हें जैसे पता ही है कि ठीक क्या है। कुछ भी उन्हें पता नहीं है। क्योंकि यहां प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में धर्म का अनुभव अनूठा घटता है, अद्वितीय घटता है। उसके संबंध में कोई पूर्व धारणाएं काम नहीं आती।
समझो, जिसने महावीर को ध्यान करते देखा हो, नग्न, वृक्ष के नीचे पत्थर
की मूर्ति की तरह खड़े हुए और उसने धारणा बना ली हो कि यही ध्यान है। फिर उसने मीरा को नाचते देखा हो, इकतारा लिए, पैरों में घूंघर बांधे, आंखों से आनंद के आंसुओं की धार, मस्त होकर, लोकलाज खोकर नाचती, वस्त्रों का पता नहीं कि साड़ी का पल्लू कब सरक कर नीचे गिर गया है--किसे होश? ऐसी मस्ती में बातों का किसको पता? अगर इस आदमी ने जिसने महावीर के ध्यान को ध्यान मानने की बात पक्की कर ली हो, मीरा को देखा होता तो वह कहताः यह कैसा ध्यान? यह तो अशोभन है। यह ध्यान नहीं है।
लेकिन महावीर को महावीर की तरह से घटा, मीरा को मीरा की तरह से घटा। मीरा का भी ध्यान है, महावीर का भी ध्यान है। ध्यान तो ऐसा है जैसे जल। जिस पात्र में रख दो, उसी पात्र का रूप ले लेता है। सुराही में रख दो, सुराही का रूप ले लेता है। थाली में रख दो, थाली का रूप ले लेता है। ध्यान तो तरल चैतन्य की अवस्था है। और चूंकि व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए ध्यान की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। जिसने मीरा को देखा है और मान लिया कि यही ध्यान है, वह फिर बुद्ध को देखता अगर वृक्ष के नीचे बैठे, आंख बंद किए, पत्थर की मूर्ति बने, तो वह कहतेः यह कर रहे सज्जन? यह कोई ध्यान है! अरे, इकतारा कहां है? पैर में घूंघर बांधो, कृष्ण को पुकारो--पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे--तुम क्या कर रहे हो बैठे-बैठे यहां? क्यों समय खराब कर रहे हो? वह भी गलत होता। जब भी हम धारणा बनाते हैं, गलती हो जाती है, क्योंकि धारणा एक व्यक्ति पर निर्भर होती है और परमात्मा दो व्यक्ति एक जैसे बनाता ही नहीं। परमात्मा हर व्यक्ति अनूठा बनाता है, अद्वितीय बनाता है। इससे बड़ी अड़चनें पैदा होती हैं।
एक ईसाई मिशनरी ने आकर मुझे कहा कि आप बुद्ध और महावीर की इतनी चर्चा करते हैं, लेकिन उन्होंने किया क्या मनुष्य-जाति के लिए? जीसस ने तो अपने को सूली पर लटकवा दिया! अपने प्राण दे दिए! वे हैं मनुष्य के बचावनहार! महावीर ने क्या किया? कृष्ण ने क्या किया? बुद्ध ने क्या किया? कुर्बानी कहां है? एक धारणा बना ली, कि जब तक कोई सूली पर न लटके, तब तक वह ज्ञान को उपलब्ध नहीं। तब तक वह कैसा बुद्ध! सूली पर लटकना ही चाहिए।

मैंने उनसे कहा कि तुम्हें पता है जैन क्या कहते हैं? जैन मुझसे आकर कहते हैं कि आप महावीर के साथ जीसस का नाम न लिया करें। मिशनरी थोड़ा चौंका, उसने कहा, क्यों? तो मैंने कहाः वे यह कहते हैं कि प्रत्येक कृत्य कीशृंखला होती है, कांटा भी अकारण नहीं लगता। जब पैर में कांटा लगता है तो उसका अर्थ है, पिछले जन्म में कोई पाप किया होगा। जीसस को सूली लगी--कांटा नहीं सूली--कोई महापाप किया होगा! कर्म का सिद्धांत साफ है। कोई बहुत बड़ा पाप किया होगा, इसलिए जीसस को सूली लगी। महावीर के पैर में तो कांटा भी नहीं चुभा। कहानी कहती है जैनियों की कि महावीर जब रास्ते पर चलते हैं--तो वे कोई जूते इत्यादि तो पहनते नहीं थे; और कांटा भी नहीं लगा जिंदगी भर--तो कहानी यह कहती है कि कांटा लग ही नहीं सकता था, क्योंकि उन्होंने कोई पापकर्म कभी किया नहीं था पिछले जन्म में। वे पिछले जन्म से बिल्कुल शुद्ध होकर आए थे। तो रास्ते पर चलते वक्त अगर कभी कोई कांटा बीच में पड़ा होता, तो वह जल्दी से उलटा हो जाता था--कांटा--कि महावीर आ रहे हैं, कहीं लग न जाऊं!
अब जिनकी यह धारणा हो कि कांटे भी महावीर को देख कर जल्दी से उलटे हो जाते हैं कि कहीं चुभ न जाएं, वे जीसस की सूली को मूल्य दे सकते हैं? असंभव! बिल्कुल असंभव।
धारणाओं में ग्रस्त व्यक्ति धार्मिक नहीं होता। धारणा मुक्त व्यक्ति धार्मिक होता है। सिद्धांत शून्य व्यक्ति धार्मिक होता है। निष्कर्ष रहित चित्त से जो प्रवेश करता है, प्रयोग करता है, वही धार्मिक होता हैं। अगेह! अच्छा है कि तुम्हें धर्म और ध्यान का कुछ पता नहीं। इसीलिए तो मेरे साथ प्रयोग करना आसान हुआ। मेरे साथ तो जुड़ ही वे सकते हैं, जिनमें इतना साहस है कि सारे पक्षपात तोड़कर फेंक दें।
और फिर तुम कहते हो कि हमें तो आपसे प्यार हो गया! यही प्यार ध्यान है। यही प्यार निखरेगा, निखरता जाएगा। इसी प्यार से धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर उस ज्योति का जन्म हो जाएगा। प्रेम से बड़ा और ध्यान क्या है? प्रीति से बड़ी और प्रार्थना क्या है?
जो होना था, हो रहा है।

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग-भरा उन्माद-राग,
आंसू लेते वे पद पखार!
जो तुम आ जाते एक बार!
हंस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओंठों से विषाद,
छा जाती जीवन में वसंत
लुट जाता चिरसंचित विराग;
आंखें देतीं सर्वस्व वार।
जो तुम आ जाते एक बार।
प्रेम पुकार है परमात्मा के लिए। तुम मेरे प्रेम में हो, यह तो शुरुआत है। यह तो पहला कदम है। यही प्रेम धीरे-धीरे-धीरे गहरा होता जाएगा। मैं मिट जाऊंगा मैं तुम्हारी नजर से ओझल हो जाऊंगा और यह प्रेम गहन होते-होते परमात्मा का प्रेम बन जाएगा। यही सदगुरु का अर्थ है। जो प्रेम जगा दे, प्रेम के जगाने का निमित्त हो जाए, बहाना हो जाए, और जब प्रेम जग जाए तो चुपचाप तुम्हें पता भी न चले और तुम्हारे बीच और तुम्हारे परमात्मा के बीच खड़ा न रह जाए। मिथ्या गुरु वह, जो तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच दीवाल बन जाए। सदगुरु वह, जो बहाना तो बने प्रेम के जगने का, लेकिन जैसे ही प्रेम जगे, चुपचाप हट जाए। तुम्हें पता भी न चलने दे कि कब हट गई। कब उसने तुम्हारा हाथ परमात्मा के हाथ में दे दिया।

और परमात्मा दूर नहीं है। सिर्फ जरा उसके हाथ में हाथ दिए जाने की बात है। जरा अदृश्य को पकड़ने की कला आने की बात है।
कुमुद-दल से वेदना के दाग को
पोंछतीं जब आंसुओं से रश्मियां,
चौंक उठती अनिल के निश्वास छु
तारिकाएं चकित सी अनजान सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है? शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी नैश तम मग सघन छा जाती घटा, बिखर जाती जुगनुओं की पांति भी जब सुनहले आंसुओं के हार सी, तब चमक जो लोचनों को मूंदता तड़ित की मुस्कान में वह कौन है? अवनि-अंबर की रुपहली सीप में तरल मोती सा जलधि जब कांपता, तैरते घनु मृदुल हिम के पुंज से ज्योत्सना के रजत-पारावार में; सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे नींद के उच्छवास सा, वह कौन है? जब कपोल-गुलाब, पर शिशु प्रात के सूखते नक्षत्र-जल के विंदु से, रश्मियों की कनक-धारा में नहा मुकुल हंसते मोतियों का अर्ध्य दे, स्वप्न-शाला में यवनिका डाल जो तब दृगों को खोलता वह कौन है?
सब तरफ से उसने तुम्हें घेरा है। तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है?

तब चमक जो लोचनों को मूंदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है?

सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे
नींद के अच्छवास सा, वह कौन है?

स्वप्न-शाला मग यवनिका डाल जो
तब दृगो को खोलता वह कौन है?
परमात्मा दूर नहीं है, सिर्फ तुम्हारे उसकी प्रत्यभिज्ञा नहीं, पहचान नहीं। हीरा सामने पड़ा है और तुम इधर-उधर देख रहे। सदगुरु का इतना ही तो कृत्य है कि तुम्हें हीरे चुपचाप हट जाए! कहीं ऐसा न हो कि तुम उसके मोह में पड़ जाओ। प्रीति तो ठीक है, मोह ठीक नहीं। प्रेम तो ठीक है, आसक्ति ठीक नहीं।
अगेह! प्रेम तो करो मुझसे, मोह मत करना। प्रीति तो जगाओ, मगर प्रीति को प्रार्थना के पथ पर लगाना है; उसे आसक्ति नहीं बनाना।
तुम कहते, इसलिए हम संन्यासी भी हैं और अब तेरे चरणों में बैठ कर, तुझे सुन कर आनंदित हैं, अनुगृहीत हैं। संन्यास का लक्ष्य ही इतना है कि तुम आनंदित होओ, अनुगृहीत होओ। परमात्मा ने इतना दिया है और तुम धन्यवाद भी न दोगे! परमात्मा ने अपार दिया है और तुम आनंद के दो आंसू भी न बहाओगे! उसने सब दिया है--जो तुम सोच भी नहीं सकते थे, स्वप्न भी नहीं देख सकते थे, वह सब दिया है, और तुम उसके चरणों में सिर झुकाओगे।
संन्यास का अर्थ इतना ही हैः झुक जाना, समर्पित हो जाना।

चौथा प्रश्नः भगवान, क्या पूछूं, यह समझ मग नहीं आता है। फिर भी कोई उत्तर पाना चाहता हूं!

सत्य वीरेंद्र! प्रश्न सब व्यर्थ हैं। प्रश्न मात्र व्यर्थ है। क्योंकि प्रश्न उठता है संदेह से। प्रश्न उठता ही है भीतर के संशय से। प्रश्न मन की ही गुत्थियां हैं, उलझन हैं, भटकाने के उपाय हैं। तुम ठीक कहते होः क्या पूछूं, यह समझ में नहीं आता। यह अच्छा हुआ कि क्या पूछूं, यह समझ में नहीं आता है। यह समझ की पहली किरण आई।
पूछना छूट जाए, तो समझ दूर नहीं है। पूछने के ही कारण समझ नहीं खुल पा रही है। पूछने में ही उलझते चले जाते हो। और हर उत्तर जो दिया जाएगा, उसमें से भी दस नये प्रश्न खड़े हो जाएंगे। प्रश्न खड़ा करने वाला मन जब तक भीतर मौजूद है, कोई उत्तर उत्तर नहीं हो सकता। जो भी उत्तर दिया जाएगा, उप पर प्रश्न खड़े हो जाएंगे। एक उत्तर दस प्रश्न बनाएगा। कोई पूछता है, संसार को किसने बनाया? तोतों जैसे पंडित भरे हैं सारे देश में, सारी दुनिया में, वे तत्क्षण कहेंगेः ईश्वर ने। तब प्रश्न उठता है, ईश्वर ने क्यों बनाया? हल क्या हुआ? बात जहां की तहां रही। अब तुम कुछ कारण बताओ कि ईश्वर ने क्यों बनाया? कारण बताने वाले नासमझ भी हैं। वे कहते हैं, इसलिए ताकि मनुष्य को मुक्त किया जा सके। प्रश्न उठता है कि जब मनुष्य था ही नहीं, तो पहले उसको बनाना, बंधन में डालना, फिर मुक्त करना--यह कौन सी बुद्धिमानी है?
या प्रश्न उठता है कि वह तो सर्वज्ञता है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, इतना मनुष्य को परेशान करने की क्या जरूरत? जैसा उसने शुरू में कहा थाः हो जा प्रकाश! और हो गया प्रकाश। वैसा ही क्यों नहीं कह देताः हो जा मोक्ष! और हो गया मोक्ष। जब प्रकाश हो सकता है तो मोक्ष होने में क्या बाधा पड़ रही है? शक होता है कि तुम्हारा ईश्वर लोगों को सताने में कुछ मजा ले रहा है, कुछ रस ले रहा है। जैसे छोटे-छोटे बच्चे चींटों को सताते हैं, कि तितली के पंख तोड़ देते हैं, कुत्ते की पूंछ खींचते हैं!
एक छोटा बच्चा बिल्ली को परेशान कर रहा था। उसकी मां चिल्लाई कि तू उस बिल्ली की पूंछ क्यों खींच रहा है? उस बच्चे ने कहा कि मैं पूंछ नहीं खींच रहा मैं तो सिर्फ पूंछ पर खड़ा हुआ हूं। बिल्ली ही पूंछ खींच रही है! इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है।
मगर यह परमात्मा क्यों लोगों की पूंछो पर खड़ा हुआ है? मनुष्य को वासना
से मुक्त करना है। लेकिन वासना दी क्यों? किसने मांगी थी? वासना तुमने दी, पाप मनुष्य भोगेगा? अगर दुनिया में कोई भी कसूरवार है तो परमात्मा के सिवाय और कोई कसूरवार नहीं हो सकता। अगर नर्क किसी को मिलना चाहिए तो सिर्फ परमात्मा को मिलना चाहिए। एक-एक आदमी की वासना के कारण नर्क मिले, इसकी बजाय मूल को ही नहीं पकड़ते? अनंत-अनंत लोगों के चित्त को वासनाग्रस्त किया, यह कोई शिष्टाचार है, यह कोई सभ्यता है?
प्रश्न एक, उत्तर दो कि हजार प्रश्न खड़े होते चले जाएंगे। और उनका कोई अंत नहीं हो सकता। प्रश्नों का अंत सिर्फ एक ढंग से होता हैः प्रश्नों की व्यर्थता देखने से। जिस दिन सारे प्रश्नों की व्यर्थता दिखाई पड़ती है, उस क्षण एक अपूर्व शांति, एक अपूर्व सन्नाटा खिंच जाता है।
वीरेंद्र! ऐसे सन्नाटे को अनुभव करो। कहते होः क्या पूंछ, यह समझ में नहीं आता है। अच्छा है! कुछ पूछो ही न! पूछने को क्या है? जीने को है। और मजा ऐसा है, जो पूछता है, उसे उत्तर नहीं मिलता, और जो सारे पूछने को छोड़ देता है, वह पाता है कि उत्तर सदा से भीतर मौजूद है। किसी प्रश्न का उत्तर नहीं है वह। जीवन स्वयं अपना उत्तर है। जीवन स्वयं अपनी समाधि है, अपना समाधान है।
तुम कहते हो; फिर भी कोई उत्तर पाना चाहता हूं! यह बात सुंदर है। प्रश्न पूछने को नहीं है, यह बात सुंदर है, फिर भी उत्तर पाना चाहते हो, यह बात और भी सुंदर है। ठीक दिशा में चल पड़ी तुम्हारी यात्रा। प्रश्नों को जाने दो, उत्तर जाएगा, अपने से आएगा, उत्तर तुम्हारे भीतर है, तुम उत्तर हो। प्रश्न गिर जाएं और उत्तर प्रकट हो जाए। प्रश्न ऐसे हैं जैसे अंगारे पर राख। राख झड़ जाए, अंगारा प्रकट हो जाए।

उत्तर बाहर से नहीं पाते। प्रश्न सब बाहर से आते हैं। तुम्हारे पास ऐसा एक भी प्रश्न नहीं है जो तुम्हारा है। तुमने सीखे हैं। इसलिए मेरे पास जब अलग-अलग धर्मों के लोग आते हैं तो अलग-अलग प्रश्न पूछते हैं। एक से ही प्रश्न तो पूछ ही नहीं सकते। क्योंकि उनको देने वाले लोग अलग-अलग हैं। जैसे कोई ईसाई आता है तो वह पुनर्जन्म के संबंध में नहीं पूछता--कभी नहीं पूछता। उसको सिखाया ही नहीं गया कि पुनर्जन्म है, इसलिए प्रश्न क्यों उठे? मुसलमान आता है, वह नहीं पूछता कि मैं पिछले जन्म में कौन था? पिछला जन्म ही नहीं था, कौन का सवाल नहीं है। प्रश्न सिखाया नहीं गया है तो पूछता नहीं है। लेकिन जैन आता है तो वह कहता हैः जाति-स्मरण कैसे हो? मुझे पिछले जन्मों का स्मरण करना है, वह कैसे हो? तुम सोचते हो यह इसका प्रश्न है? शह इसके पंडितों ने इसे सिखा दिया; कि अनंत-अनंत जन्म हो चुके हैं। चौरासी कोटि योनियों में भटक-भटक कर तू यहां तब आया है। जरा सोचो भी तो, चौरासी कोटि योनियों में भटकना! कैसी-कैसी योनियां! कभी बिच्छू, कभी सांप, कभी कुत्ता, कभी बिल्ली, कभी केंचुआ, कभी मछली, जरा सोचो भी तो पूरी चौरासी कोटि योनिया! ऐसी घबराहट होगी कि हे भगवान, कभी मैं केंचुआ भी था! तुम्हें कुछ और न सूझा? बिच्छू भी, सांप भी! लेकिन सुना है बचपन से तो प्रश्न बन जाता है।
जो सुना है, वही तुम पूछने लगते हो। तुम्हारे प्रश्न सब उधार हैं। सब बाहर से आए हैं। और मजे की बात यह है कि उत्तर बाहर से आने वाला नहीं है! प्रश्न बाहर से आए हैं और जितने उत्तर बाहर से आएंगे, वे फिर नये प्रश्न बनेंगे और कुछ भी न होगा। उत्तर तुम्हारे भीतर है। उत्तर तुम हो। अहं ब्रह्मास्मि, वहां है उत्तर। अनलहक वहां है उत्तर। तुम परमात्मा हो, वहां है उत्तर। उस अनुभव में उत्तर है। वही तुम मुझसे सुनना चाहते हो, मगर मैं कहूंगा तो बाहर की बात हो जाएगी।
मेरी सलाह मानो, मुझसे भी न पूछो। प्रश्नों को गिर जाने दो और सन्नाटों में भीतर बैठ कर भीतर ही पूछो कि मैं कौन हूं? बस एक ही उत्तर आना चाहिए। इसी एक बात को प्रगाढ़ करो, इसी अभीप्सा को प्रगाढ़ करो कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं? और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि शब्दों में दोहराओ कि मैं कौन हूं। शब्दों में दोहराने की जरूरत नहीं है। जैसे तुम्हें जब सिरदर्द होता है तो तुम थोड़े ही ऐसा कहते होः सिरदर्द, सिरदर्द, सिरदर्द; ऐसा कहोगे तो सिरदर्द ही भूल जाएगा। जब सिरदर्द होता है तो सिरदर्द कहना थोड़े ही होता है, अनुभव होता है सिरदर्द की भांति हो, यह एक पीड़ा हो, एक सघन पीड़ा होः मैं कौन--शब्दों में नहीं--एक तीर की तरह चुभता जाएः मैं कौन हूं? और तुम्हारे भीतर ही वह झरना फूटेगा कि उत्तर आएगा। वही उत्तर सार्थक है। कुछ हो रहा है, कुछ ठीक-ठीक दिशा में नजर पड़ने लगी, पैर सम्हलने लगे।
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग?
किसने फूंक दिए कानों में, भूले-बिसरे राग?
किसने आग लगा दी तन में,
राख सरीखे मेरे मन में,
ज्वाला सुलगा दी जीवन में,
विस्मृति में जो दबी हुई थी धधका दी फिर आग! मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग?

नभ के प्रांगण में उमड़ी वह, मस्त घटा घनघोर! खग तज नीड़ हर्ष से पागल, मत्त मचाए शेर!
मन कहता सब बंधन तोड़ें,
मस्ती में बस्ती की छोड़ें,
नाता अलमस्ती से जोड़ें,
तोड़-फोड़ दें रीतें सारी, रस्मों को दें त्याग! मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग? जी भर आज लुटा दें, इतने दिन का संचित प्यार! अरमानों के विहग गा उठें, युग युग के उदगार! शशि की सुंदर तरी सजा कर,

किरणों की पतवार, बना कर,
अंबर के सागर में जाकर--
नये जगत की खोज करें हम, इस जड़ जग को त्याग! मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग?

वर्तमान के पट पर आंकें, भूला हुआ अतीत!
एक बार फिर गूंजे उर में, गीत यौवन का गीत!
आंखों में छा जाय खुमारी,
दुनिया बदल जाय फिर सारी,
भूल जाए हम दुनियादारी
नई आग हो, नव यौवन हो, नव मद, नव अनुरास!
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग?

जीर्ण-शीर्ण तन में यौवन की स्मृति का क्षणिक उभार, जाने कैसे उठा रहा है पागलपन का ज्वार!
रस आया फिर हृदय विरस में,
कोयल कूक उठी मानस से,
आज रहे जो कैसे बस में?
शिथिल हुआ तन, बुझ न सकी है, पर अंतर की आग!
मेरे चित्त-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग?
सदियों-सदियों, जन्मों-जन्मों सोई हुई कोई अभीप्सा अंकुरित हो रही है।
रस आया कि हृदय विरस में,
कोयल कूक उठी मानस में,
आज रहे जी कैसे बस में?
शिथिल हुआ तन, बुझ न सकी है, पर अंतर की आग!
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों आज पड़े हैं जाग?
एक अपूर्व अभीप्सा का जन्म हो रहा है। वीरेंद्र, स्वागत करो उसका। बंदनवार सजाओ! दीपमालाएं जलाओ!
नभ के प्रांगण में उमड़ी वह, मस्त घटा घनघोर!
खग तज नीड़ हर्ष से पागल, मत मचाए शोर!
मन कहता सब बंधन तोड़ें,
मस्ती में बस्ती को छोड़े,
नाता अलमस्ती से जोड़ें,
तोड़-फोड़ दें रीतें सारी, रस्मों को दें त्याग!
मेरे चिर-निद्रित अपने क्यों आज पड़े हैं जाग?
एक अलमस्त घटा ने तुम्हें पुकारा। एक आंधी आने के करीब है। एक अंधड़,
जो तुम्हें स्वच्छ कर जाएगा। एक बाढ़ जो तुम्हें नहला जाएगी, धुला जाएगी। अब तुम प्रश्न पूछना ही मत अब तो तुम अपने भीतर अभीप्सा जगाओः मैं कौन हूं? और उत्तर आएगा। और उत्तर मैं नहीं दूंगा, उत्तर तुम्हारे भीतर ही आएगा, तुम्हारा ही होगा। और जब उत्तर अपना होता है तभी उत्तर होता है। ऐसे तो कोई भी कह दे, मैं कह दूं कि तुम आत्मा हो, इससे क्या होगा? कि मैं कह दूं कि तुम परमात्मा हो, इससे क्या होगा? सुन लोगे शब्द, कान में पड़ जाएगी ध्वनि, एक कान से पड़ेगी, दूसरे से निकल जाएगी। कहीं अटकेगी नहीं।
यह तो तुमने सुन ली हैं बातें बहुत। ब्रह्मज्ञान तो यहां गांव-गांव
चल रहा है। हर चौपाल में ब्रह्मज्ञान की ही चर्चा हो रही है। हर बैठकखाने में ब्रह्मखान का उदघोष हो रहा है। यह बकवास तो तुम बहुत सुन चुके हो। इससे कुछ नहीं है। हल तो अब एक ही बातें से हो सकता है कि तुम्हारा द्वार खुले, कि तुम्हारे भीतर किरण फूटे, कि तुम्हारा सूरज ऊगे। बाहर तो ऊग चुके सूरज, डूब चुके सूरज बहुत, अब जरूरत तुम्हारे अंतआर्काश में सूरज के ऊगने की है। वह घट सकता है।
संन्यास की तुमने हिम्मत की है, मेरे पास उठने-बैठने का साहस किया है, मुझसे नाता जोड़ा है--तुमने अपनी तरफ से तैयारी दिखाई, तुमने अपनी झोली

फैला दी--घबड़ाओ मत, फूलों से भर जाएगी! लेकिन जैसे प्रश्न छोड़ दिए, वैसे अब यह भी आकांक्षा छोड़ दो कि मैं तुम्हें उत्तर दूं। प्रश्न-उत्तर, दोनों जाने दो। निष्प्रश्न, निरुत्तर तुम हो जाओ, वही समाधि है।
बेजाने, न जाने किस द्वार से,
कौन से प्रकार से,
मेरे गृहकक्ष में,
--दुस्तर तिमिरदुर्ग दुर्गम विपक्ष में--
उज्ज्वल प्रभामई
एकाएक कोमल किरण एक आ गई।
बीच से अंधेर के हुए दो टूक; विस्मय-विमुग्ध
मेरा मन
पा गया अनंत धन।
रश्मि वह सूक्ष्माकार
उज्ज्ल के कूट में उसी प्रकार, जालों रही उज्ज्वल बनी रही; ओठों पर हास रहा हंसता हुआ वही। किंतु उसी हास-सी,
वीचि के विलास सी,
विद्युत-प्रवाहमई
जैसी वह आई बस वैसी ही चली गई।
एक ही निमेष में
मेरे मरु देश में
आ कर सुधा की धार अमृत पिला गई,
और फिर देखते ही देखते बिला गई।
कोई दिव्य देवी दया दीप लिए जाती थी मार्ग में सुवर्ण-रश्मि-राशि बरसाती थी। उस में से एक यह रश्मि आ पड़ी थी यहां, किंतु वह रती भला कहा--
मेरा घर सुना था,
अगम अरण्य का नमूना था।
रोकता उसे मैं यहां हाय! किस सुख से, बांधता उसे मैं किस भांति भव-दुख से? आई वह, है क्या यही बात कम;
एक ही निमेष वह मेरे एक जन्म-सम
मेरे मनोदोल पै अनंत काल झूलेगा; सुकृति समान वह मुझ को न भूलेगा। बेजाने, न जाने किस द्वार से,
कौन से प्रकार से,
मेरे गृहकक्ष में,
--दुस्तर तिमिरदुर्ग दुर्गम विपक्ष में--
उज्जवल प्रभामई
एकाएक कोलम किरण एक आ गई।
आ जाती है अगर तुम चुप होओ, किरण, कोमल किरण। चुप्पी का अर्थ हैः न प्रश्न, न उत्तर। न पूछना है कुछ, न जानना है कुछ। बस बैठे हो। हो, मात्र हो। कोई तरंग हनीं चिंतन की, मनन की, विचार की। निस्तरंग हो। निर्विकल्प हो। बस उसी घड़ी--
एकाएक कोमल किरण एक आ गई।
बीच से अंधेरे के हुए दो टूक;
विस्मय-विमुग्ध
मेरा मन
पा गया अनंत-धन।

शुरू-शुरू में किरण आएगी और जाएगी। स्वाभाविक है। लेकिन धीरे-धीरे किरण तुम्हें राजी करेगी, निर्मल करेगी, पात्र बनाएगी, ज्यादा देर रुकेगी, और-और रुकेगी। धीरे-धीरे तुम और किरण दो न रह जाओगे, एक ही हो जाओगे। तुम और प्रकाश दो न रह जाओगे, एक ही हो जाओगे। वह एकता ही उत्तर है। प्रकाश से एक हो जाने में उत्तर है। परमात्मा से एक हो जाने में उत्तर है।

आखिरी प्रश्नः भगवान, नाचो, गीत गाओ, उत्सव मनाओ--क्या यही आपका भक्ति- सूत्र है? कृपा करके कहें।

भक्ति का अर्थ ही इतना है कि भगवान है! फिर बचता क्या? तप नहीं बचता, तपश्चर्या नहीं बचती! भगवान है! उत्सव ही बचता है--उपवास नहीं, उत्सव। तपश्चर्या करता है वह जो भगवान को खोज रहा है, जिसे भगवान का भरोसा नहीं, जिसमें श्रद्धा नहीं उमगी। वह व्रत करता, उपवास करता, जप-तप करता, यज्ञ-हवन करता, विधि-विधान करता। भक्त का अर्थ है, जिसे प्रतीति हो रही है कि परमात्मा है। यह सहज श्रद्धा ही भक्ति है। फिर भक्त को क्या बचता? भक्त क्या करे? धूनी रमाए? भक्त क्या करे? सिर के बल खड़ा हो जाए? भक्त क्या करे? शरीर को कोड़े लगाए? भक्त क्या करे? भगवान है! ऐसी प्रतीति के उतरते ही नृत्य अपने आप फलित होता है। भक्त को नाचना थोड़े ही पड़ता है। भक्त पाता है अपने को नाचता हुआ, गाता हुआ, उत्सव मनाता हुआ।
वसंत आ जाए तो क्या करें वृक्ष? न हो जाएं हरे तो क्या करें? न खिल जाएं फूल तो क्या करें? चांदी और सोना न बरसने लगे वृक्षों पर तो क्या करें? आ जाए वसंत तो क्या करोगे? भक्त ऐसा है जिसका वसंत आ गया।
भक्ति कोई साधना नहीं हैं। भक्ति आराधना है। भक्ति कोई पाने का प्रयास नहीं है, मिल गए प्रसाद के लिए धन्यवाद है। इसलिए तुमसे कहता हूंः नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ--वसंत आ गया है। जिनका वसंत न आया हो, जिन्हें परमात्मा के होने की प्रतीति न हो, वे करें जप-तप, व्रत-नियम, जो उन्हें करना हो, करें। लेकिन जिन्हें यह सहज भाव-दशा बन रही है कि परमात्मा है--और बननी ही चाहिए! तुम देखते नहीं वृक्ष-वृक्ष हरा है, किरण-किरण ताजी है! आकाश में तारों का सौंदर्य नहीं देखते! यह जो अहर्निश अखंड महोत्सव चल रहा है विराट का, यह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता? यह तो रास रचा है, जरूर कहीं कोई कृष्ण की बांसुरी बज रही है! तुम्हें यह प्रतीति होने लगे, हल्की सी प्रतीति, जरा धीमी सी झलक आने लगे कि तुम्हारे पैरों में भी घुंघरू बांधने का क्षण आ जाएगा। आ गया वसंत!
धीरे-धीरे अंतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी!
तारकमय नव-वेझी बंधन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन,
मुक्ता हल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी! पुलकती आ वसंत-रजनी!
मर्मर की सुमधुर, नूपुर-ध्वनि, अलि-गुंजित पह्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलग-तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे, मृदुस्मित से सजनी! विहंसती आ वसंत-रजनी!
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल-दुकूल अलि!
घिर छाया सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी! सकुचती आ वसंत-रजनी!
सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल-मचल आते पल फिर-फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई पुलकित यह अवनी!

सिहरती आ वसंत-रजनी!
नरेंद्र! जब तुम्हें प्रभु के पदचाप सुनाई पड़ जाएं, तो करो क्या?
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई पुलकित यह अवनी!
यह सारी पृथ्वी नाच उठेगी। यह नाच ही रही है। सिवाय तुम्हारे सब कुछ नाच रहा है। सिवाय मस्तिष्कों में भरे हुए लोगों के अतिरिक्त सारा अस्तित्व नाच रहा है।
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसंत-रजनी!
बुलाओ वसंत को, पुकारो वसंत को, पहचानो वसंत को! भक्ति आनंद-उत्सव है। उपलब्धि का समारोह है। भक्ति पाने की चेष्टा नहीं है। पा लिया है जिसे, उसके चरणों में अनुग्रह की गीतांजलि है!

आज इतना ही।

दरिया कहै सब्द निरबाना
ग्यारहवां प्रवचन

सतगुरु सबद सांच एह मानी

कह दरिया करु भगति बखानी

भूले संपत्ति स्वार्थ मूढ़। परे भवन में अगम अगूढ़ा।।
संत निकट फिनि जाहिं दुराई। विषय-बासरस फेरि लपटाई।।
अब का सोचसि मदहिं भुलाना। सेमर सेइ सुगा पछिताना।।
मरनकाल कोइ संगि न साथा। जब जम मस्तक दीन्हगउ हाथ।।
माता पिता घरनी घर ठाढ़ी। देखत प्रान लियो जम काढ़ी।।
धन सब गाढ़ गहिरजो गाड़े। छूटेउ माल जहांलगति भांडे।।
भवन भया बन बाहर डेरा। रोवहिं सब मिलि आंगन घेरा।।
खाट उठाइ कांध धरि लीन्हा। बाहर जाइ अगिनि जो दीन्हा।।
जरि गइ खलरी भसम उड़ाना। सोचि चारि दिन कीन्हेउ ग्याना।।
फिरि धंधे लपटाना प्रानी। बिसरि गया ओइ नाम निसानी।।
खरवहु खाहु दया करु प्रानी। ऐसे बड़े बहुत अभिमानी।।
सतगुरु सबद सांच एह मानी। कह दरिया करु भगति बखानी।।
भूलित भरम एह मूल गंवावै। ऐसन जनम कहां फिरि पावै।।
धन संपति हाथी अरु धोरा। मरन अंत संग जाहिं न तोरा।।
मातु पिता सुत बंधौ नारी। ई सब पांवर तोहि बिसारी।।

दरिया कहै सब्द निरबाना!
निर्वाण का अर्थ है, मृत्यु। महामृत्यु। ऐसी मृत्यु जिसके पार फिर लौटना न हो। साधारण मृत्यु तो बस देह की मृत्यु है। चित्त की यात्रा जारी रहेगी। जिस चित्त ने इस देह को पकड़ा है, वही चित्त नई देहें पकड़ लेगा। वासना जब तक है, आता ही रहना होगा नये-नये गर्भों में, नये-नये रूपों में। और यह यात्रा आने और जाने की बड़ी व्यर्थ यात्रा है। हाथ कुछ भी लगता नहीं, दौड़-धूप बहुत, आपाधापी बहुत। मंजिल कोई हाथ आती नहीं। निर्वाण का अर्थ है, मरने की ऐसी कला कि फिर जन्म न हो। और मरने की ऐसी कला उससे जोड़ देती है जो अमृत है।
निर्वाण शब्द, अनूठा है। एक तरफ निर्वाण का अर्थ है, महामृत्यु और दूसरी तरफ निर्वाण का अर्थ है, महाजीवन, शाश्वत जीवन। साधारण मृत्यु से साधारण जन्म मिलता है, असाधारण मृत्यु से असाधारण जन्म मिलता है। साधारण मृत्यु से फिर किसी देह के गर्भ मग प्रवेश है, असाधारण मृत्यु से परमात्मा के गर्भ में प्रवेश हो जाता है।
दरिया कहै सब्द निरबाना!
दरिया की पूरी शिक्षा--और एक दरिया की क्यों, उन सब की, जिन्होंने जाना है; उन सब दरियाओं की, उन सब महासागरों की जिन्होंने विराट को पहचाना है, एक ही देशना है कि ऐसे मरो कि फिर जन्म न हो, ऐसे मरो कि फिर महाजीवन हो क्षणभंगुर के पीछे क्या दौड़ना, जब शाश्वत पाने का तुम्हारा अधिकार है! कंकड़ पत्थर क्या बीनना, जब सारे अस्तित्व की संपदा तुम्हारी है! छोटी सी देह में क्या सीमित होना, जब आकाश मग भी तुम बड़े हो! जब ब्रह्म होने का उपाय हो, जब स्वयं भगवत्ता को पाने का उपाय हो, तब क्यों छोटे-छोटे खिलौनों में जीवन गंवाना! निर्वाण को जिसने समझा, उसन सब समझ लिया। निर्वाण सारे जीवन का सार-निचोड़ है। जैसे हजारों-हजारों फूलों के इत्र निचोड़ जाता है, ऐसे हजारों-हजारों अनुभवियों ने अपनी समाधि का जो निचोड़ है उसे निर्वाण कहा है।
निर्वाण की यह आकांक्षा, यह अभीप्सा क्यों पैदा होती है? और तुम चकित होओगे यह बात जानकर कि मृत्यु के कारण ही निर्वाण की अभीप्सा पैदा होती है। यदि मृत्यु न होती, तो धर्म न होता। यदि मृत्यु न होती, तो तुम्हें परमात्मा की याद ही न आती। यह तो कांटे हैं जो तुम्हें फूलों की याद दिला देते हैं। यह तो मृत्यु है जो तुम्हें सोने नहीं देती और जगाती, और जागती।

फिर भी कितने कम लोग जाग पाते हैं! मृत्यु जैसे तीर के रहते हुए भी कितने हृदय बिंध पाते हैं? मृत्यु जैसी महा दुर्घटना तुम्हें चारों तरफ से घेरे हैं, फिर भी तुम्हारी नींद नहीं टूटती। जरा सोचो, मगर मृत्यु होती ही न, तब तो शायद पृथ्वी पर धर्म की, पूजा-प्रार्थना की, ध्यान की, योग की, परमात्मा की कोई बात ही न उठती! इतनी मृत्यु है, फिर भी कितने थोड़े से लोग उस परमरस को उपलब्ध होते हैं! प्रत्येक को पता है कि मिट जाना है, लेकिन फिर भी बात कुछ बैठती नहीं! रोज तुम मौत को घटते देखते हो--आज कोई मरा, कल कोई मरा--रोज अर्थी उठती है, रोज मरघट पर किसी की चिता जलती है, फिर भी तुम्हें यह बात याद नहीं आती कि मुझे भी मरना है; कि मेरी मौत भी करीब चली आर ही; कि आज नहीं कल, कल नहीं परसों ऐसे ही अर्थी पर मैं भी सवार हो जाऊंगा, ऐसे ही चिता मेरी जलेगी, ऐसे ही देह राख हो जाएगी, मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। काश, तुम्हें यह याद आ जाए; काश, यह तीर तुम्हारे हृदय में प्रगाढ़ता से चुभ जाए; ऐसा चुभे कि इसकी चुभन चौबीस घंटे बनी रहे, तो ही तुम्हारे जीवन में वह महाक्रांति हो सकती है, जिसका निर्वाण है। तो ही तुम्हारे जीवन में वह प्रभात हो सकता है जिसका नाम परमात्मा है। तो ही तुम्हारे जीवन में अंधेरी रात कटे, उजाला हो। तो ही दीया जले। और तो ही तुम्हारे जीवन में आनंद की वर्षा हो; गीत जगें, उत्सव हो।
अभी भी तुम गाते हो, अभी भी तुम उत्सव मनाते हो, कभी दीवाली पर दीये जला लेते हो, मगर वे सब दीये बाहर कभी होली पर रंग फेंक लेते हो, अगर भीतर बिल्कुल बेरंग हो तुम। शादी-विवाह में शहनाई भी बजती है, मगर बस बाहर-बाहर। भीतर का विवाह कब रचाओगे? भीतर की भांवर कब डालोगे? कि बजे शहनाई शाश्वत, कि संगीत जन्मे सनातन का। कि ऐसे बांसुरी के स्वर पैदा हों, जो फिर मिटते नहीं।
अभी जीवन कहां?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूं!
अभी ब्रज-बीथियां सूनी
अभी सूना पड़ा मधुबन,
अभी झुलसे लता तरुगण
अभी उजड़ा पड़ा उपवन,
अभी सावन कहां?
जिसके लिए बन मेघ छाता हूं!

कहां मधु से भरी प्याली
कहां उमड़ा हुआ यौवन,
कहां अरमान में आंधी
कहां तूफान में जीवन,
अभी मधुऋतु कहां?
दिन रात पतझर ही मनाता हूं!

न पत्थर में कहीं पारस
न कर्षण शक्ति चुंबक में, कहां लौ में जलना बाकी
कहां है स्नेह दीपक में,
दिवाली भी कहां?
जिसके लिए तन-मन जलाता हूं!

कहां है क्षोभ झरनों में कहां सागर में अकुलाहट,
कहां सरिता में विह्वलता लिए अभिसार की आहट,
कहां संगम? अभी
अविराम प्यासा छटपटाता हूं!

कहां कलियों में है शाखी कहां इस ज्ञान उपलों में, कहां सौरभ है सांसों में कहां मकरंद मुकलों में,
कहां मधु? बन मधुप
जिसके लिए मैं गुनगुनाता हूं! कहां झंकार वीणा में
गमक तबलों मृदंगों में,
अभी नवस्फूर्ति तांडव की समा पाई न अंगों में,
अभी सम ताल-यति
गति हीन ताने ही सुनाता हूं!

अभी मांगा न तृष्णा ने
अगम मधुसिधु का मंथन,
अभी विष तक पचाने का
उठा उर में न आंदोलन,
न जाने अग्नि
चुंबन से अभी क्यों जी चुराता हूं!

अभी केवल सुना है
कल्पतरु होता है नंदन में,
अभी लाया कहां हूं
कामधेनु जब के आंगन में,
अभी तो शून्य में
ही दूध की गंगा बहाता हूं!

अभी आकुल है काया कल्प
करने को मही सारी,
कहां जीवन? अभी तो
हो रही जीवन की तैयारी,
अभी जीवन कहां?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूं!
जन्म तो हो गया तुम्हारा, मगर भी जीवन कहां? जन्म जीवन नहीं है। और न मृत्यु जीवन का अंत है। जीवन जन्म और मृत्यु के बीच में आबद्ध नहीं है। जीवन जन्म के भी पहले है, मृत्यु के भी बाद है। जन्म और मृत्यु जीवन का प्रारंभ और अंत नहीं, जन्म और मृत्यु जीवन के मध्य में घटी छोटी-छोटी घटनाएं हैं। बहुत बार घट चुकी हैं। और अगर न जागे तो बहुत बार घटती रहेंगी। जागो! दरिया कहै शब्द निरबाना! दरिया कह रहा हैः मैं तुम्हें उस जीवन की झलक देना चाहता हूं जो मिल जाए तो फिर छूटता नहीं; मैं तुम्हें उन दीवालियों की तरफ ले चलना चाहता हूं जिनके दीये बुझना जानते नहीं। मैं तुम्हें ऐसी होली सिखाऊं कि भीतर रंग उड़े, कि भीतर गुलाल उड़े; कि मैं तुम्हें चांद-तारों का मालिक बना दूं; कि मैं तुम्हें अमृत का धनी बना दूं। अभी तो तुमने जिसे जीवन समझ लिया है, निपट धोखा है।
अभी जीवन कहां?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूं!

अभी सावन कहा?
जिसके लिए मेघ छाता हूं!
अभी कुछ भी तो नहीं है। अभी तो बस तुम मान लेते हो। मानो भी न तो क्या करो? समझा लेते हो, कर लेते हो। जहां सावन का कोई दर्शन नहीं होता है, वहां भी आंख बद कर के सावन के सपने संजो लेते हो। जहां फूल कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते, वहां आकाश-कुसुम निर्मित कर लेते हो। अभी तो तुम रेत से तेल निचोड़ने

की चेष्टा में संलग्न हो। सुन सको दरिया को तो वास्तविक जीवन की शुरुआत हो सकती है। और जब सुन लो, तो चुप मत बैठना। दरिया की बात तुम्हारी समझ में आ जाए, तो और भी बहुत हैं सोए हुए, उनको भी जगाना है।
न खामोश रहना मेरे हम सफीरो,
जब आवाज दूं तुम भी आवाज देना!
जैसे दरिया तुम्हें जगा रहा है। जब तुम्हारी आंख में किरण की थोड़ी झलक आ जाए, जब तुम्हारे प्राणों में थोड़ी अनुगूंज उठने लगे जागरण की, तो तुम भी आवाज देना। क्योंकि बहुत बार ऐसा होता है कि दूसरे को जगाने में तुम्हारा जागरण निखरता है, साफ होता है, उज्ज्वल होता है। दूसरे को पुकारने में तुम्हें भी होश आता है। दूसरे को समझाने में तुम्हें समझ आती है। दूसरे को बतलाने चलो तो तुम्हारी उलझनें भी सुलझ जातीं। दूसरे की समस्याओं को हल करो तो तुम्हें अपनी समस्याओं में अंतर्दृष्टि मिल जाती है। क्योंकि समस्याएं तो वही ही वही हैं, तुम्हारी हों कि दूसरों की, समस्याओं में कुछ भेद नहीं है। प्रश्न तो वही है, संदेह वही हैं, जीवन के उपद्रव वही हैं; मात्राओं में भेद होगा, गुण में कोई भेद नहीं है। इसलिए अगर थोड़ी भी बात कभी किसी सदगुरु के कान में पड़ जाए, तो गुंजाना उसे। भीतर भी गुंजाना, बाहर भी गुंजाना।
न खामोश रहना मेरे हम सफीरो,
जब आवाज दूं तुम भी आवाज देना!
यह प्यारे शब्द हैं दरिया के। ऐसे तो सीधे-सादे हैं। समझाने जैसे कुछ
भी नहीं, मगर समझने जैसा बहुत कुछ।
करके टूटा है कहीं सिलसिलाए-कैदे-हयात?
मगर इतना है कि जंजीर बदल जाती है।
मर-मर के होता क्या है? सिलसिला तो टूटता नहीं। सिलसिला टूट जाए तो निर्वाण। फिर होता क्या है--इतनी बार मरते हैं--सिर्फ जंजीर बदल जाती है। एक कारागृह की कोठरी से दूसरे कारागृह की कोठरी में प्रवेश हो जाता है--इस आशा में कि अब स्वतंत्र हुए, अब आकाश हमारा है। जल्दी ही वह आशा भी टूट जाती है। हर बच्चा आशा लेकर पैदा होता है और हर बूढ़ा निराश मरता है। हर बच्चा उमंग से भरा आता है, उत्साह से भरा। इतना उत्साह, इतनी उमंग कि अब सब हो जाएगा। सब जो कभी नहीं हुआ है। बच्चे की आंखों में झांको, उसे लगता हैः मिलेगी तृप्ति, मिलेगा, आनंद, मिलेगी विजय। बूढ़े की आंखों मग झांको, सब सपने खंडित हो गए हैं, सब भ्रम धूल-धूसरित हो गए हैं, आंखों में सिर्फ विषाद की धूल जमी रह गई है, अब कोई आशा नहीं है, कोई संभावना नहीं है। मगर यह बार-बार होता है। यह बूढ़ा मरेगा, फिर नया बच्चा होगा, फिर नई आशा उमगेगी। फिर बूढ़ा होगा, फिर आशा मरेगी।
मरके टूटा है कहीं सिलसिलाए-कैदे-हयात?
मगर इतना है कि जंजीर बदल जाती है।
मगर कई बार ऐसा होता है कि जंजीर बदलने में भी बड़ी राहत मिलती है। तुमने अरथी ले जाते लोगों को देखा है मरघट? रास्ते में कंधा बदल लेते हैं। एक कंधे पर अरथी रखे-रखे थक गया कंधा, दूसरे कंधे पर रख लेते। वजन तो नहीं कम हो जाता, मगर थोड़ी देर को राहत मिल जाती है। एक धंधे से ऊब गए, दूसरा धंधा कर लेते। एक धर्म से ऊब गए, दूसरे धर्म में सम्मिलित हो जाते हैं। एक पत्नी से ऊब गए, दूसरा विवाह कर लेते हैं। मगर यह सिर्फ जंजीरों का बदलना है। इससे कुछ सिलसिला न टूटेगा, इससे कुछशृंखला न टूटेगी।शृंखला टूटने की तो एक ही कला है, उस कला का नाम निर्वाण है।
निर्वाण शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक तो अर्थ होता हैः दीये का बुझ जाना। इसलिए कहते हैं, दीये का निर्वाण। जब दीये को फूंक दिया और दीया बुझ गया। बुद्ध ने इस शब्द का बड़ी महिमा से प्रयोग किया। उन्होंने कहाः यह भी बड़ा बहुमूल्य है। ऐसे ही जिस दिन तुम अपने अहंकार के दीये को बुझ दोगे, उस दिन निर्वाण। इधर अहंकार का दीया बुझा कि वहां परमात्मा की ज्योति प्रकट हुई। तुम मिटो तो निर्वाण। तुम्हारी सारी आशाएं-आकांक्षाएं तुम्हें मिटने नहीं देती, कहतीं हैं, थोड़ी देर और रुको, कौन जाने कल सब ठीक हो जाए! आज तक तो नहीं हुआ, माना, मगर कल भी तो है। और कल नहीं है, कल कभी नहीं आता, न

कभी आया है। मगर मन कहता है, कल भी तो है। थोड़ा और रुको, इतनी जल्दी क्या है? थोड़े और प्रयास कर लें, दो कदम और उठा लें। कौन जाने जो अब तक नहीं हुआ, कल हो जाए। कल यही होगा, परसों भी यही होगा, हर रोज मन आशा जागाए रखता है। मन तुम्हें आशा के धागों में बांधे रखता है। पतले धागे, कच्चे धागे। मगर इतने कमजोर हो तुम कि कच्चे धागे जंजीरें हो गए हैं। और इन्हीं धागों के सहारे अहंकार जीता है। अहंकार कहता है, यह करूंगा, वह करूंगा; इतना धन, इतना पद, इतनी प्रतिष्ठा। बुद्ध ने कहाः अहंकार का बुझ जाना, अहंकार को फूंक-फूंक कर बुझा देना, यह निर्वाण का एक अर्थ।
निर्वाण का दूसरा अर्थ हैः वासना मुक्त हो जाना। जहां वासनाएं शून्य
हो जाएं, वहां निर्वाण। अगर अहंकार तुम्हारे झूठे जीवी के दीये की ज्योति है, तो वासना तो वासना उसे ज्योति को जलाए रखने वाला दीये में भरा हुआ तेल है। दोनों साथ-साथ हैं। वासना के बिना अहंकार नहीं हो सकता, अहंकार के बिना वासना नहीं हो सकती। न तो तेल के बिना बाती हो सकती है, न बाती के बिना तेल हो सकता। तेल और बाती दोनों हों तो दीया जले। इसलिए निर्वाण के दोनों अर्थ महत्वपूर्ण हैं, एक ही अर्थ के दो पहलू हैं। जिस दिन निर्वाण घटता है, वासना गिरी, तेल चुका, अहंकार का दीया बुझा, उस दिन फिर शाश्वत जीवन है। फिर तुम जीते हो ब्रह्म में, फिर है ब्रह्मचर्य, फिर है ब्रह्म जैसा आचरण, फिर है देवी जीवन। उसी दैवी जीवन के स्मरण दिलाने के लिए यह सूत्र हैं। भूल संपत्ति स्वारथ मूढ़ा। परे भवन में अगम अगूढ़ा।।
भूल संपत्ति स्वारथ मूढ़ा... हे मूढ़जनों, तुम किन बातों में अपने को भुलाए हुए हो? संपत्ति में? अंधे हो, इसलिए संपत्ति में संपत्ति दिखाई पड़ती है। मूढ़ हो, इसलिए संपत्ति में संपत्ति दिखाई पड़ती है। अन्यथा संपत्ति में विपत्ति दिखाई पड़ेगी। यहां कितनी ही संपत्ति कर लो, उस संपत्ति से चिंताएं तो बढ़ती चली जाती हैं, संताप तो बढ़ता चला जाता है, चित्त की अशांति तो बढ़ती चली जाती है, मगर सुख की कोई झलक नहीं आती, वसंत नहीं आता, न आनंद के फूल खिलते, न भीतर कोई अनाहत का नाद गूंजता। यह कैसा संपदा?
सम शब्द को समझना। यह बहुमूल्य शब्द है। इसी से बना हैः समाधि; इसी से बना है; सम्यकत्व; इसी से बना हैः समता; इसी से बना हैः संबोधि; इसी से बना हैः संपदा, संपत्ति। समता जो लाए, समभाव जो लाए, भीतर से सारी चिंताओं और विचारों का जाल जो काट दे, उसे संपत्ति कहते, उसे ही संपदा कहते। समाधि के अतिरिक्त और कोई संपदा नहीं है। क्योंकि समाधि में समाधान है, सारी चिंताओं का निरसन है। सारे ऊहापोह का अंत है। सारा उपद्रव जो चित्त में चलता रहता है, उसका विसर्जन हो जाना है।
उसको ही संपदा कहना चाहिए जिससे भीतर ऐसी परम शून्य, शांत, मौन दशा की उपलब्धि हो कि जहां एक भी तरंग बेचैन करने को न उठे। झील बिल्कुल निस्तरंग हो जाए। और अगर ऐसा न होता, तो तुमने जिस संपत्ति समझा है। वह विपत्ति है। और तुमने जिस संपदा समझा है, वह विपदा है।
भूले संपत्ति स्वारथ मूढ़। किस बात को संपत्ति समझ कर भटके गए हो, भूल
गए हो? खाली हाथ आते हो, खाली हाथ जाते हो। मगर बीच में कितना शोरगुल मचा लेते हो! न कुछ लाते, न कुछ ले जा सकते, सब यहीं का यहीं पड़ा रह जाता है, मगर कितने झगड़े, कितने उपद्रव, कितनी आपाधापी, कितना वैमनस्य, कितनी घृणा-- उसके लिए जो पड़ा रह जाएगा! लोग मरने को, मारने को उतारू हैं। और इसी संपत्ति--तथाकथित संपत्ति--को संग्रहीत करने को तुमने अपना स्वार्थ बना दिया है। तुमने उसे अपने स्वयं का अर्थ बना लिया है।
स्वार्थ शब्द भी बड़ा प्यार है, खराब हो गया--हमने अच्छे-अच्छे शब्द खराब कर दिए। सुंदर-सुंदर शब्द भी गलत लोगों के हाथ में पड़कर दुर्गंधयुक्त हो जाते है। स्वार्थ शब्द भी बड़ा अर्थपूर्ण है। स्व-अर्थ। आत्म अर्थ। जो मेरे निज का आंतरिक अर्थ है, अभिप्राय है; जो मेरे भीतर की महिमा और गरिमा है; जो मरे अंतर्जगत की सुगंध है, वही स्वार्थ। मगर वह भी खराब हो गया। किसी को स्वार्थी कहना गाली देने जैसा है। क्योंकि हमने स्वार्थ को ही व्यर्थ चीजों से जोड़ दिया। धन इकट्ठा करो तो स्वार्थ, पद की दौड़ तो स्वार्थ। न तो धन में स्वार्थ है, न पद में स्वार्थ है; स्वार्थ तो

ध्यान में है, भक्ति में है। स्वार्थ तो परमात्मा की तलाश में है। इसलिए दरिया ठीक ही कहते हैं कि तुम मूढ़ हो; किसी चीज को संपत्ति समझ लीं? किस चीज को स्वार्थ समझ लिया।
पूरे भवल में अगम अगूढ़ा... और इस भ्रांति के कारण एक ऐसी अतल गहराई में गिरते जा रहे हो जिसका कोई अंत नहीं है; एक ऐसे स्वप्न-लाज में उलझ गए हो जिससे छुटकारा मुश्किल हो जाएगा। किसी भ्रांति में उतरना तो बहुत आसान है, लेकिन भ्रांति से बाहर आना बहुत कठिन होता है। क्यों? क्योंकि एक छोटी सी भूल से भ्रांति शुरू हो जाती है। तुम गणित का कोई सवाल कर रहे हो, जरा सी गलती हो गई, दो और दो चार की जगह दो और दो पांच जोड़ दिए--जरा सी गलती, कोई बहुत बड़ी गलती नहीं हो गई--लेकिन अब तुम जो भी इसके आगे करोगे, वह गलत होता जाएगा। यह एक छोटी सी गलती करोड़ों-करोड़ों गलतियों का आधार बन जाएगी। और वापस इस गलती को खोज लेना रोज-रोज मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि गणित फैलता जाता है, बड़ा होता जाता है। इस छोटी सी भूल को कहां खोज पाओगे? और जिंदगी में कोई बहुत बड़ी भूलें नहीं हो गई हैं, ऐसी छोटी-छोटी भूलें हैंः असली स्वार्थ को स्वार्थ नहीं समझा, नकली स्वार्थ को स्वार्थ समझ लिया; असली संपदा को संपदा जाना, नकली संपदा को संपदा समझ लिया; छोटी सी भूल है, लेकिन बस उस एक भूल पर फिर जन्मों-जन्मों की यात्रा शुरू हो गई। भ्रांतियां और भ्रांतियां। एक भ्रांति दूसरी भ्रांति में ले जाती है, दूसरी भ्रांति तीसरी भ्रांति में ले जाती है, और फिर मौलिक भूल तक तक लौटना मुश्किल होने लगता है। उस मौलिक भूल की याद दिला रहे हैं।
भूल संपत्ति स्वारथ मूढ़ा। परे भवन में अगम अगूढ़ा।।
संत निकट फिनि जाहिं दुराइ। विषय-बासरस फेरि लपटाई।।
कभी-कभी तुम्हारी जीवन में वैसी घड़ी भी आ जाती है कि जब किसी सदगुरु
के पास पहुंच जाते... संत निकट फिनि जाहिं दुराई... लेकिन वहां टिकते नहीं।
कोई अपनी भूल नहीं देखना चाहता।
इसे समझो।
इस दुनिया में कोई यह नहीं मानना चाहता कि मैं और भूल में। इससे अहंकार को चोट लगता है, घाव हो जाता है अहंकार में, मवाद बहने लगती है, दबे घाव उखड़ आते हैं, कोई नहीं जानना चाहता कि मुझसे भूल हुई है। और संतों के पास तो सिवाय इसके और कुछ भी नहीं कि वे तुम्हें कहें कि तुमसे भूल हुई है। और एक नहीं हजार भूलें तुम्हारी दिखाएं। सब तरफ से तुम्हारी भूलों का जाल तुम्हारे सामने प्रकट करें। तुम तो उन लोगों के साथ होना चाहते हो जा तुम्हारी खुशामद करें, जो तुम्हारी प्रशंसा करें।
संत तो तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकते। प्रशंसा करने योग्य अभी कुछ
है ही नहीं। अभी वसंत आया नहीं है, गीत किस वसंत के गाएं? अभी मेघ घिरे नहीं हैं, गीत किस सावन के गाएं? अभी तुम कांटों ही कांटों से भरे हो। मगर तुम चाहते हो कि लोग कहेंः अहह! कैसे फूल खिले हैं, कैसी सुगंध आ रही है! तुम अपने अहंकार के समर्थन से सब तरह के झूठ चाहते हो। इसीलिए तो दुनिया में खुशामद इतनी कारगर चीज है। और चमचे इतने सफल होते दिखाई पड़ते हैं। तुम चाहते हो कि कोई मक्खन मले तुम्हारे अहंकार पर। संतों के पास तो यह नहीं हो सकता। और जहां यह होता है, जानना वहां संत नहीं है। तुमने दो पैसे दान दे दिया और संत ने तुम्हारी खूब पीठ ठोंकी और कहाः घबराओ मत, भगवान के नाम चिट्ठी लिखे देता हूं कि तुम्हारे लिए स्वर्ग में विशेष इंतजाम हो जाएगा; कि तुमने एक मंदिर बनवा दिया और संतों ने कहाः अहह! दान-दाता हो तुम, दानदाताओं में शिरोमणि हो तुम, महापुण्यकर्ता हो तुम। यह सब चमचे हैं। यह तुम्हारे अहंकार को परिपुष्ट कर रहे हैं। अगर कहीं कोई नर्क है तो यह तुम्हें नर्क में ढकेल रहे हैं। लेकिन यही तुम्हारे तथाकथित संत सदियों से करते रहे हैं--खुशामद, चापलूसी।
सच्चा सदगुरु तो तुम्हारी सपनों को तोड़ेगा, तुम्हें झकझोरेगा। सच्चा सदगुरु तो एक हथौड़े की तरह तुम्हारे सिर पर गिरेगा। तुम्हें तोड़ेगा। तुम्हारे सिर को तोड़ना है, तुम्हारे अहंकार को तोड़ना है, तुम्हारी भ्रांतियों का जाल काटना है। सच्चा संत तो एक शल्य-क्रिया है। और इसलिए, अक्सर ऐसा हो जाता है। संत निकट फिन जाहिं दुराई... कभी तुम भूल-चूक से किसी

संत के पास पहुंच भी जाते हो तो भाग खड़े होते हो। और भागने में भी आदमी को कुछ तर्क तो खोजने ही पड़ते हैं। एकदम ऐसे ही भागोगे तो खुद की ही आंखों के सामने बड़ा अपमान हो जाएगा। तो आदमी तर्क खोज लेता है कि वहां कुछ था ही नहीं, कि वे बातें ठीक थीं, कि शास्त्रों के अनुकूल न थीं। हजार तर्क भाव आदमी पैदा कर लेता है! और सारे तर्काभासों का एक ही प्रयोजन है कि तुम्हें भागने में सहायता मिल जाए।
सदगुरु के पास, स्मरण रखना एक बात, चोट लगेगी। छाती में तीर चुभेगा। लहू भी बहेगा, घाव भी होंगे, गहन पीड़ा होगी। लेकिन उसी पीड़ा से पुनर्जन्म है। वह पीड़ा प्रसव की पीड़ा है, भागना मत। अगर कहीं कोई सौभाग्य से तुम्हारे सिर को मिटा देने वाला मिल जाए, तो सिर को रख देना उस चौखट पर। अगर कहीं कोई इतना करुणावान मिल जाए कि तुम्हें मिटा ही दे, तो फिर कायरता मत दिखाना, पलायन मत करना। फिर भगोड़े हो मत जाना; फिर तर्काभास खोजकर किसी तरह अपने को बचा मत लेना। यह बचाने की वृत्ति बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए दरिया स्मरण दिलाते हैं--संत निकट फिनि जाहिं दुराई। लोग आ भी जाते हैं तो भाग जाते हैं, फिर-फिर भाग जाते हैं। बार-बार बंधन में गिर जाते हैं। बार-बार गलत को पकड़ लेते हैं। गलत परिचित है, जाना-माना है। गलत के साथ तुम बहुत कुशल हो गए हो। सही के साथ तो तुम्हें अ ब स से सीखना शुरू करना पड़ेगा। और सीखना कोई भी नहीं चाहता, क्योंकि सीखना कठिन मालूम होता है।
कोई भी व्यक्ति नये अध्याय शुरू नहीं करना चाहता जीवन में। और सदगुरु
के पास तो जीवन पूरी की पूरी तरह नया अध्याय बनेगा। पुरानी किताब तो आग में फेंक दी जाएगी। फिर से लिखी जानी है कहानी और अ ब स से लिखी जानी है। इतनी जिनमें हिम्मत होती, इतना जिनमें साहस होता है, दुस्साहस, इतनी जोखम उठाने को जो तैयार हैं, वे ही केवल सदगुरुओं के पास आकर रुक पाते हैं। आते तो बहुत हैं, भाग जाते हैं। और फिर याद दिला दूं कि जो भागते हैं वे ऐसे ही नहीं भाग जाते, वे अपने को समझा लेते हैं हर तरह से कि क्यों भाग जाए। जरूरी था भागना। जगह ही गलत थी। धर्म ही नहीं था यह। ऐसा समझाकर, ऐसा अपने को बुझा कर, अपने अहंकार को सुरक्षित रख लेते हैं।
तुम्हें धर्म का पता है धर्म क्या है? तुम्हें पता है सत्य क्या है? तुम्हें पता है परमात्मा क्या है? तुम्हें कुछ भी तो पता नहीं। तुम निर्णय कैसे लेते हो! ईमानदार आदमी, सत्य का शोधक निर्णय नहीं लेगा। वह कहेगा, मैं प्रयोग करूंगा, अनुभव करूंगा, अनुभव ही निर्णायक होगा। अगर कहीं कोई व्यक्ति उसकी आंखों में चमक जाएगा, तो रुक जाएगा, जीवन को दांव पर लगाएगा। अगर होगी कोई सचाई तो अनुभव में आ जाएगी हाथ लग जाएगी। अगर नहीं होगी कोई सचाई, तो भी लाभ होगा--इतना तो पहा चल गया कि गलत क्या होता है! अब गलत से बचने की सुविधा हो जाएगी। सत्य के खोजी को गलत प्रयोग करने से भी हानि नहीं होती, लाभ ही होता है। क्योंकि यह पता चल जाए कि क्या गलत है, तो ठीक को समझने में आसानी हो जाती है।
और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जीवन के अंत में जब कोई लौट कर देखना है अपनी लंबी यात्रा पर, तो चकित होता है। जो ठीक थे, उन्होंने भी साथ दिया, जो ठीक नहीं थे, उन्होंने भी साथ दिया। जो सच्चे थे, उन्होंने भी पहुंचाया, जो झूठे थे, उन्होंने भी रास्ता दिया। झूठों ने झूठ को पहचानने की क्षमता दी, सच्चों ने सत्य को पहचानने की क्षमता दी। और दोनों क्षमताएं जरूरी हैं। तभी कोई पहुंच पाता है।
जीवन के अंत में कोई शिकायत नहीं रह जाती। अच्छों के प्रति धन्यवाद, बुरों के प्रति धन्यवाद। संतों के प्रति धन्यवाद, मिथ्या संतों के प्रति धन्यवाद। जीवन के अंत में सभी के प्रति धन्यवाद का भाव रह जाता है। कांटों ने भी सिखाया, फूलों ने भी सिखाया। अंधेरी रातों में भी बहुत दिया, प्रकाशवान दिनों ने भी बहुत दिया। सबने दिया। सबसे मिलकर ही कोई व्यक्ति अंततः परम सत्य को उपलब्ध हो पाता है।
भटकना भी बुरा नहीं है, भटकना भी पहुंचने की राह पर अनिवार्य अंग है।
इसलिए सत्य का खोजी भागता नहीं, भगोड़ा नहीं होता।
संत निकट फिनि जाहिं दुराई। विषय-बासरस फेरि लपटाई।।

संत के पास से तो आदमी जल्दी से भाग जाते हैं। और भागकर फिर करेंगे क्या? क्योंकि संत से अगर दुर्घटना में भी मिलना हो जाए, अकस्मात भी मिलना हो जाए, अकारण भी मिलना हो जाए, तो भी उसकी छाया पीछा करने लगती है। उसकी आंखें तुम्हारी आंखों में समा जाती हैं। और उसकी आवाज कहीं तुम्हारे भीतर की आवाज का हिस्सा हो जाती है। वह तुम्हें पुकारने लगता है तुम्हारे ही भीतर से। दरिया कहै सब्द निरबाना। बचा नहीं जा सकता। तो फिर एक ही उपाय बचने का--जाकर वासनाओं में डुब जाओ। पी लो शराब; कि कामवासना, कि धन, मद, किसी भी अंधी वासना में दौड़ जाओ, डूब जाओ, ताकि संत की जो थोड़ी सी झलक तुम्हारे प्राणों में कहीं पड़ गई है, वह तुम्हें पकड़ न ले। संतों के पास से भाग कर लोग पुनः वासनाओं में और जोर से डूब जाते हैं। यही एक बचने का उपाय मालूम होता है।
अब का सोचसि मदहिं भुलाना। सेमर सेइ सुबगा पछिताना।।
लेकिन ऐसे लोग बहुत पछताएंगे। और पछताएंगे तब जब कि हाथ सेजीवन का अवसर निकल चुका होगा। जबकि समय उड़ चुका होगा। अब का सोचसि मदहि भुलाना... मरते वक्त लोग पछताते हैं। मगर तब तो बहुत देरहो गई, मृत्यु-शैया पर पड़े- पड़े पछताते हैं। लेकिन अब क्या किया जा सकता है? इस तरह के पछताने वालों के लिए ही झूठे, थोथे पंडितों ने उपाय खोज रखे हैं। उन्होंने कहा है, मरते वक्त भी राम का नाम ले लेना, बस उतने से मुक्ति हो जाएगी। जिंदगी भर रावण की सेवा करना और मरते वक्त राम का नाम ले लेना। बेईमानी की भी कोई सीमा होती है! जिंदगी भर अंधेरे से आलिंगन करना और मरते वक्त सिर्फ ज्योति का नाम लेना--क्योंकि और तो क्या करोगे, पहचान तो अंधेरे से है, ज्योति का स्मरण तो कर ही नहीं सकते, सिर्फ नाम ले सकते हो। मरते वकत प्रकाश-प्रकाश-प्रकाश, ऐसी बकवास करना, जिंदगी भर अंधेरे का अनुभव करना, फिर भी मुक्त हो जाओगे। ऐसे धोखेबाज लोग, ऐसे बेईमान लोग तुम्हारे गुरु बने बैठे हैं। और कारण तुम्हीं हो। क्योंकि यही तुम चाहते हो।
तुम चाहते हो, अंधेरे में जीने में भी कोई बाधा न पड़े और मरते वक्त ले लेंगे नाम! और अक्सर तो ऐसा होता है, मरते वक्त तुम भी न ले पाओगे--क्योंकि मरना कोई खबर देकर तो आता नहीं, कोई पहले से तो सम्मन आता नहीं कि कल मैं आता हूं; मौत तो आ जाती है, एकदम से, अचानक, एक क्षण की भी मौका नहीं देती कि बिस्तर इत्यादि बांध लो, तैयारी कर लो; फिर तुम खुद भी नाम ले पाओगे? नहीं, तुम खुद भी नहीं ले पाओगे। कोई दूसरा पंडित-पुजारी तुम्हारे मुंह में गंगाजल डालेगा--गंगाजल बोतलों में भरा हुआ रखा है जो। कोई पंडित-पुजारी मरते हुए आदमी के कान में गायत्री के मंत्र पढ़ेगा, नमोकार पढ़ेगा... बुद्धमं शरणं, गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि। खुद न कह सके अपने ओठों से कभी, अब कोई दूसरे ओंठ तुम्हारे कान में कह रहे हैं--वह भी खुद के लिए नहीं कह रहे हैं, उनको भी बुद्ध की शरण जाना नहीं है, वे भी तुम्हें भेज रहे हैं। और तुम मृत्यु की शरण जा रहे हो; अब कहां बुद्ध की शरण? तुम्हें शायद सुनाई भी नहीं पड़ेगा। शायद तुम्हें यह दूर की आवाज... कि यह क्या बकवास हो रही है? यह कौन क्या कह रहा है? कोई शोरगुल हो रहा है! तुम तो डूब रहे हो, तुम तो मिट रहे हो, तुम तो बिखर रहे हो और कोई गायत्री-मंत्र पढ़ रहा है, कि नमोकार पढ़ रहा है, कि भक्ततांबर पढ़ रहा है। ऐसे कहीं जीवन में क्रांतियां होती हैं! कि तुम भूखे मर रहे हो और कोई तुम्हारे कान में पाकशास्त्र की किताब से अच्छे-अच्छे भोजनों के संबंध में विवेचन पढ़ रहा है। ऐसे जीवन में क्रांतियां नहीं होतीं। मगर हम बेईमान, हम धोखेबाज, हम प्रवंचक; तो हम अपनी प्रवंचना के अनुकूल आदमी खोज लेते हैं--जो हमें धोखा देने को तैयार होते हैं।
अब सक सोचकि मदहिं भुलना। जिंदगी भर तो न मालूम कितने-कितने मदों में भूले रहे--धन-मद, पद-मद और न मालूम कितने मद थे--कितने नशों में डूब रहे, अब मरते वक्त सोच-विचार में पड़ रहे हो? अब बहुत देर हो गई। यह वैसी ही देर हो गई--सेमर सेइ सुगा पछिताना। सेमर का फूल होता है, देखने में ऐसा लगता है जैसे फल है और तोता फल समझकर उसमें चोंच मार देता है। लेकिन चोंच मारते ही--सेमर में कुछ और तो नहीं है, रुई होती है--चोंच लगते ही रुई उड़ जाती है हवा में, बिखर जाती है हवा में, तोते के हाथ कुछ भी नहीं लगता। ऐसे ही

तुम्हारी जिंदगी है। सेमर सेई सगा पछिताना। मारो चोंच इस जिंदगी में, रुई उड़ जाएगी, हाथ कुछ भी न लगेगा। फिर बैठे-बैठे पछताना! और फिर नई जिंदगी, और फिर वही की वही भूलें तुम दोहराओगे। क्योंकि हमारी स्मृति बड़ी कमजोर है। अगर मैं तुमसे आज पूछूं कि आज इकतीस जनवरी है, एक साल पहले, पिछले वर्ष
की इकतीस जनवरी को तुमने क्या किया था? क्या तुम याद करके बता सकोगे? कुछ याद न आएगा, कुछ भी याद न आएगा। अभी ज्यादा दिन नहीं बीते, केवल एक साल बीता है। तुम यह भी नहीं कह सकते इकतीस जनवरी हुई ही नहीं पिछले वर्ष। इकतीस जनवरी भी हुई थी, तुम भी थे और कुछ न कुछ घटा भी होगा, सुबह से सांझ तक कुछ न कुछ हुआ भी होगा--किसी को गाली दी होगी, किसी से झगड़ा किया होगा, किसी से मित्रता बनाई होगी, कोई हार, कोई जीत, कुछ उपद्रव हुआ होगा--मगर आज कुछ भी याद नहीं आता। एकदम सब सपाट कोरा मालूम पड़ता है। लेकिन तुम चकित होओगे, अगर तुम्हें सम्मोहित करके बेहोश किया जाए और सम्मोहित अवस्था में तुमसे पूछा जाए कि कहोः इकतीस जनवरी को पिछले वर्ष क्या हुआ था? तो तुम ब्योरे से, सुबह उठने से लेकर सांझ सोने तक एक-एक बात विस्तार से कह सकोगे, बता सकोगे। छोटी-छोटी बातें कि उस दिन सुबह तुमने जो चाय पी थी, वह ठंडी थी; कि उस दिल सब्जी में नमक ज्यादा था; यहां तक कि उस रात तुमने जो सपने देखे थे, वे तुम्हें याद आ जाएंगे। साधारणतः तुम्हें कुछ याद नहीं है, लेकिन सम्मोहित अवस्था में तुम्हारे अचेतन से आवाज आनी शुरू हो जाती हैं। अचेतन संगृहीत रखता है सब।
जब एक ही वर्ष पिछले की हालत ऐसी है, तो तुमसे कोई अगर पूछे कि पिछले जन्म में तुमने क्या किया था? तुमने तो बिल्कुल हाथ हिला कर रह जाओगे, तुम कहोगेः कैसा जन्म? मुझे कुछ याद नहीं है, था भी कि नहीं? लेकिन गहरी प्रक्रियाएं हैं सम्मोहन की, जिनके द्वारा तुम्हें याद दिलाई जा सकती है कि पिछले जन्म में तुमने क्या किया था? कि मरते वक्त तुमने क्या निर्णय लिए थे? कि मरणशय्या पर पड़े-पड़े तुम कितने पछताए थे, और तुमने तय किया था कि अब नहीं दौडूंगा धन के पीछे, कि अब नहीं दौडूंगा परदे के पीछे, हो चुका बहुत, समझ लिया सब! अगर कब की भूल चुकीं वे बातें। बहुत देर हो गई। नौ महीने गर्भ मग रहने में सब भूल-भाल गया। फिर दुनिया शुरू हो गई, फिर वही दुनिया शुरू हो गई।
यह तो दूर की बात है। बहुत पास के अनुभव से सोचो। तुम तय करते हो सांझ
कि सुबह चार बजे उठना ही है, ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ध्यान करना है, कसम खा लेते हो कि आज कुछ भी हो जाए उठूंगा, यह मेरी जिंदगी और मौत का सवाल है; अलार्म भर देते हो। और सुबह बार बजे तुम्हारी अलार्म बंद कर देते हो, करवट लेकर वापस सो जाते हो। और आठ बजे जब तुम उठोगे, तुम फिर पछताओगे और कहोगेः यह कैसे हुआ? किसने अलार्म बंद किया? और तुम्हें याद दिलाया जाए कि तुम्हारे अतिरिक्त कमरे में कोई भी नहीं, तुम्हीं ने बंद किया होगा, तो याद भी आ जाए तो तुम और भी चौंकोगे कि हैरानी की बात है, क्योंकि मैंने तो तय किया था कि उठूंगा, तो मैंने अलार्म बंद क्यों किया? और अब तुम पछता रहे हो। और फिर तुम कल तय करोगे और फिर यही होगा। जिंदगी भर यही होता है।
एक आदमी ने मुझसे कहा कि मैं तीस साल से सिगरेट छोड़ने का उपाय कर रहा हूं और छूटती नहीं, अब आप कोई रास्ता बताएं। मैंने कहा, सिगरेट पीने में जितना नुकसान हुआ, उससे ज्यादा नुकसान यह तीस साल उपाय करने में हुआ। पी रहे थे तो पीते रहते। कोई बहुत बड़ा काम भी नहीं कर रहे थे... धुंआ भीतर ले गए, बाहर लाए, भीतर ले गए, बाहर लाए... कोई ऐसा महान कार्य भी नहीं कर रहे थे कि जिसको छोड़ने में तीस साल मेहनत करनी पड़े; न पकड़ने योग्य कुछ था, न छोड़ने योग्य कुछ था, धुआं ले गए भीतर, धुआं लाए बाहर, इसमें कला क्या थी? इसमें तीस साल छोड़ने की चेष्टा क्यों की? वे तो बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, मैं तो जिस भी साधु-संत के पास जाता हूं, वह कहता है, और जोर से कसम खाओ, संकल्प करो, भगवान के सामने संकल्प करो कि अब नहीं पीओगे।
मैंने उनसे कहाः मैं तुमसे सिर्फ एक संकल्प दिलवाना चाहता हूं कि तीस साल का अनुभव काफी है, अब समय खराब न करो, अब यह बात ही जाने दो। अब पीना हो तो पीओ, न पीना हो तो मत पीओ, मगर यह छोड़ने का संकल्प छोड़ दो। और इतना तुमसे कह देता हूं कि सिगरेट पीने में कोई पाप नहीं है। न तो किसी की हत्या कर

रहे हो, न किसी का खून पी रहे हो, न किसी की जेब काट रहे हो, अगर नुकसान भी कर रहे हो तो अपना कर रहे हो--अपना नुकसान करने का हक तो आदमी को है। और सत्तर साल न जीए, चलो दो-चार साल कम जीए, तो हर्जा भी क्या है? सत्तर साल जीकर भी क्या करते? ऐसे ही भीड़-भाड़ बहुत है। तो संसार का छुटकारा तुमसे चार साल पहले हो जाएगा, इसमें कुछ हर्जा नहीं है।
वह कहने लगे, आप क्या कहते हैं? इसमें पाप नहीं है?
मैंने कहा, पाप बिल्कुल नहीं है, सिर्फ मूढ़ता है। धुआं भीतर जाना, धुआं बाहर लाना, यह प्राणायाम का एक उपाय समझो। शुद्ध हवा में नहीं करना चाहते, तुम्हारी मर्जी! नहीं तो शुद्ध हवा से कर सकते हो। मुफ्त मिलती है शुद्ध हवा। सुबह बैठ कर श्वास भीतर ले जाओ गहरी, श्वास बाहर लाओ गहरी। मगर तुम धुएं के साथ करना चाहते हो, तो धुएं के साथ करो, पाप कुछ भी नहीं हो रहा है, सिर्फ मूढ़ हो, बुद्धिहीन हो और कुछ भी नहीं।
तुम चकित होओगे यह जानकर, जिन्होंने उनसे कहा था, पापी हो, उनसे वह नाराज नहीं थे। मेरे यह कहने से कि तुम मूढ़ हो, वे मुझसे जो नाराज हुए तो फिर नहीं आए। लोगों से कहते हैं कि उन्होंने अच्छा व्यवहार नहीं किया मेरे साथ। अब तुम सोचो! पापी कहो, किसी को बुराई नहीं लगती। क्योंकि धार्मिक शब्दावली हैः पाप, पुण्य। किसी को मूढ़ कहो, तो चोट लगती है अहंकार को। और सचाई यह है कि मूढ़ता के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। और बुद्धिमत्ता के अतिरिक्त और कोई पुण्य नहीं है। जागरूकता पुण्य है, मूर्च्छा पाप है।
इस जीवन में ही तुम इतनी चेष्टाएं कर-कर के कुछ नहीं बदल पाते, तो पिछले जीवन में तुमने जो निर्णय लिए थे उनकी तो तुम्हें याद भी क्या होगी? मरते वक्त तुम जो पछता कर मरे थे, उसकी तो तुम्हें याद भी क्या होगी? और कोई एकाध बार ऐसा नहीं हुआ है, बहुत बार ऐसा हुआ है, अनंत बार ऐसा हुआ है।
फिर वही भूल। एक वर्तुल है। एक चाक है जो घूमता चला जाता है।
अब का सोचसि मदहिं भुलाना। सेमर सेइ सुगा पछिताना।।
मरन काल कोइ संगि न साथा। जब जम मस्तक दीन्हेउ हाथा।।
न तो कोई पंडित-पुजारी साथ देंगे, न कोई शास्त्र-सिद्धांत साथ देंगे,
न कोई मंदिर मस्जिद साथ देंगे, न प्रियजन-परिजन साथ देंगे। मरनकाल कोइ संगि न साथा।
जिंदगी की दूसरी करवट थी मौत।
जिंदगी करवट कर रह गई।।
मौत तो जिंदगी की ही एक करवट है। इस तरह मुंह किए थे, उस तरफ मुंह हो गया। इस देह में थे, उस देह में हो गए। और तुम ही कुछ कर सकते हो, कोई और दूसरा कुछ भी नहीं कर सकता। तुम्हारी करवट है। और तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारी करवट का कोई और मालिक नहीं है।
मरनकाल कोइ संगि न साथा। मृत्यु के क्षण में तुम बिल्कुल अकेले हो।
और वही तुम्हारी निजता है। जन्म के क्षण में भी तुम बिल्कुल अकेले हो। उस अपने एकाकीपन को ठीक से समझ लो, क्योंकि वही तुम्हारा स्वभाव है। मित्र, प्रियजन, परिवार, भीड़-भाड़ सब उपाय हैं अपने को भुलाए रखने के, उलझाए रखने के; उपाय हैं अपने अकेलेपन को डुबाए रखने के। लेकिन तुम्हारा अकेलापन मिटाया नहीं जा सकता। तुम अकेले हो! और यहां जितने संबंध हैं, सब नदी-नाव-संयोग। सांयोगिक हैं।
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था!
गति मिली, मैं चल पड़ा, पथ पर कहीं रुकना मना था,
राह अनदेखी अजाना देश, संगी अनसुना था!
चांद-सूरज की तरह चला, न जाना रात-दिन है,
किस तरह हम-तुम गए मिल, आज भी कहना कठिन है! तन न आया मांगने अभिसार,
मन ही जुड़ गया था!
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था!

देखे मेरे पंख चल, गतिमय, लता भी लहलहाई, पत्र-आंचल में छिपाए मुख कली भी मुस्कुराई, एक क्षण को थम गए डैने समझ विश्राम का पल,
पर प्रबल संघर्ष बनकर, आ गई आंधी सदल बल!
डाल झूमी, पर न टूटी,
किंतु पंछी उड़ गया था!
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था!
कैसे हम मिल गए हैं? कैसे यह मिल हो गया है, कि कोई पति है, कोई पत्नी, कोई पिता है, कोई मां है, कोई बेटा, भाई, कोई बहिन, कोई मित्र, कोई शत्रु? सब सांयोगिक है। बिल्कुल सांयोगिक है! यहां कौन अपना है, कौन पराया है? राह चलते राहगीर मिल गए हैं, साथ हो लिए हैं। वे भी अकेले हैं, तुम भी अकेले हो; न वे चाहते हैं कि अकेले हों, न तुम चाहते हो कि अकेले होओ; इसलिए संग-साथ जोड़ लिए हैं। किस-किस तरह के उपाय कर लिए हैं हमने इस बात को भुलाने के लिए कि मैं अकेला हूं! और यह बात चाहे भुला दो, मिटाई नहीं जा सकती। मौत तो उघाड़ देगी। मौत तो यह सब प्रवंचनाएं तोड़ देगी।
मरनकाल कोइ संगि न साथा। जब जम मस्तक दीन्हेउ हाथा।।
और जब मृत्यु तुम्हारी गदर्न को दबाएगी, तब तुम्हें पता चलेगा--अरे, कोई संगी है, न कोई साथी है। तुम्हें यह भी पता चलेगा। कभी भी न कोई संगी था, न साथी था। अकेले ही थे, भ्रांति खा गए थे भीड़ की। काश, पहले ही समझ लेते कि अकेले हैं, तो संन्यास घट गया होता।
संन्यास का क्या अर्थ होता है?
संन्यास का अर्थ नहीं होता जंगल भाग जाना। संन्यास का अर्थ नहीं होता
है घर द्वार छोड़ देता। संन्यास का अर्थ होता हैः मेरा अकेलापन शाश्वत है-- इसकी प्रतीति। इसकी अनुभूति कि मैं अकेला हूं, कि मेरे अकेले होने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है, अकेलापन मेरा स्वभाव है, इसे झुठला सकता हूं, भूला सकता हूं, मिटा नहीं सकता। जिसने अपने अकेलेपन को परिपूर्णता से अंगीकार कर लिया, स्वीकार कर लिया, वह संन्यासी है।
और संन्यास जीवन में क्रांति है, संक्रांति है। संन्यास के साथ ही यात्रापथ मृत्यु की तरह से मुड़ जाते है, अमृत की ओर उन्मुख हो जाता है। संसार से भागना नहीं पड़ता। लेकिन संसार से एक विमुखता हो जाती है और परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है।
तुम जहां हो वहीं हो जाती है। भागते हो वे ही हैं जिनको यह ख्याल है कि
हम जुड़े हैं।
किसी ने मुझसे कहा कि मैं घर छोड़ कर आ गया, अब मैं न जाऊंगा। आप ही तो समझाते हैं कि न कोई पत्नी है, न कोई पति है, न कोई बेटा, न कोई मां--अब मुझे घर क्यों भेजते हैं? संन्यास ले लिया है उन्होंने। फिर मैंने उनसे कहा कि अब ठीक है, अब घर जाओ! उन्होंने कहा, आप और कहते हैं घर जाओ! न कोई माता, न कोई पिता, न कोई पत्नी, न कोई पति--फिर अब घर क्या जाना है? मैंने कहाः जब कोई है ही नहीं, तो जाने में डर भी क्या है? पत्नी है तुम्हारी या नहीं? वे थोड़े मुश्किल में पड़े। अगर कहें, है, तो मैं कहूंगाः जाओ। अगर कहां कहें, हनीं है, तो मैं कहूंगाः डरते क्यों हो, जाओ। वे कहने लगे, आपने मुझे उलझन में डाला।
जाओ तो भी मान कर जाते हैं लोग कि पत्नी है, और भागते हैं तो भी मान कर भागते हैं कि पत्नी है। जानने वाला भागता ही नहीं! जानने वाला सिर्फ जाग जाता है। जहां है, जैसा है, वैसा ही--मगर उसकी दृष्टि बदल जाती है। उस दृष्टि के रूपांतर का नाम संन्यास है।
और तुम्हें अगर अपने एकांत का स्मरण आ जाए, तो फिर पहाड़ पर जाना एकांत
के लिए! तुम जहां हो तुम्हारे भीतर ही वह अंतर्गुहा है, जहां बैठ जाओ तो एकांत है। और ऐसा एकांत जो कभी खंडित नहीं हुआ। ऐसा एकांत जो सदा से क्वांरा है, जिस पर कोई चरणचिह्न नहीं पड़े हैं।
अब तो हिमालय पर भी क्वांरी बर्फ खोजनी मुश्किल है। आदमी के चरणचिह्न
पड़ गए। अब तो चांद पर भी एकांत खोजना कठिन हैं।

मैंने सुना है, जब पहली दफा अमरीकी अंतरिक्ष-यात्री चांद पर पहुंचे
तो बड़े हैरान हुए। देखा कि भारतीयों की भीड़, बाजार भरा हुआ है... कुंभ मेला इत्यादि है, क्या मामला है? बहुत घबड़ा गए। कहा कि आप लोग आए कैसे यहां? उन्होंने कहाः हमें आने की क्या दिक्कत, एक-दूसरे के ऊपर खड़े होते गए। कोई अंतरिक्षयान की जरूर ही नहीं है। हमारी भीड़ इतनी है। गोबिंदा आला रे... एक के ऊपर एक खड़े होते चले गए। इस तरह चांद पर आ गए।
अब तो चांद पर भी कोई क्वांरी जमीन नहीं है। अब तो कहीं क्वांरे फूल खिलते हैं तो बस तुम्हारे अंतस्तल में। अब तो कहीं कोई एकांत खोज सकते हो तो बस वहीं। और उस एकांत का मजा यह है कि इंचभर भी यात्रा नहीं करनी पड़ती। आंख बंद की और पहुंच गए।
दिल के आईने में है तस्वीरें यार,
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।
और एक बार तुम्हें अपने एकांत का रस समझ में आने लगे, तो चारों तरफ उसकी झलक मिलने लगती है।
हर नग्मे ने उन्हीं की तलब का दिया पया।
हर साज ने उन्हीं की सुनाई सदा मुझे।।
एक बार तुम्हें भीतर का अंतःसंगीत सुनाई पड़ जाए, एकांत संगीत सुनाई
पड़ जाए, तो पक्षियों की टी-ची टुट-टुच, कि हवाओं का वृक्षों से गुजरना, कि झरनों का पहाड़ों से उतरना, कि बदलियों से छप्पर पर पानी की बूंदाबादी, और तुम चकित होओगे, पहले कभी समझ में नहीं आया कि यह उसकी आवाज, कि यह उसी के वेद का नाद, कि यह उसी के उपनिषद, कि यह उसी की कुरान!
हर नग्मे ने उन्हीं की तलब दिया पियाम।
हर साज ने उन्हीं की सुनाई सदा मुझे।।
फिर तो याद सघन होने लगती है। यहां संबंध तुम्हारे झूठे हैं, यह ख्याल में आ जाए तो उससे संबंध तुम्हारा सच है, यह इसी के साथ ख्याल में आ जाता
है।
क्यों न रहे गमे-निहानी तेरा।
दुनिया में बता कौन है सानी तेरा।।
कैसे तेरी याद मिटे? कैसे तेरा विरह मिटे?
क्यों न रहे गमे-निहानी तेरा।
दुनियां बता कौन है सानी तेरा।।
जब यहां के सारे संबंध उथले-उथले, थोथे-थोथे, जाहिर हो जाते हैं, सांयोगिक हैं ऐसा पता चल जाता है, तो फिर उससे संबंध स्मरण आता है जिससे संबंध शाश्वत है, जिसके हम अंग हैं, जिसमें हमारी जड़ें हैं, जो हमारे प्राणों का प्राण है, हमारी आत्मा की आत्मा है। फिर जिंदगी ही याद नहीं दिलाती उसकी, मौत भी उसी की याद दिलाती है। फिर खिला हुआ फूल ही उसकी याद नहीं लाता, सूखा गिरता हुआ पत्ता भी उसी की याद लाता है। क्योंकि वही खिलता है, वही मुर्झाता है। वसंत भी उसके हैं और पतझड़ भी उसके हैं। उपवन में उसके हैं, मरुस्थल भी उसके हैं।
जिंदगी खुद क्या फानी यह तो क्या कहिए मगर।
मौत कहते हैं जिसे वोह जिंदगी का होश है।
फिर जब होश आना शुरू होता है तो जिंदगी की तो बात ही छोड़ दो, मौत भी उसी में जागरण मालूम होता है। मौत भी मिटना नहीं मालूम पड़ता। शरीर जा रहा है, अहंकार जा रहा है, मन जा रहा है, मगर हम? हम तो और हुए जा रहे हैं। हम तो और बड़े हुए जा रहे हैं। हम तो फैलते ही चले जाते हैं। सीमाएं टूट रही हैं, मटकी फूट रही है, मगर मटकी में जो छिपा था वह पूरे विराट आकाश से मिल रहा है।
माता पिता घरनी घर ठाढ़ी। देखत प्रान लियो जम काढ़ी।।
सब खड़े रह जाएंगे--मां हो, पति हो, पत्नी हो, पति हो, सब खड़े रह जाएंगे।
मौत आएगी, पता भी न चलेगा, पगध्वनि भी न सुनाई पड़ेगी, कब खींच लेगी प्राण को।
जागो! मौत आए, उसके पहले जागो। उसके पहले इस सचाई को जितनी गहराई से उतर जाने दो हृदय में उतना अच्छा है।

किस जोम में है ऐ रहरवेगम! धोके में आना मंजिल के।
यह राह बहुत कुछ छानी है, इस राह में मंजिल कोई नहीं।।
यहां दौड़-दौड़ कर सभी कब्रों में गिर जाते हैं। यहां कब्र के अतिरिक्त
और कहीं कोई पहुंचती नहीं है। गरीब भी वहीं पहुंचते हैं, अमीर भी वहीं पहुंचते हैं। पापी भी वहीं पहुंचते हैं, पुण्यात्मा भी वही पहुंचते हैं।
अनाम हैं जो वे भी वही और बड़े ख्यातिनाम हैं जो वे भी। सब कब्र में गिर जाते हैं।
किस जोम में है ऐ रहरवेगम! धोके न आना कि मंजिल के।
ऐ यात्री! किस घमंड में भूला हुआ है? किसी मंजिल के धोखे में मत आना।
यह राह बहुत कुछ छानी है, इस राह में मंजिल कोई नहीं।।
बस राह ही राह है। कोल्हू का बैल जैसे गोल-गोल घूमता रहता, घूमता रहता, घूमता रहता, पहुंचता कहीं भी नहीं। भ्रांति में मत रहो, यहां कोई मंजिल नहीं है। मंजिल तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं। मालिक तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं। और दौड़ते हो तुम बाहर! संपदा भीतर है, खोजते हो बाहर। समाधि भीतर है, झोलियां फैलाते हो बाहर।
किस जोम में है ऐ रहरवेगम! धोके में न आना मंजिल के।
यह राह बहुत कुछ छानी है, इस राह में मंजिल कोई नहीं।।
धन सब गाढ़ गहिर गाड़े। छूटउ माल जहांलगि भांड़े।।
कितना ही गहरा गड़ा दो धन, कितना गहरा गड़ा दो, ले जा न सकोगे। इन्हीं हंडियों में गड़ा हुआ, पड़ा हुआ रह जाएगा।
भवन भया बन बाहर डेरा... और इधर श्वास टूटी कि लोग उठा कर बाहर ले जाएंगे भवन के। ले चले वन की ओर।
भवन भया बना बाहर डेरा। रोवहिं सब मिलि आंगन घेरा।।
हां, थोड़ी देर रोएंगे लोग आंगन में घिर कर। लेकिन उस रोने से कुछ बहुत धोखे में मत आ जाना। तुम्हारे लिए नहीं रो रहे हैं, याद रखना, अपने लिए रो रहे हैं। पत्नी इसलिए नहीं रो रही है कि पति मर गया। पत्नी इसलिए रो रही है कि विधवा हो गई। पत्नी इसलिए रो रही है कि अब कौन रोटी-रोजी कमाएगा? पत्नी इसलिए रो रही है कि अब कौन पर निर्भर रहूंगी? उसकी सुरक्षा टूट गई। पत्नी इसलिए रो रही है कि अब मेरा क्या भविष्य? तुम जब किसी की मृत्यु पर रोते हो तो जरा गौर करना, क्या तुम सच में उसकी मृत्यु पर रो रहे हो, या तुम्हारे भीतर उसने कोई जगह भर रखी थी, वह खाली हो गई, उस खाली जगह की पीड़ा के कारण रो रहे हो? और तुम सदा यही पाओगेः अपने लिए रोते हो तुम।
उपनिषद कहते हैंः न तो पति को कोई प्रेम करता, न पत्नी को कोई प्रेम करता। पत्नी अपने को प्रेम करती है, प्रति अपने को प्रेम करता है। यहां प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं। हां, शोषण को हमने मीठे- मीठे नाम दिए हैं। शोषण के कांटों पर हमने खूब सुंदर-सुंदर रंग चढ़ाए हैं।
थोड़ी देर आंगन में लोग इकट्ठे रो लेंगे।
खाट उठाइ कांध धरि लीन्हा... इधर लोग रोते रहेंगे और चले लोग उठाकर। जरा देर नहीं टिकने देते।
बाहर जाई अगिनि जो दीन्हा... और ले जाकर गांव के बाहर आग को सौंप देंगे। वही देह जिसे तुमने बचा-बचा कर रखा था, जरा कांटा चुभता था तो कितनी पीड़ा होती थी, और जरा आग के पास जाते थे तो कैसे झुलस जाते थे, जरा तेज घूप हो जाती थी तो कैसी बेचैनी हो जाती थी--वही देह, वही प्यारी देह!
बुद्ध के पास जब भी कोई भिक्षु लेता था तो वे कहते थे, पहले तीन महीने जाकर मरघट पर वास कर। क्यों? स्वभावतः कोई पूछता कि हम आपका सत्संग करने आए, मरघट पर वास करने नहीं। बुद्ध कहते, उसके बाद ही सत्संग होगा। पहले तीन महीने मरघट पर बैठ रह, देखता रह क्या होता है--साक्षी-भाव से। बैठना पड़ता। दिन में आते लोग, सुबह से सांझ, रात, मरघट पर आते ही रहते लोग, जलती ही रहतीं लाशें--व्यक्ति बैठा देखता रहता। तीन महीने, जरा तुम सोचो! रोज देखोगे, यह आदमी कल रास्ते पर चलता मिला था, आज मर गया! इस स्त्री ने कल ही तो मुझे भोजन दिया था, इसके घर भिक्षा मांगने गया था, यह मर गई! यह लोग मरते जा रहे रोज! और लोग लाते हैं, आग पर चढ़ा देते हैं, राख रह जाती है। यही गति मेरी हो जाएगी, इस बात को तुम कितनी देर तक भुलाओगे? तीन महीने लंबा वक्त

है। यह बात याद आने ही लगेगी, यह कांटा चुभने ही लगेगा, यह गहरा तीर जाने ही लगेगा, यह भाले की तरह छाती में घाव करने लगेगा कि यही गति मेरी हो जाने वाली है।
और जब तक किसी व्यक्ति को यह स्मरण नहीं आ जाता कि मृत्यु जीवन का अनिवार्य सुनिश्चित चरण है; मंजिल नहीं मिलती, केवल मृत्यु मिलती है, जब तक यह किसी को ठीक-ठीक स्मरण नहीं आ जाता, तब तक उसके जीवन में धर्म केवल औपचारिकता होती है। कभी कारवा ली सत्यनारायण की कथा। चर्चा हो जाती है मुहल्ले में कि धार्मिक आदमी है। न तो सत्यनारायण की कथा में कोई सत्य है और न कोई नारायण हैं। न कोई सुनता। न किसी को कोई प्रयोजन है। कि कभी करवा दिया हवन; कि कभी बहुत धन हाथ लग गया तो दिया यज्ञ। यह सब औपचारिकताएं हैं। इनसे भी अहंकार में थोड़े आभूषण लग जाते हैं, थोड़ी फूलमालाएं गले में पड़ जाती हैं, मगर इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध तो तभी शुरू होता है जब तुम्हें अपनी मौत की सुनिश्चितता ऐसी गहन होकर बैठ जाए छाती पर पत्थर की तरह कि हटाओ तो हटे न, भुलाओ तो भुला न सको; चौबीस घंटे जब मौत छाया की तरह तुम्हारा पीछा करे।
ओ प्रवासी मीत मेरे!
काश! तुम तक पहुंच पाते
आज बंदी गीत मेरे।
और--तुम यह देख पाते
नैन--जिनमें कैद हैं,
सपने मिलन के।
काश! कह पाती
मेरे दिल की सदा
यह प्रेम-पाती।।
गर गवाही दे सकें तो--
पूछना इन परबतों से
आज नयन-कोर हैं
उनके भी गीले!
या पहुंच पाए हवाएं
इन पहाड़ों की वहां तक।
कह सकें शायद वे--
अफसाना तड़पते हृदय का
जो तुम्हारा है...
तुम्हारा था।
आह! पर तुमसे जुदा
ज्यों तरु से छूटी लता!
मेघ-अंक लिपटी बिजुरिया
क्रूर अंधड़ ने बिछोड़ी।
डाल से कली ज्यों हो तोड़ी या तड़पती मीन--
तपती रेत पर जैसे हो छोड़ी। आएगी मृत्यु। आ ही रही है।
मेघ-अंक लिपटी बिजुरिया
क्रूर अंधड ने बिछोडी।
डाल से कली ज्यों हो तोड़ी
या तड़पती मीन--
तपती रेत पर जैसे हो छोड़ी।
जल्दी ही घड़ी आ जाएगी, जब रेत पर तड़पती हुई मीन की, तरह हो जाओगे। कि डाल से टूट गए फूल की तरह हो जाओगे। वह अंधड़ दूर नहीं, चला ही आ रहा है। हम रोज-रोज मौत के करीब पहुंचते जाते हैं। हमारा प्रतिपल मृत्यु को और-और सन्निकट लाता है। इसे स्मरण करो, इसे पुनः-पुनः स्मरण करो, क्योंकि यही स्मरण तुम्हारे जीवन में धर्म के द्वार पर दस्तक बनेगा।

जरि गइ खलरी भसम उड़ाना... ले जाएंगे लोग और चढ़ा देंगे अर्थी पर। जल जाएगी यह खाल, हवा में धूल उड़ जाएगी। सोचि चारि दिन कीन्हेउ ग्याना... और जो तुम्हें जल गए हैं, वे चार दिन जरा ज्ञान की बातें भी करेंगे।
अक्सर लोग करते हैं। मरघट पर जाओ, वहां तो लाश जल रही है और लोग जो आ गए गांव के--जिन्हें आना पड़ा है--आना पड़ता है, नहीं तो उनके साथ कौन आएगा? सब लेन-देन है। तुम दूसरों को पहुंचा आते हो, दूसरे तुम्हें पहुंचा आएंगे नहीं तो सड़ोगे, कुत्ते की मौत मरोगे, कोई पहुंचाने मरघट तक न आएगा। तो लोगों को आना पड़ता है, हजार काम छोड़-छाड़ कर आ गए हैं! वे बैठ कर ज्ञान चर्चा करते हैं, ब्रह्म-चर्चा करते हैं।
मुझे बचपन से ही मरघट जाने का शौक रहा है। कोई भी मरे तो मैं हो लेता
था पीछे। मगर मैं चकित यह बात देख कर होता था कि उधर तो जल रहा है आदमी और लोग पीठ किए गपशप कर रहे हैं। गपशप तरह-तरह की। कोई चर्चा कर रहा है फिल्म की जो गांव में लगी है। तुम कहोगे जरा अधार्मिक किसकी गपशप है। और कोई दूसरा ब्रह्म-चर्चा कर रहा है। कह रहा है, आत्मा अमर है, आत्मा की काई मृत्यु नहीं होती। मगर मैं तुमसे कहता हूं, दोनों गपशप है। वह फिल्म वाला तो शायद थोड़ा कुछ सच भी कह रहा हो--उसने फिल्म देखी होगी--मगर वह सज्जन जो ब्रह्मचर्चा कर रहे हैं और आत्मा की अमरता की बात कर रहे हैं, बिल्कुल झूठ बोल रहे हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं है। न आत्मा का पता है, न आत्मा की अमरता का पता है।
मगर मरघट पर बैठ कर लोग यह बातें क्यों करते हैं?
यह इसलिए करते हैं कि इनकी बातें करने में वह जो मौत घट गई है, उसको भुलाने का उपाय है। उसका दंश न चुभे। वह जो मर गया आदमी, मर जाने दो; उसकी याद बार-बार न दिलाओ! सामने लपटें उठ रही हैं, उसकी लपटों में कहीं खुद की लपटें न दिखाई पड़ने लगें! उसकी मौत में कहीं खुद की मौत याद न आए! अभी जिंदगी चलानी है, अभी दुकान करनी है, अभी बच्चा बड़ा हो रहा है, अभी स्कूल बच्चे को पढ़ने भेजना है। अभी-अभी तो शादी की है, अभी मृत्यु को हटाओ, अभी आंख बंद रखो। वह सारी चर्चा जो जलती है मरघट पर, वह मृत्यु से बचने का एक उपाय है। और फिर दो-चार दिन घर पर भी लोग चर्चा करेंगे; आएंगे, बैठेंगे--बड़ी ब्रह्म-चर्चा होती है। किसी घर में कोई मर जाए कि फिर देखो, लोग आते हैं कि आत्मा अमर है, और बड़ा पुण्यात्मा था, और स्वर्ग गया होगा... इससे सांत्वना खोजते हैं। मगर यह दो-चार दिन की बात है।
फिर धंधे लपटाना प्रानी। बिसरि गया ओइ नाम निसानी।।
यह दो-चार दिन बात है, यह ज्ञान इत्यादि, फिर धंधा है। आखिर कब तक इसी में उलझे रहोगे? यह तत्व-चर्चा दो-चार दिन ठीक है।

तुम क्या दिन भर पोथी-पत्रा पढ़ते हो,
कैसे शिल्पी हो, मूर्ति नहीं गढ़ते हो?

क्या कहते हो उपकरण नहीं मिलते हैं?
फूलों-पत्तों में जितने रंग खिलते हैं।

तिनको-तिनकों मग जो मोती ढलते हैं, चंदा-ग्रह-तारे ज्योति-बीच बोते हैं।

ऊषा-संध्या जिनमें जगते सोते हैं, जिसका चटकीलापन चपला में ढलता,

जिसका, मटमैलापन बाहर में पलता,
जो सोनजुही में चुप-चाप फूल गया है,

जो चंपक अपनी गमक उंडेल गया है, चांदी के झूले में जो झूल गया है।

जो थिरकन बन कर बिखर गया लहरों में, जो कसकन बन सिसका सूने पहरों में।

जिसके गुलाब के गाल हुए शरमीले, जिससे बेला की पलकों के दल गीले।

गेंदा के गुदगुद हाथ हो गए पीले, रजनी के कस-मस कंचुक ढीले-ढीले

वह सब समेट लो, और अभी है बाकी, बासी फूलों में भी सुगंध है साकी।

जो कुछ समेटते हो वह तो सपना है, जो लुटा रहे हो वह केवल अपना है।

जब हाथ बिठा लोगे सौ-सौ सांचों में, कंचन पिघलेगा जब सौ-सौ आंचों में।

तब एक रेख का कहीं भराव भरेगा,
तब एक रूप का आकर्षण निखरेगा।

भपके से केवल एक बूंद छनती है,
सारे जीवन में एक मूर्ति बनती है।

जो अंतर का सब मैल गला जाती है,
युग के अरूप का रूप ढला जाती है।

जिसमें सारी साधना समा जाती है।
जो युग-युग का इतिहास बना जाती है।

जिसमें स्वप्नों के रंग निखर जाती हैं,
कवि की छाती के दाग उभर आते हैं।
कब तक किताबों में पड़े रहोगे?
तुम क्या दिन-भर पोथी-पत्रा पढ़ते हो,
कैसे शिल्पी हो, मूर्ति नहीं गढ़ते हो?
गढ़ो परमात्मा को, अपने भीतर गढ़ो। शास्त्रों में पढ़ने से सत्य नहीं मिलेगा, अपने भीतर उघाड़ना होगा। शब्दों की चर्चा को बहुत मूल्य मत देना। ईश्वर के संबंध में कितना ही जान लो, इससे ईश्वर नहीं जाना जाता है। और प्रेम के संबंध में कितना ही पढ़ लोग, इससे प्रेम का स्वाद नहीं मिलता है। तुम क्या दिन-भर पोथी-पत्रा पढ़ते हो,
कैसे शिल्पी हो, मूर्ति नहीं गढ़ते हो?
यह जीवन एक अवसर है कि मूर्ति गढ़ी जा सके। और जीवन मूर्ति को गढ़ने की
जो कला है, जो गणित है, उसे समझ लेना।
जो कुछ समेटते हो वह तो सपना है,
जो लुटा रहे हो वह केवल अपना है।
अगर जानना हो प्रेम क्या है, तो प्रेम लुटाओ, तुम प्रेम जान लोगे। और अगर जानना हो आनंद क्या है, तो आनंद लुटाओ और तुम आनंद जान लोगे। और अगर जानना हो परमात्मा क्या है, तो परमात्मा लुटाओ और तुम परमात्मा जान लोगे। जो कुछ समेटते हो वह तो सपना है,
जो लुटा रहे हो वह केवल अपना है।
लेकिन लोग यहां समेटने में लगे हैं फिर मौत सब छीन लेगी। कुछ लुटाओ भी, कुछ बांटो भी। कोई गीत, कोई संगीत, कोई नृत्य--इस पृथ्वी को थोड़ा सुंदर करो। यह जीवन का जो अवसर मिला है, इससे कुछ सृजन करो।

मैं उसे सच्चा संन्यासी कहता हूं जो सृजनात्मक है। मैं तुम्हारे संन्यासियों को संन्यासी नहीं कहता, जो राख इत्यादि मल कर, धूनी रमा कर बैठ गए हैं। काहिल, अपाहिज, अपंग। उनसे एक गीत नहीं फूटा, एक कली फूल नहीं बनी। उनकी सारी तथाकथित साधना सिकुड़ने की है। जब कि वास्तविक साधना होती है फैलने की, विस्तीर्ण होने की। विस्तार पाओ। इस सारे आकाश को भर दो अपने आनंद से। गुनगुनओ। यह सारा अस्तित्व तुम्हारी गुनगुनाहट की प्रतीक्षा कर रहा है।
और मरने के पहले यह करना। कहीं ऐसा न हो कि मौत आए और तुम अपना गीत गुनगुना ही न पाओ। मौत आ जाए, तुम अपनी मूर्ति गढ़ ही न पाओ। मौत आ जाए और तुम खाली के खाली। ऐसे दुर्दिन से बचना है।
फिरि धंधे लपटाना प्रानी। बिसरि गया ओइ नाम निसानी।।
सब भूल जाता है चार दिन बाद; जो मर गया, मर गया। जिंदगी के हजार धंधे हैं, मरने वालों के लिए कौन बैठा है, कौन सोचता रहता है!
चरचहु खाहु दया करु प्रानी। ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी।।
इसी तरह लोग डूबते रहे हैं। दूसरे की भी मौत से कुछ सीखते नहीं। वे अपनी पुरानी ही बातें दोहराए चले जाते हैं कि खाओ, पीओ, मौज करो! कि चार दिन की जिंदगी है, कर लो मौज! खा लो! इस तरह के मूढ़तापूर्ण वक्तव्य न मालूम कितने लोगों को डुबा गए हैं। ऐसा न हो कि तुम्हें भी डुबा जाएं।
पवन बजाता रहा
बंसवट में बंसरी
गूंजती चली गई
मन में आसावरी

कुंठा का जल बंदी
अहम के सरोवर में
तट पर बैठा विवेक
लहर उठाता रहा
फेंक किरण-कंकरी

प्रज्ञा का राज तिलक
संयम के शकुनों में
ज्ञान कोष से कुबेर
स्वर्ण लुटाता रहा
भर-भर के अंजुरी

समय की चिकित्सा से
व्रण न कौन सा भरा
अंतर पर विस्मृति का
लेप लगाता रहा
वय का धन्वंतरी
समय तो सभी घावों को भर देता है
समय की चिकित्सा से
व्रण न कौन सा भरा
अंतर पर विस्मृति का
लेप लगाता रहा
पय का धन्वंतरी
यह समय का चिकित्सक तो हर घाव को भर देता है। इसके पहले कि घाव भरे घाव
का उपयोग कर लेना। कोई मर जाए, प्रियजन, चूकना मत अवसर। उसकी मृत्यु को तुम सौभाग्य में परिणत कर ले सकते हो। अभिशाप वरदान हो सकता है, अगर जाओ, और अपनी मौत की तुम्हें प्रतीति होने लगे।
सतगुरु सबद सांच एह मानी... और सदगुरुओं के वचनों में सत्य उन्हीं को दिखा पड़ेगा, जिन्हें पहले मृत्यु में सत्य दिखाई पड़ गया है। कह दरिया करु भगति बखानी... और वे ही भक्ति के शास्त्र को समझ सकेंगे। जिन्हें मौत दिखाई

पड़ गई, उन्हें सदगुरु से पहचान कठिन नहीं होगी। और जिनकी सदगुरु से पहचान हो गई, उन्हें भक्ति का शास्त्र तत्क्षण समझ में आ जाएगा। क्योंकि इस जगत में प्रेम के अतिरिक्त और सब मरणधर्मा है। इस जगत में सिर्फ प्रेम अमृत है। जिन्हें मृत्यु के पार जाना है, प्रेम के सेतु से जाना होगा। प्रेम सीढ़ी है मृत्यु से अमृत में ले जाने वाली। मगर यह प्रेम की सीढ़ी कोई सदगुरु ही समझा सकता है। यह प्रेम की कुंजी कोई सदगुरु ही दे सकता है।
सतगुरु सबद सांच एह मानी। कह दरिया करु भगति बखानी।।
भूलि भरम एह मूल गंवावै। ऐसन जनम कहां फिरि पावै।।
मत चूको। भ्रांतियों में मत जीवन के मूल को गंवाओ। पत्ते-पत्तों में
मत उलझे रहो, जड़ को पकड़ो। ऐसा जन्म फिर पता नहीं कब मिले? और जन्म भी मिले तो सदगुरु मिले या न मिले! सदगुरु भी मिल जाए, मौत की सघन प्रतीति हो न हो! धन संपत्ति हाथी अरु घोरा... सब पड़े रह जाएंगे... मरन अंत सग जाहिं न तोरा... कोई भी तुम्हारे साथ जाने वाला नहीं है।
मातु पिता सुत बंधौ नारी... सब संबंधी यहीं छूट जाएंगे... ई सब पांवर तोहि बिसारी... यह सब तुम्हें भूल भी जाएंगे। यह याद भी न करेंगे। आखिर इन्हें और भी काम हैं! जिंदगी तुम्हारी याद में बैठ कर न गुजारते रहेंगे।
इनकी आंखों से इन्हें कुछ और भी देखना है, सिर्फ आंसुओं से ही भरे नहीं रहेंगे। इन्हें अपनी जिंदगी जीनी है। इन्हें अपने भ्रम पालने हैं। इन्हें अपने सपने पूरे करने हैं।
दरिया के अंतिम सूत्रों से कुछ निष्कर्ष ले लो।
पहला, मृत्यु की प्रगाढ़ से प्रगाढ़ प्रतीति करो! दूसरा, मृत्यु की प्रगाढ़ प्रतीति हो, तो सदगुरु से मिलना कठिन नहीं। सदगुरु से मिलना हो जाए तो भागना मत। मन भगाएगा। मन समझाएगा कि चलो यहां से, यहां खतरा है। मन को अपनी मौत दिखाई पड़ने लगेगी। अहंकार हजार तर्क खोजेगा कि झुकना मत, किसीके सामने क्यों झुकना, किसी की शरण क्यों जाना? और सदगुरु से तो उसी का संबंध जुड़ता है, जो समर्पित हो। जो समर्पित नहीं हैं, सदगुरु से संबंध नहीं जुड़ता।
सदगुरु से संबंध जुड़ जाए, इतने भरे से रुक मत जाना। उसने जो कहा है, उसे गुनना, मनन करना, निदिध्यासन करना। उसने जो प्रेम के सूत्र दिए हैं, उन्हें अपने जीवन का काव्य बनने देना। तो क्रांति हो सकती है, महाक्रांति हो सकती। तुम्हारे जीवन में भी निर्वाण का कमल खिल सकता है। दरिया कहै सब्द निरबाना।

आज इतना ही।